

॥ नवतत्त्व संग्रह ॥

लेखक :- आ. श्री विजयानंदसूरिजी म.सा.



संपादक :- आ. श्री रत्नसेनसूरिजी म.सा.

नवतत्त्व संग्रह

—: लेखक :—

न्यायाम्भोनिधि आचार्य श्रीमद् **विजयानंदसूरीश्वरजी**
(आत्मारामजी) महाराज

—: हिन्दी अनुवादक-संपादक :—

परम शासन प्रभावक दीक्षायुग प्रवर्तक पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न
अध्यात्म योगी, निःस्पृहशिरोमणि पूज्यपाद पंन्यास प्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न मरुधररत्न,
सरस्वती नंदन, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर
पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

279

॥ प्रकाशक ॥

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ.एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Cell 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

आवृत्ति : तृतीय • मूल्य : 1100/- रुपये • प्रतियाँ : 300

विमोचन तिथि : 14-9-2026

विमोचन स्थल : प्रेमसूरि गुरु मंदिर, पिण्डवाडा, (राज.)

• Website : divyasandesh.store

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 4000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु-साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बेंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से बैंक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता

भायंदर (M.S.)

M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी

C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि

जैन पुस्तकालय

श्री आदिनाथ जैन टेंपल,

चिकपेट, बेंगलोर-560 053.

M. 9036810930

3. राहुल वैद

C/o. अरिहंत मेटल कं.,

4403, लोटन जाट गली,

पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,

दिल्ली-110 006.

M. 9810353108

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 4000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग,

विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,

मुंबई-400 002. Mobile : 84 84 84 51 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा,

बेंगलोर-560 004. M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से

अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि पूज्यपाद पन्थास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के संयम सुवर्ण वर्ष के पावन प्रसंग पर न्यायाम्भोनिधि आचार्य **श्रीमद् विजयानंदसूरीश्वरजी महाराज** की एक अद्वितीय कृति 'नवतत्त्व संग्रह' का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

इस ग्रंथ का लेखन **पूज्य आत्मारामजी म.** ने वि. सं. 1924 में उत्तर प्रदेश के बिनौली गांव में संवेगी दीक्षा स्वीकार के पूर्व किया था। ई. सन् 1931 में इसका प्रकाशन मुंबई से हुआ था। 72 वर्ष के बाद इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था।

नवतत्त्व विषयक यह सम्पूर्ण और अद्वितीय ग्रंथ है। आगमों में वर्णित नवतत्त्व का संकलन गुरुदेव ने अपनी विलक्षण पद्धति से किया है जो अपने आप में एक उदाहरण है। इससे सहज ही यह समझा जा सकता है कि उन्हें आगमों का कितना गहन और सूक्ष्म ज्ञान था।

परमार क्षत्रियोद्धारक, **आचार्य श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वरजी महाराज** की प्रेरणा से हिन्दी में इसका सरलीकरण अध्यात्म योगी **पन्थास प्रवर श्रीभद्रंकरविजयजी महाराज** के विद्वान् **शिष्यरत्न गणिवर्य श्री रत्नसेनविजयजी महाराज (वर्तमान में आचार्यदेव)** ने बड़े ही मनोयोग और परिश्रम उठाकर किया था। और ईस्वी सन् 2001 में इसका दूसरा प्रकाशन श्री विजयानंदसूरि साहित्य प्रकाशन फाउंडेशन-पावागढ की ओर से हुआ था।

26 वर्षों के बाद आज पुनः उसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन हो रहा है। इसका पुनः संपादन व संशोधन मरुधररत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, सरस्वती नंदन पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. ने किया है।

पूज्य आचार्यश्री अपने संयम जीवन
के प्रारंभिककाल से तीव्र ज्ञान पिपासु रहे हैं । इसी के
फल स्वरूप उन्होंने जैन दर्शन का गहन अभ्यास तो किया ही,
परंतु उसके साथ ही जैन दर्शन के विविध विषयों पर तात्त्विक एवं
साहित्य का सर्जन भी किया है ।

हमें पूर्ण विश्वास हैं कि पू. आचार्यश्री द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित व
संपादित 279 वीं कृति पाठकों को अवश्य पसंद पड़ेगी ।

ग्रंथ का स्वाध्याय कर सभी नवतत्त्व के बोध के अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त
करे, इसी शुभ कामना के साथ ।

'नवतत्त्व-संग्रह' ग्रंथ के
प्रकाशन में ज्ञानखाते की रकम का
उपयोग किया गया है,
अतः कोई भी गृहस्थ ग्रंथ का मूल्य
ज्ञानखाते में जमाकर
खरीद सकते हैं ।
ज्ञान भंडार एवं साधु-साध्वी भगवंतों
को सादर-भेंट !

पंजाब देशोद्धारक **आचार्य** **श्री विजयानन्दसूरिजी महाराज का जीवन परिचय**

जन्म—वि.सं. 1893
स्थानकवासी दीक्षा—वि.सं. 1910
संवेगी दीक्षा—वि.सं. 1932

आचार्य पद—वि.सं. 1944
उम्र—59 वर्ष
कालधर्म—वि.सं. 1952

लेखक : पूज्य आचार्य श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

जिनशासन के महान् स्तम्भ स्वरूप इस पुण्य पुरुष का जन्म **पंजाब** के **लहरा गाँव** में विक्रम संवत् 1893 के चैत्र सुद 1 के शुभ दिन हुआ था। उनकी माता का नाम **रूपादेवी** और पिता का नाम **गणेशचन्द्र** था।

नवजात शिशु का नाम '**दिता**' रखा गया। गौरवर्ण, तेजस्वी नयन युगल और सुदृढ़ काया के कारण यह बालक सभी के मन को हर लेता था।

दूज के चांद की भाँति बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। वय की वृद्धि के साथ ही बालक दिता में साहस एवं शौर्य की वृत्तियाँ जागृत होने लगीं।

सिक्ख जाति के वंशानुगत संस्कार के अनुसार गणेशचन्द्रजी भी अत्यन्त साहसी और पराक्रमी थे। एक शूरवीर की सन्तान शूरवीर बने इसमें आश्चर्य भी क्या है !

बाल्यवय में शौर्य

एक बार डाकुओं के गिरोह ने लहरा गाँव पर रात्रि में धावा बोला। ज्योंही गणेशचन्द्र को इस बात का पता चला, वह गाँव की रक्षा के लिए अपने कुछ मित्रों के साथ हथियार लेकर चल पड़ा।

गणेशचन्द्र ने अपने साथियों के साथ उन डाकुओं से मुठभेड़ की, उनके पराक्रम के आगे डाकुओं की एक न चली और वे नौ दो ग्यारह हो गए।

विजय की वरमाला लेकर गणेशचन्द्र जब अपने घर लौटा, तब उसने अपने छोटे दिता को हाथ में नंगी तलवार लिये हुए घर के द्वार पर खड़े देखा।

पिता ने पूछा-''**हाथ में तलवार कैसे ?**''

दिता ने कहा-''**घर की रक्षा के लिए।**''

''**बेटा ! तुम तो अकेले हो, उन डाकुओं से अपने घर की रक्षा कैसे कर लेते ?**''

पिता का यह सवाल सुनकर दिता ने निर्भयता से कहा-''**पिताजी ! आप अकेले, गाँव की रक्षा कर सकते हो तो क्या मैं एक घर की भी रक्षा नहीं कर सकता ?**''

दिता के इस जवाब में हमें उसकी शौर्यवृत्ति के साक्षात् दर्शन होते हैं।

दिता के रोम-रोम में साहसवृत्ति छाई हुई थी । उसे कायरता कतई नापसन्द थी ।

♦ एक बार वह अपने मित्रों के साथ नदी तट पर खेल रहा था, तभी उसे एक मुस्लिम स्त्री की चिल्लाहट सुनाई दी ।

दिता ने देखा-उस मुस्लिम स्त्री का बच्चा नदी में गिर पड़ा था और उसे बचाने हेतु वह स्वयं भी नदी में कूद पड़ी थी...परन्तु तैरना नहीं आने के कारण वह अपने आपको बचाने में भी असमर्थ दिखाई दे रही थी और मौत के भय के मारे जोर-जोर से चिल्ला रही थी ।

ऐसी परिस्थिति में कुछ भी विचार किये बिना दिता नदी में कूद पड़ा और उसने अपनी भुजाओं और पराक्रम के बल पर उस स्त्री एवं बच्चे को बचा लिया । दिता के साहस की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी ।

पिता की मृत्यु

♦ लहरा गाँव में ही **अत्तरसिंह सोढ़ी** नाम का जागीरदार रहता था, जो स्वयं धर्मगुरु होने के साथ सिक्ख सम्प्रदाय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था ।

दिता की असाधारण प्रतिभा और तीक्ष्ण बुद्धि को देख अत्तरसिंह ललचा गया । उसके कोई सन्तान नहीं थी । अतः उसने गणेशचन्द्र से दिता की मांग की । परन्तु गणेशचन्द्र किसी भी स्थिति में दिता को सौंपने के लिए तैयार नहीं हुए । फलस्वरूप अत्तरसिंह ने गणेशचन्द्र के प्रति वैर की गाँठ बाँध ली और एक दिन सत्ता के मद में उसने गणेशचन्द्र पर मिथ्या आरोप लगाकर उसे बन्दी बना लिया ।

एक बार तो गणेशचन्द्र उस कैदखाने से भी फरार हो गया...और उसने परिवार का स्थानान्तरण भी करा दिया, परन्तु वह पुनः पकड़ा गया और एक दिन आत्मरक्षा हेतु की गई गोलीबारी में पुलिस द्वारा मारा गया ।

पिता की मृत्यु के बाद दिता के पालन-पोषण की जवाबदारी **जीरा गाँव** के **जोधमल** ने संभाली । यद्यपि जोधमल स्थानकवासी जैन था और गणेशचन्द्र क्षत्रिय था । जातिगत भेद होने पर भी उन दोनों के बीच में घनिष्ठ मैत्री थी । मैत्री के फलस्वरूप ही जोधमल ने दिता के विकास की सम्पूर्ण जवाबदारी अपने कंधों पर ले ली और उसे अपना ही पुत्र मानकर लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण करने लगा ।

वैराग्य

यद्यपि दिता जन्म से जैन नहीं था, परन्तु एक जैन-परिवार के बीच रहने से, पूर्वभव के पुण्योदय से बचपन में ही जैनधर्म के सिद्धान्तों के प्रति उसकी अभिरुचि बढ़ने लगी और धीरे-धीरे वह स्थानकवासी साधुओं के सम्पर्क में आने लगा ।

कलिकाल के प्रभाव से विक्रम की 16वीं शताब्दी में जैनधर्म में भी ऐसे विद्रोही पैदा हुए, जो अपनी मनगढ़न्त कल्पनाओं के द्वारा शास्त्रसिद्ध मूर्तिपूजा का ही विरोध करने लगे थे ।

एक ओर काल के प्रभाव से शास्त्रानुसारी विशुद्ध संयम धर्म का पालन करने वाले संवेगी साधुओं की संख्या वे कम हो गयी थी तो दूसरी ओर श्वेताम्बर वर्ग में यतिवर्ग का जोर काफी बढ़ गया था । यतिवर्ग में शिथिलाचार का बोलबाला होने से और संवेगी साधुओं की संख्या अत्यधिक घट जाने से जैनमत के नाम पर लूम्पकों का जोर अत्यधिक बढ़ गया था ।

नामादि निक्षेपों की भाँति स्थापना-निक्षेप भी शास्त्र-विहित है । मूल आगमों में स्थापना निक्षेप की सत्यता, सफलता व सार्थकता के एक से एक बढ़कर प्रमाण मौजूद होने पर भी मोहग्रस्त आत्माओं ने स्थापना-निक्षेप व प्रतिमापूजन आदि का जोर-शोर से विरोध करना प्रारम्भ कर दिया था ।

सत्य-असत्य की परीक्षा करने में असमर्थ अनेक धर्मगुरु भी मिथ्यायुक्तियों एवं कुतर्कों के जाल में फँस गये थे । फलस्वरूप अज्ञानी व भोली-भाली प्रजा भी उन धर्म-गुरुओं का अन्धानुकरण करने लगी थी । इसका परिणाम यह हुआ कि हर क्षेत्र में सैकड़ों वर्ष प्राचीन जिनमन्दिर विद्यमान होने पर भी धर्मपुरुषों के द्वारा दिये गये विपरीत शिक्षण और इनके प्रति अंधश्रद्धा के कारण अनेक लोग सन्मार्ग से भ्रष्ट होने लगे थे । देखते-ही-देखते मिथ्यामतियों का साम्राज्य फैल गया था ।

“कोई सिंह का बच्चा हमारे विरुद्ध सत्य का झण्डा खड़ा न कर दे” इस भय से इस सम्प्रदाय के प्रणेताओं ने अनेक मूल आगमों को ही उड़ा दिया था । कई के कई पाठ बदल दिये थे । इतना ही नहीं स्वमान्य 32 आगमों की निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य व टीका आदि की प्रामाणिकता पर भी कुठाराघात किया था ।

इतने से ही सन्तोष न मानकर संस्कृतभाषा के व्याकरण को व्याधिकरण के नाम से बदनाम कर अपने सम्प्रदाय में व्याकरण के अध्ययन पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया ।

‘न रहे बाँस न बजे बाँसुरी’ की युक्ति के अनुसार इस सम्प्रदाय ने अपने संरक्षण की ढाल को इतना अधिक मजबूत बना लिया था कि वर्षों तक इस सम्प्रदाय की ईंट भी कोई हिला न सका ।

दुर्भाग्य से पंजाब का जैन समाज भी उस समय इस मिथ्या मत के प्रभाव में आया हुआ था । इसी कारण ‘परम सत्य के उपासक’ के रूप में ही पैदा हुआ होने पर भी काल के प्रभाव से दिक्ता को विशुद्ध संवेगी शाखा के साधुओं का परिचय-संपर्क न होकर स्थानकवासी साधुओं का ही परिचय हो पाया ।

बाल-जीव, बाह्य तप-त्याग और कठोर जीवन से शीघ्र आकृष्ट हो जाते हैं ।

स्थानकवासी दीक्षा-स्वीकार

जोधमल के एक भाई का नाम दिता होने से यहाँ 'दिता' का नाम **देवीदास** कर दिया गया। दिता अब देवीदास के नाम से ही पहिचाने जाने लगा।

जीवनरामजी आदि स्थानकवासी मुनियों के सम्पर्क से देवीदास के हृदय में इस मोहमय असार संसार के प्रति विरक्ति का बीजारोपण हुआ। उन मुनियों के सम्पर्क में रहकर उसने जैनधर्म के सामायिक, प्रतिक्रमण, नवतत्त्व आदि का प्रारम्भिक अभ्यास कर लिया।

देवीदास अब किशोरावस्था का परित्याग कर यौवन के प्रांगण में प्रवेश कर चुका था। वैराग्यमय देशना-श्रवण के फलस्वरूप वह इस संसार की असारता को भली भाँति समझ चुका था। एक दिन उसने अपने पालक पिता के सामने अपनी भागवती दीक्षा ग्रहण करने का प्रस्ताव रखा।

देवीदास की इस वैराग्य भावना को देख जोधमल को कुछ आघात लगा। उसे वैराग्य भाव से विचलित करने के लिए जोधमल ने कहा- **''देवीदास ! तुम मेरे धर्मपुत्र हो। तुम यह झूठी कल्पना मत करना कि यहाँ तुम्हारा कोई नहीं है। मैं तो अपनी समस्त जायदाद का तीसरा हिस्सा तुम्हें देना चाहता हूँ। मैं तो तुम्हारा लग्न कराने की तैयारी में हूँ-अतः तुम दीक्षा का विचार छोड़ दो।''**

एक ओर कंचन और कामिनी का तीव्र प्रलोभन था, जिसे पाकर अच्छे-अच्छे साधक भी साधनामार्ग से च्युत हो जाते हैं...परन्तु आत्मा में रमणता करने के लिए ही जिसका जन्म हुआ हो, ऐसा देवीदास इन मिथ्या प्रलोभनों में कैसे फँस सकता था ?

देवीदास के वैराग्य का रंग इतना कच्चा नहीं था कि इन प्रलोभनों की धूप में वह हल्दी के रंग की भाँति उड़ जाता।

देवीदास जोधमल के प्रलोभनों में लेश भी नहीं फँसा और उसने पुनः पूर्ण दृढ़ता के साथ अपनी वैराग्य भावना व्यक्त की।

फलस्वरूप वि.सं. 1910 में देवीदास ने मगसर सुदी पंचमी के दिन मालेरकोटला गाँव में स्थानकवासी दीक्षा ग्रहण कर ली। देवीदास ने दीक्षा ग्रहण कर जीवनरामजी म. को अपना जीवन समर्पित कर दिया। दीक्षा के साथ ही देवीदास का नाम बदल दिया गया और वे अब देवीदास से **आत्मारामजी** महाराज हो गये।

सत्य के पथिक **आत्मारामजी** ने अपने जीवन की तीसरी मंजिल में पाँव रखा। अभी उन्हें एक ओर मंजिल पार करनी शेष थी।

आत्मारामजी दिता के रूप में क्षत्रियपुत्र थे, देवीदास के रूप में जैनधर्म के श्रावक बने और अब साधु के रूप में आत्माराम बने। अभी उन्हें संवेगी मार्ग की चौथी मंजिल पर चढ़ना बाकी था। काल की परिपक्वता के बिना यह सम्भव नहीं था।

संयम-जीवन का वास्तविक स्वाद 'जिनागमों के सांगोपांग अध्ययन-अध्यापन में ही रहा हुआ है' इस शास्त्रवचन को आत्मारामजी म. ने अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था ।

वय की वृद्धि के साथ उनकी बाह्य प्रतिभा तो खिली ही, इसके साथ ही उनका क्षयोपशम भी अत्यन्त तीव्र बनता गया, मानों सरस्वती का साक्षात्कार हुआ हो, इस प्रकार अल्पवय में ही उन्होंने 32 आगम कण्ठस्थ कर लिये । पांच वर्ष के दीक्षा पर्याय में आत्मारामजी ने 10000 श्लोकप्रमाण आगम साहित्य कण्ठस्थ कर लिया था । वे प्रतिदिन 300 श्लोक कण्ठस्थ करने की क्षमता रखते थे । फलस्वरूप छोटी वय में ही वे स्थानकवासी मान्य शास्त्रों में निपुण बन गए परन्तु सम्प्रदाय की मान्यतानुसार संस्कृत व्याकरण के अध्ययन पर प्रतिबन्ध होने से उन्होंने देखा-कई सूत्रों के अर्थ मनगढ़न्त किये जा रहे हैं । व्याकरण के आधार पर प्रामाणिक अर्थबोध का आधार न होने से परस्पर मिलकर अर्थ-भेद का ऐसे ही निराकरण किया जाता है, जो उन्हें समुचित नहीं लगा ।

व्याकरण—प्रेरणा

एक बार जोधपुर के वैद्यनाथ पटवा ने आत्मारामजी म. को कहा-“यदि आप शास्त्रों के सुसंगत अर्थ को जानना चाहते हैं तो आपको व्याकरण अवश्य ही पढ़ना चाहिए ।” किन्तु गुर्वादेश के कारण आत्मारामजी म. ने इस सलाह की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । नागौर में भी एकबार फकीरचन्दजी म. ने उन्हें व्याकरण के अध्ययन की सलाह दी थी ।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा । आत्मारामजी ने देखा, व्याकरण के अभ्यास के अभाव के कारण सम्प्रदाय के कई साधु एक ही सूत्र के विविध और मनगढ़न्त अर्थ कर रहे हैं । यह उन्हें बहुत अखरा और एक दिन उन्होंने अपने गुरुदेव से व्याकरण के अध्ययन हेतु अनुमति देने की प्रार्थना की । परन्तु सम्प्रदाय की मिथ्या मान्यताओं से ग्रस्त जीवनरामजी म. ने उन्हें अनुमति देने से मना कर दिया । कुछ दिन रुककर आत्मारामजी ने पुनः प्रार्थना की । परन्तु पुनः उन्हें वही जवाब मिला ।

आखिर एक दिन सम्प्रदाय की मिथ्या मान्यता के विरुद्ध बगावत करते हुए उन्होंने रोपड़नगर में पंडित सदानंद एवं पंडित अनंतराम के पास सारस्वत-व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया । सूक्ष्म प्रज्ञा के फलस्वरूप अल्पावधि में ही उन्होंने व्याकरण का समुचित बोध कर लिया । अब वे व्याकरण से सिद्ध अर्थ के अनुसार शास्त्रों का अर्थ करने लगे । उनकी अन्तरात्मा पुकारने लगी-“सचमुच, मिथ्या मान्यताओं के जाल में फँसे रहने के लिए ही व्याकरण पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ है ।”

सत्य की खोज के लिए ही पैदा हुए आत्मारामजी के मन में हलचल मच गई । उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन पुनः प्रारम्भ किया ।

सत्यबोध

योगानुयोग वि.सं. 1920 में आत्मारामजी म. का चातुर्मास आगरा में हुआ और वहाँ पर उनकी भेंट स्थानकवासी समाज के वयोवृद्ध **मुनि रत्नचन्द्रजी म.** से हुई ।

रत्नचन्द्रजी म. को व्याकरण का विशेष बोध होने से पू. आत्मारामजी म. ने उनके सान्निध्य में शास्त्रों का नये सिरे से अध्ययन प्रारम्भ किया । इस प्रकार शास्त्रों के गहन अवगाहन से **आत्मारामजी म.** को सन्मार्ग का बोध प्राप्त हुआ और उन्हें लगा कि प्रतिमा-पूजन आदि कई बातें शास्त्रसिद्ध होने पर भी सम्प्रदाय के व्यामोह के कारण सम्प्रदाय में अनेकविध मिथ्या मान्यताएँ चल रही हैं ।

एक दिन श्री रत्नचन्द्रजी म. ने कहा-''भाई ! हमारा मार्ग तो महावीर प्रभु के मार्ग से कोसों दूर है । अपने पंथवाले पूर्वाचार्यों के अर्थ की अवहेलना कर रहे हैं । आगमों की टीका, चूर्णि आदि को न मानना-यह हमारा उन्माद ही है ।

''आत्माराम ! बृहत्कल्प की 1774-76 व 77वीं गाथाएँ देख ले । उनमें क्या लिखा है ? चैत्य के चार प्रकार बतलाये हैं-साधर्मिक चैत्य, मंगल चैत्य, शाश्वत चैत्य और भक्ति चैत्य । इनके अर्थ का विचार करो । मूर्तिपूजा शास्त्र से सिद्ध होती है ।''

रत्नचन्द्रजी म. ने आत्मारामजी को मूर्तिपूजा सम्बन्धी अनेक शंकाओं का समाधान समझाया । इन सबको जानकर आत्मारामजी का मन खुशी से झूम उठा ।

उन्होंने सहज भाव से पूछा-''महाराजजी ! आप इस सत्य को समझते हो तो इस दलदल में क्यों फँसे हो ?''

रत्नचन्द्रजी ने कहा-''तुम्हारी बात सत्य है । अब तो मैं वृद्ध भी हो चुका हूँ । मुझमें इतना नैतिक साहस नहीं है कि मैं इस सम्प्रदाय का त्याग कर सकूँ । हाँ ! तुम्हारे जैसा सत्यप्रिय मुझे 10 वर्ष पूर्व मिला होता तो मैं यहाँ नहीं होता...अब मेरी भावना को तुम पूरी करना ।''

विदाई के पूर्व पूज्य रत्नचन्द्रजी म. ने आत्मारामजी म. को समझाते हुए कहा 'अब अपवित्र हाथ से कभी शास्त्र का स्पर्श मत करना और मूर्तिपूजा की कभी निन्दा मत करना ।'

आत्मारामजी ने भी रत्नचन्द्रजी को दृढ़ विश्वास दिलाते हुए कहा-''अब मैं पुनः शास्त्र के रहस्यों का गहन अध्ययन एवं चिन्तन, मनन करूँगा और सत्य का पक्षधर बनूँगा । उसके लिए मुझे जो भी सहन करना पड़ेगा, उसके लिए मैं सदैव तैयार रहूँगा ।''

सत्य को समझना जितना कठिन है, उससे भी अधिक कठिन है-वर्षों से स्वीकृत अपनी झूठी मान्यताओं का परित्याग करना ।

अहमदाबाद में लुंका नाम का लहिया (लिखनेवाला) था । जो दशा श्रीमाली वणिक् था । ज्ञानजी यति के उपाश्रय में लिखने का काम करता था ।

एक बार पुस्तक लिखते समय 7 पन्ने छोड़ दिए। ज्ञानजी यति को मालूम पड़ा तो उसे कहा, 'तू 7 पन्ने लिखेगा तो ही पैसे ढूंगा अन्यथा नहीं !' बस, इस बात को लेकर झगड़ा बढ़ गया। उसे पीटकर उपाश्रय से बाहर निकाल दिया।

बस, बदले की भावना से उसने जैन साधु व जिन प्रतिमा की निंदा प्रारंभ की। वह लिमड़ी चला गया। वहाँ उसने अपनी मान्यता का प्रचार चालू किया। वि.सं. 1533 में भाणा नाम के वणिक् ने लोंके के उपदेश से साधु वेष स्वीकार किया। फिर धीरे धीरे उसकी परंपरा चली।

मुंह पर मुंहपत्ती बांधने की प्रथा भी लवजी ने चलाई है। लवजी लौंका गच्छ के साधु बजरंगजी का शिष्य था। जो मुंहपत्ती बांधते नहीं थे।

गुरु से एक बार झगड़ा हो जाने पर वह अलग हो गया और दिनभर मुंहपत्ती बांधने की प्रथा चालू कर दी।

गुरु बजरंग जिस लौंका गच्छ के यति थे, वह गच्छ भी लौंका शाह नाम के गृहस्थ से विक्रम की 16 वीं सदी में प्रचलित हुआ था। **जैन परंपरा में मूर्ति पूजा का विरोध भी उसी ने किया था। उसके पहले मूर्तिपूजा का किसी ने विरोध नहीं किया। अतः ढूढक पंथ की परंपरा लौंका शाह में समाप्त हो जाती है।**

इस पंथ के मूल पुरुष लौंका और लवजी हैं, न कि महावीर प्रभु !

सन्मार्ग प्राप्ति हेतु संघर्ष

यद्यपि एक ओर अपने प्रभावक व्यक्तित्व, कृतित्व और वक्तृत्व के कारण आत्मारामजी म. का स्थानकवासी सम्प्रदाय में खूब उँचा मान-सम्मान था, तो दूसरी ओर वर्षों से स्वीकृत अपनी ही मान्यताओं के विरुद्ध वातावरण खड़ा करने में चारों ओर भयंकर कठिनाइयाँ थीं। तथापि सत्य के परम उपासक पूज्य आत्मारामजी म. अपनी असत् मान्यताओं का परित्याग करने में लेश भी नहीं हिचकिचाए और सत्य मार्ग की इस उद्घोषणा के फलस्वरूप कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने से भी वे नहीं घबराए।

सम्प्रदाय की मिथ्या मान्यताओं का परित्याग कर ज्योंही उन्होंने सत्य का झंडा फरकाना प्रारम्भ किया, त्योंही चारों ओर से विरोध का वातावरण खड़ा हो गया।

आत्मारामजी म. की सत्य की उद्घोषणा एक टिमटिमानेवाले दीपक की भाँति नहीं थी कि विरोध के पवन को देखते ही बुझ जाय। सचमुच वे लोहपुरुष थे। उनका मनोबल अत्यन्त ही दृढ़ था।

सम्प्रदाय की ओर से उन पर ज्यों-ज्यों झूठे दबाव आते गये, त्यों-त्यों सत्य के समर्थन के लिए उनका मनोबल अत्यधिक दृढ़ बनता गया।

सत्य को समझना फिर भी सरल है, परन्तु उस सत्य को, वर्षों से असत् मान्यता से ग्रस्त लोगों को समझाना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। परन्तु आत्मारामजी म. ने

हिम्मत नहीं हारी और एक दिन अमृतसर की प्रवचनसभा में उनकी स्पष्टवादिता मुखर हो उठी। उन्होंने कहा-“पूर्वाचार्यों द्वारा कथित अर्थ का परित्याग कर जो शास्त्रों के मनगढ़न्त अर्थ करते हैं, उन आत्माओं की परलोक में अवश्यमेव दुर्गति होती है।”

आत्मारामजी म. की देशना के ये स्वर सम्प्रदाय के प्रमुख अमरसिंहजी के मन में तीर की भाँति चुभ गए।

अमरसिंहजी ने साम-दाम-दंड और भेद की नीति का आश्रय लेकर किसी भी प्रकार से आत्मारामजी को परास्त करने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें लेश भी सफलता नहीं मिली।

आखिर उन्होंने आत्मारामजी पर दबाव डालने के लिए एक ‘मेजरनामा’ तैयार कर दिया और उस पर सभी साधुओं के हस्ताक्षर लिये जाने लगे।

मेजरनामे में लिखा था-“जो कोई जिनप्रतिमा में श्रद्धा रखता है, प्रतिमा-पूजन का उपदेश देता है और मुख पर मुँहपत्ती बाँधने का विरोध करता है...उसे संघ से बहिष्कृत किया जाता है।”

पूज्य आत्मारामजी म. इससे भी डरे नहीं। उनकी प्रवचन-प्रतिभा, सत्य-प्रेम और अडिग व्यक्तित्व से हजारों लोग प्रभावित होने लगे। चम्पालालजी, विशनचन्द्रजी आदि अनेक मुनि भी उनके साथ हो गये।

वि.सं. 1920 में पूज्य रत्नचन्द्रजी म. के पास सत्य के जिन संस्कारों का बीजारोपण किया था, 1931 तक वे बीज वटवृक्ष में रूपान्तरित हो चुके थे।

सत्य के पक्षपाती

आत्मारामजी म. ने अपने साथी मुनि चंपालालजी आदि को समझाते हुए कहा, ‘यह रजोहरण और मुहपत्ती न हो तो हमें साधु माननेवाला कौन हैं...?’

चंपालालजी ने कहा, ‘वेष बिना साधु कौन मानेगा?’

आत्मारामजी, ‘यह मुहपत्ती व रजोहरण क्या चीज है? जड या चेतन?’

संसार में ऐसा कोई पंथ नहीं जो मूर्तिपूजा का विरोध कर सके?

मुसलमान मूर्तिपूजा के विरोधी कहलाते हैं वे भी कुरान शरीफ का कितना आदर करते हैं? आखिर कुरान क्या है? कागज और स्याही ही तो है!

वे मक्का-मदिना जाते हैं, वहां भी पाषाण ही तो हैं! वे लोग नमाज पढ़ते समय पश्चिम की ओर मुंह करते हैं क्यों कि मक्का-मदिना पश्चिम में है।

— ताजिया क्या है? उसे हसन-हुसैन का प्रतीक मानकर कितना सन्मान देते हैं?

— ईसाई लोग भी अंजील को कितना मान देते हैं?

— सिक्ख लोग गुरु वाणी रूप ग्रंथ साहब का कितना आदर देते हैं? वे उसके आगे माथा टेकते हैं!

— इसी प्रकार जैन लोग भी मूर्ति के माध्यम से प्रभु की पूजा करते हैं, पत्थर की नहीं ।

स्थानकवासी सम्प्रदाय में रहते हुए जब पूज्य आत्मारामजी महाराज को इस बात का पता चला कि जिनप्रतिमा की पूजन विधि शास्त्रोक्त है और मुख पर मुँहपत्ती बाँधना अशास्त्रीय है तो उन्होंने अपने गुरुबन्धुओं के साथ चर्चा भी की और उन्हें यथार्थ-मार्ग समझाने का प्रयास भी किया । एक बार उनके गुरुबन्धु कनीराम ने कहा, “लगतता है अब आपको अपने गुरुदेव और दादा गुरुदेव के वचनों पर श्रद्धा नहीं रही है ।”

यह बात सुनकर पूज्य आत्मारामजी म. ने कहा- **“मैं किसी गुरु या दादागुरु से बँधा हुआ नहीं हूँ, मैंने यह वेष आत्मकल्याण के लिए धारण किया है अतः मेरे लिए तो महावीर प्रभु के शासन के शास्त्रों को मानना ही ठीक है । यदि किसी के पिता या पितामह कुएँ में गिर जायें तो क्या उसके पुत्र को भी कुएँ में गिर जाना चाहिए ?”**

आत्मारामजी के इस उत्तर को सुनकर कनीराम चुप हो गये और वहाँ से चले गये । सत्य के पालन, प्रतिपादन व रक्षण के लिए आत्मारामजी में कैसी अद्भुत खुमारी थी !

शत्रुंजय महातीर्थ की स्पर्शना

वि.सं. 1931 का चातुर्मास होशियारपुर में व्यतीत कर आत्मारामजी म. आदि लुधियाना में एकत्र हुए और उन्होंने शत्रुंजय, अर्बुदगिरि आदि पवित्र तीर्थों की स्पर्शना करने का संकल्प किया ।

पंजाब की धरती पर विचरण कर उस समय पूज्य आत्मारामजी म. ने 7000 श्रावकों को मूर्तिपूजक बनाया ।

तत्पश्चात् पूज्य आत्मारामजी म. ने अपने सहवर्ती मुनियों के साथ पंजाब से गुजरात की ओर विहार प्रारम्भ किया ।

पाली पहुँच कर उन्होंने मुख पर मुँहपत्ती बाँधने का त्याग कर दिया । उसके बाद मारवाड़ के आबू-राणकपुर आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा करते हुए वे अहमदाबाद की ओर आगे बढ़े ।

जैनपुरी अहमदाबादवासियों ने उनका भव्यातिभव्य नगर-प्रवेश कराया । तत्पश्चात् उनके दिल में शत्रुंजय महातीर्थ की स्पर्शना व दादा की यात्रा की तीव्र उत्कण्ठा थी, उसे पूर्ण करने के लिए वे क्रमशः विहार करते हुए पालीताणा पहुँचे ।

जीवन में पहली बार शाश्वत व महान् तीर्थाधिराज की स्पर्शना कर वे भावविभोर हो गये । उन्होंने भावपूर्वक आदीश्वर दादा के दर्शन किये और इसके साथ ही उनके मुखारविन्द से निम्नलिखित उद्गार निकल पड़े-

अब तो पार भये हम साधो, श्री सिद्धाचल दरस करी रे ॥ अब तो०
आदीश्वर जिन मेहर करी अब, पाप पटल सब दूर भयो रे ।

तन-मन पावन भविजन केरो, निरखी जिनंद चंद सुख थयो रे ॥ अब तो ॥1॥

अर्थ : 'श्री सिद्धाचल महातीर्थ के दर्शन होने से अब हम इस संसार-सागर से पार हो गये हैं । आदीश्वर प्रभु ने हम पर कृपा की है, जिसके फलस्वरूप पाप-मैल सब दूर हो गये हैं । चन्द्र समान जिनेश्वर प्रभु के दर्शन से तन और मन पावन हो गये हैं ।'

पुंडरीक पमुहा मुनि बहु सिद्धा, सिद्धक्षेत्र हम जाँच लह्यो रे ।

पसु पंखी जिहाँ छिनक में तरीया, तो हम दृढ़ विश्वास गह्यो रे ॥2॥

इस तीर्थ की स्पर्शना कर पुंडरीक आदि बहुत से मुनिवर मोक्ष गये हैं । इस सिद्धक्षेत्र की हमने परीक्षा कर ली है । जिस भूमि का स्पर्श कर पशु-पंखी भी शीघ्र तिर जाते हैं, अतः हमें भी दृढ़ विश्वास हो गया है कि हम भी शीघ्र तिर जायेंगे ।

इस पवित्र भूमि की स्पर्शना कर भूतकाल में अनन्त आत्माएँ मोक्ष में गई हैं ।

जिन गणधर अवधिमुनि नाही, किस आगे पुकार करुं रे ।

जिम तिम करी विमलाचल भेट्यो, भवसागर थी नाही डरुं रे ॥3॥

अर्थ : वर्तमान काल में इस भरतक्षेत्र में न तो तीर्थकर हैं, न सर्वज्ञ-सर्वदर्शी गणधर भगवन्त हैं और न ही अवधिज्ञानी मुनि हैं । अब मैं किसके सामने जाकर अपने दिल की व्यथा व्यक्त करूँ ? फिर भी जैसे-तैसे मैं विमलाचल पहुँचा हूँ, अतः अब मुझे भवसागर से कोई भय नहीं है ।

दूर-देशान्तर में हम उपने, कुगुरु कुपंथ को जाल पर्यो रे ।

श्रीजिन आगम हम मन मान्यो, तब ही कुपंथ कु जाल जर्यो रे ॥4॥

अर्थ : 'हे प्रभो ! मेरा जन्म दूर-सुदूर देश में हुआ और वहाँ सद्गुरु का योग नहीं मिलने से मैं कुगुरु और कुपंथ के जाल में फँसा रहा । सद्भाग्य से मुझे जिनेश्वर भगवन्त के आगम प्राप्त हुए, जिसके फलस्वरूप मैंने कुपंथ के जाल का त्याग किया ।'

तो तुम सरण विचारी आयो, दीन अनाथ को सरण दियो रे ।

ज्यों विमलाचल पूरण स्वामी, जनम-जनम को पाप गयो रे ॥5॥

अर्थ : 'हे प्रभो ! इस जगत् में आप ही शरण्य हो, इस बात को जानकर मैं आपकी शरण में उपस्थित हुआ हूँ, आप मुझ दीन व अनाथ को शरण प्रदान करें । विमलाचल के स्वामी को प्राप्त करने के फलस्वरूप मेरे जन्म-जन्म के पाप दूर हो गये हैं ।'

दूरभवी अभव्य न देखे, सूरि धनेसर एम कह्यो रे,

विमलाचल फरसे जे प्राणी, मोक्ष महेल तिणे वेग लह्यो रे ॥6॥

अर्थ :- श्री शत्रुंजय माहात्म्य में श्री धनेश्वरसूरिजी म. कहते हैं-दूरभवी और अभव्य आत्मा इस तीर्थ के दर्शन भी नहीं कर पाते हैं । जो पुण्यवन्त आत्मा इस तीर्थ की स्पर्शना करती है, सचमुच, उस आत्मा ने शीघ्र गति से मोक्षमहल को प्राप्त किया है ।

ज्यों जगदीसर तूं परमेसर, पूर्व नवाणुं वार थयो रे ।

समवसरण रायण तले तेरो, निरखी मम अघ दूर गयो रे ॥7॥

अर्थ :- 'हे जगदीश्वर ! हे परमेश्वर ! आपकी जय हो । जिस रायणतल में आपके निन्यानवे पूर्व बार समवसरण रचे गये हैं, ऐसी रायणपादुका को देखकर मेरे सब पाप दूर हो गये हैं ।'

श्री विमलाचल मुज मन बसीयो, मानु संसारनो अंत कर्यो रे ।

यात्रा करी मन तोष भयो अब, जनम-मरण दुःख दूर गयो रे ॥8॥

निर्मल मुनिजन जो तें तार्या, ते तो प्रसिद्ध सिद्धान्त कह्यो रे ।

मुज सरिखा निन्दक जो तारो, तारक बिरुद ये साँच लह्यो रे ॥9॥

अर्थ :- 'हे प्रभो ! आगम में कहा है कि आपके सान्निध्य ने अनेक पुण्यवन्त आत्माओं को तार दिया है, परन्तु मैं तो आपका 'तारक' विरुद तभी सार्थक समझूँ, जब आप मेरे जैसे निन्दक को तार दें ।'

ज्ञानहीन गुणरहित विरोधी, लंपट धीठ कषाय खरो रे ।

तुझ विन तारक कोई न दीसे, ज्यों जगदीसर सिद्धगिरो रे ॥10॥

अर्थ :- 'हे प्रभो ! इस संसार में झूठे तारक का विरुद धारण करने वाले तो अन्य देव बहुत से हैं परन्तु वे ज्ञान से हीन हैं, गुणरहित हैं, सत्य मार्ग के विरोधी हैं, काम-लम्पट हैं, धृष्ट व कषाय के अधीन हैं अतः हे जगदीश्वर ! आपके बिना इस दुनिया में अन्य कोई तारक मुझे दिखाई नहीं दे रहा है ।'

तिर्यग् नरकगति दूर निवारी, भवसागर की पीर हरो रे ।

आतमराज अनघपद पामी, मोक्षवधू तिने वेग वरी रे ॥11॥

अर्थ :- 'हे प्रभो ! नरक व तिर्यच गति को दूर कर भवसागर की पीड़ा दूर करो । आपकी सेवा के फलस्वरूप आत्माराम ने (कर्ता) निष्पाप पद को प्राप्त कर मोक्ष रूपी वधू को शीघ्र ही वरा है ।

सुविहित परंपरा के महान् आचार्य

वि.सं. 1932 में पूज्य आत्मारामजी म. पंजाब से विहारकर अनेक तीर्थों की यात्रा की यात्रा करते हुए अहमदाबाद पधारे । अहमदाबाद के संघ ने उनका भव्यातिभव्य स्वागत किया । नगरसेठ प्रेमाभाई और दलपतभाई आदि की अगुवानी में लगभग 3000 श्रावक-श्राविकाएं पू. आत्मारामजी म. के स्वागत के लिए तीन कोस दूर गए थें ।

पूज्य आत्मारामजी म. भी अपने प्रवचनों में मुसलाधार मेघ की तरह बरसे थे ।

पूज्य आत्मारामजी म. अहमदाबाद से शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा के लिए पधारे । उन्होंने अत्यंत ही भक्तिपूर्वक गिरिराज की स्पर्शना की और वहां से अहमदाबाद लौटने के बाद 39 वर्ष की उम्र में वि.सं. 1932 अषाढ वदी-10 के दिन पू. बुटेरायजी गणि

(बुद्धिविजयजी) के चरणों में अपना जीवन समर्पितकर संवेगी दीक्षा स्वीकार की । इसके साथ उनके 15 शिष्यों ने भी संवेगी दीक्षा स्वीकार कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किया ।

पूज्य आत्मारामजी म. का नाम **पू. आनंदविजयजी** रखा गया ।

संवत् 1932 का चातुर्मास अहमदाबाद किया । चातुर्मास बाद पुनः शत्रुंजय-गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा कर अनेक पुण्यात्माओं को धर्मबोध देकर पंजाब की ओर विहार किया ।

पंजाब की धरती पर 8-9 वर्षों तक विचरण कर अनेक जिनमंदिरों की प्रतिष्ठा विधि संपन्न की । संवत् 1941 में पुनः गुजरात पधारे । अहमदाबाद एवं सुरत में 1-1 चातुर्मास पूर्णकर **पूज्य आनंदविजयजी म.** अपने 24 शिष्यों के साथ शत्रुंजय पधारे ।

वि.स. 1942 का चातुर्मास पालीताणा में किया । चातुर्मास की समाप्ति के साथ वि.स. 1943 कार्तिक वदी-5 के शुभ दिन भारतभर के समस्त संघों ने मिलकर पूज्य आनंदविजयजी म. को आचार्य पद से अभिषिक्त किया, तब से वे '**विजयानंदसूरिजी**' म. के नाम से प्रख्यात हुए ।

आचार्यपद के इस पावन प्रसंग पर बंगाल, पंजाब, कच्छ, गुजरात, राजस्थान आदि से 35000 लोग इकट्ठे हुए थे । खुब उत्साह उल्लास के साथ श्री संघ ने उन्हें आचार्य पद प्रदान किया ।

भगवान महावीर की पाटपरंपरा में सुधर्मास्वामीजी से लेकर 61 वीं पाट तक सभी आचार्य भगवंत हुए । अर्थात् पूज्य आचार्य भगवंतों ने प्रभु की पाट को वहन किया ।

लेकिन 62 वीं पाट परंपरा से पूज्य सत्य विजयजी आदि पंन्यासजी म. ने वहन की है । 71 वीं पाट पर मणिविजयजी दादा और 72 वीं पाट पर बुद्धिविजयजी गणि (बुटेरायजी म.) हुए ।

इस प्रकार लगभग 240 वर्षों के बाद तपागच्छ की सुविशुद्ध 72वीं पाट परंपरा में पुनः सर्व प्रथम आचार्य विजयानंदसूरिजी हुए ।

अपूर्व सहनशक्ति

पूज्य विजयानन्दसूरिजी महाराज को भावनगर में आँख का मोतिया उतारने का था । ऑपरेशन के पूर्व आँख के आसपास के भाग को सुन्न करने के लिए डॉक्टर इंजेक्शन लगाने की तैयारी करने लगा ।

पूज्य आचार्य भगवन्त ने कहा-''यह इंजेक्शन क्यों ?''

डॉक्टर ने कहा-''आँख की पलकें बन्द न हों इसके लिए इंजेक्शन देना जरूरी है ।''

पूज्य आचार्य भगवन्त ने कहा-''मैं अपनी आँख खुली रखूंगा, आप मोतिया उतार दें ।''

और देखते-ही-देखते डॉक्टर ने उनकी आँख का मोतिया उतार दिया ।

आचार्य भगवन्त की इस अपूर्व सहनशीलता को देख डॉक्टर भी दंग रह गया ।

कैसी अपूर्व सहनशक्ति के स्वामी थे-पू. विजयानन्दसूरिजी महाराज ।

माधुकरी-भिक्षा

पूज्य आचार्य श्री विजयानन्दसूरिजी म. की प्रवचन-प्रतिभा से एक मुसलमान सद्गृहस्थ अत्यन्त ही प्रभावित हुआ । एक बार उसने पूज्यश्री से निवेदन करते हुए कहा, **“आप ऐसे विद्वान् और प्रतिभाशाली पुरुष होकर भिक्षा के आधार पर अपना जीवन-निर्वाह करते हो, यह आपके लिए कितनी शर्म की बात है ?”** आगे चलकर उसने कहा-**“कोई कमजोर, वृद्ध या विकलांग व्यक्ति भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करे यह तो ठीक है, किन्तु आपके जैसे बलवान और अजोड़ पण्डित भी किसी की भिक्षा के आधार पर अपना जीवन निर्वाह करे, यह कहाँ तक उचित है ?”**

पूज्यश्री ने उसे समझाते हुए कहा-**“तुम्हारी सूचना ठीक है । किन्तु मेरे महाव्रत-पालन में बाधा न पहुँचे, ऐसा कोई मार्ग हो तो बताओ, मुझे मजदूरी करने में भी कोई शर्म नहीं है ।”**

उस मुसलमान ने कहा-**“आपके महाव्रत कौनसे हैं ?”**

यह प्रश्न सुनकर पूज्य आचार्य भगवन्त ने खुब विस्तार से पाँच महाव्रतों का स्वरूप उसे समझाया । जिसे सुनकर वह भाई सोच में पड़ गया और अन्त में बोला-**“आप जंगल में से सूखे लकड़े लाकर बाजार में बेचकर अपना जीवन-निर्वाह कर सकते हैं ।”**

पूज्यश्री ने कहा-**“बिना अनुमति के जंगल की उन लकड़ियों को लेने का अधिकार कहाँ है ?”**

उसने कहा-**“इसके लिए आप जंगल के मालिक की अनुमति ले सकते हैं न ?”**

पूज्यश्री ने कहा-**“आखिर तो मांगने की ही बात आई न ? जंगल के मालिक से मांगना, इसके बजाय तो निर्दोष भिक्षा से ही जीवन निर्वाह करना बेहतर है न ?”**

उसके बाद पूज्यश्री ने भिक्षा के 42 दोष समझाकर माधुकरी वृत्ति से भिक्षा ग्रहण करने की विधि समझाई, जिसे सुनकर वह मुसलमान बहुत प्रभावित हुआ ।

पूज्यश्री ने कहा-**“एक भिखारी व मुनि की भिक्षावृत्ति में तो रात-दिन का अन्तर है । हमें भिक्षा देने के लिए तो लोग पड़ापड़ी करते हैं ।”**

समयज्ञता

एक बार विजयानन्दसूरिजी म. अपने विशाल शिष्य परिवार के साथ विंध्याचल के भयंकर जंगल में से प्रसार हो रहे थे । उस जंगल में लुटेरों का गिरोह भी रहता था । अतः मुनि भगवन्तों की सुरक्षा के लिए श्रावकों ने विहार में दो चौकीदार भी नियुक्त किये थे ।

आचार्य भगवन्त ईर्या समिति के पालनपूर्वक क्रमशः आगे बढ़ रहे थे । अचानक लुटेरों का गिरोह उस जंगल में आ धमका । चौकीदारों ने मुनियों को सावधान किया । उसी समय समयज्ञ आचार्य भगवन्त ने सभी साधुओं को अपना अपना डंडा बन्दूक की भाँति कन्धे पर रखने का आदेश कर दिया और एक सैनिक की अदा से पंक्तिबद्ध चलने की आज्ञा दी ।

दूर से सूर्य के सुनहरे प्रकाश में वे डंडे बन्दूक की भाँति चमकने लगे ।

डाकुओं ने सोचा- **“अरे ! यह तो सैनिक दल आ रहा है ।”** और वे दूर से ही भाग खड़े हुए ।

आपातकालीन स्थिति में किस प्रकार आत्म-रक्षण करना ऐसी सूक्ष्म सूझ-बूझ के धनी थे पूज्य विजयानन्दसूरिजी महाराज ।

भवितव्यता

पूज्य विजयानन्दसूरीश्वरजी म.सा. तथा **दयानन्द सरस्वती** समकालीन थे । दोनों की काया हृष्टपुष्ट थी और दोनों प्रभावशाली भी थे ।

दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की और अपनी मनगढ़न्त कल्पनाओं के द्वारा स्वरचित **‘सत्यार्थप्रकाश’** में जैनधर्म का खण्डन करने की बालिश चेष्टा भी की । उस ग्रन्थ के प्रतिकार के लिए **पूज्य विजयानन्दसूरिजी म.** ने **‘अज्ञानतिमिर भास्कर’** नाम की पुस्तक की रचना कर सत्यार्थप्रकाश में प्रकाशित असत्याओं का प्रतिकार किया था ।

इस समय दयानन्द सरस्वती जोधपुर में थे । वे अपने प्रवचनों में जैन धर्म का खण्डन करते थे । जोधपुर के दीवान जैन सदगृहस्थ थे । उन्होंने दयानन्दजी को कहा- **“आप जैनधर्म का खण्डन करते हो तो जैन धर्म के ज्ञाता पूज्य विजयानन्दसूरिजी महाराज यहाँ आ ही रहे हैं, यदि आप दोनों के बीच योग्य चर्चा हो तो योग्य समाधान हो सकता है ।”**

दयानन्दजी ने हाँ भर दी । पूज्य विजयानन्दसूरिजी महाराज पैदल विहार करते हुए आ रहे थे, उनके आगमन में चार पाँच दिन का समय था ।

दयानन्दजी ने सोचा- **“चार-पाँच दिन का समय है तो मैं जयपुर जाकर आ जाऊँ”** इस प्रकार विचार कर रहे थे कि दुर्भाग्य से रसोइए के द्वारा भोजन में विष खिला देने से दयानन्दजी की मृत्यु हो गई । भवितव्यता के योग से दोनों समर्थ पुरुषों का एकत्र मिलन नहीं हो सका ।

यदि दोनों का परस्पर मिलन होता तो शास्त्रीय-वाद से अवश्य ही कुछ नवनीत बाहर आता ।

निरभिमान-व्यक्तित्व

पूज्य आत्मारामजी महाराज ने **पूज्य बुद्धिविजयजी म.** के पास संवेगी दीक्षा स्वीकार की थी ।

पूज्य **बुद्धिविजयजी** महाराज भी मूल पंजाब के ही थे । बालवय में विरक्त बने थे । उन्होंने 1888 में स्थानकवासी मत में दीक्षा अंगीकार की थी, तत्पश्चात् शास्त्राध्ययन के बाद सन्मार्ग का यथार्थ बोध होने पर उन्होंने स्थानकवासी मत का त्याग कर अहमदाबाद-राजनगर में **पूज्य मणिविजयजी दादा** के पास संवेगी दीक्षा अंगीकार की थी ।

एक बार सन्मार्ग की प्राप्ति के पूर्व **आत्मारामजी महाराज** ने मूर्तिपूजा के विरोध में इन्हीं **बूटेरायजी महाराज** से वाद किया था और उस वाद में अपनी बुद्धि, तर्क व प्रतिभा के बल से उन्होंने बूटेरायजी म. को परास्त कर दिया था, परन्तु उस समय बूटेरायजी म. ने कहा था **“वाद में भले ही मैं तुझे नहीं जीत सकता परन्तु मार्ग तो यही सच्चा है और एक दिन तुझे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा ।”** समय व्यतीत हुआ । पूज्य आत्मारामजी म. को भी सन्मार्ग का यथार्थ बोध हुआ । उन्होंने भी शास्त्रोक्त प्रतिमापूजन आदि को हृदय से स्वीकार किया...और अन्त में वि.सं. 1932 में अहमदाबाद में जाकर उन्हीं **बुद्धिविजयजी** का शिष्यत्व स्वीकार किया, जिन्हें उन्होंने पहले वाद में परास्त किया था ।

यह उनकी कितनी निरभिमानता व सरलता थी कि जिन्हें पराजित किया उन्हीं का शिष्यत्व स्वीकार किया । सत्य के शोधक को साधना मार्ग में अभिमान बाधक नहीं बनता है ।

श्री विजयानंदसूरि एवं चिकागो विश्व धर्म परिषद

ईस्वी सन् 1893 वि.सं. 1949 में विश्व स्तर पर सर्वप्रथम बार **अमेरिका** के **चिकागो** शहर में **‘सर्व धर्म परिषद्’** का आयोजन किया गया था । इस परिषद् में भाग लेने के लिए समूचे विश्व के समस्त धर्मों के प्रतिनिधियों को ससन्मान आमंत्रित किया गया था ।

स्वामी **विवेकानंद** ने इस परिषद् में **‘वैदिक धर्म’** का प्रतिनिधित्व किया था ।

इस **‘विश्व धर्म परिषद्’** में भाग लेने के लिए जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में **‘पूज्य आत्मारामजी म.’** को आमंत्रण मिला था ।

जैन साधु की आचार-संहिता का पालन करते हुए पू. आत्मारामजी म. का चिकागो की इस परिषद् में भाग लेना संभव नहीं था ।

पूज्य आत्मारामजी म. उच्च कोटि के विद्वान व सुविशुद्ध संयम पालक साधु थे ।

एक ओर विश्व के रंगमंच पर विश्व के धुरंधर विद्वानों के समक्ष जैन धर्म के शाश्वत सत्यों के प्रस्तुतीकरण का एक सुन्दर अवसर था...तो दूसरी ओर वहाँ पहुँचने में श्रमण-जीवन की सर्वोच्च मर्यादाओं के उल्लंघन का सवाल सामने खड़ा था ।

भूतकाल के इतिहास में जगद्गुरु पू.आ. श्री हीर सूरि जी म. के जीवन में अनेक प्रसंग आए हुए हैं । 'धर्म-प्रचार' के प्रलोभन में आकर उन्होंने कभी भी श्रमण-धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया था । वास्तव में देखा जाय तो यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि **उपदेश से भी आचार-पालन की प्रभावकता अधिक है ।** इस सत्य को ध्यान में रखते हुए जगद्गुरु आ. हीर सूरिजी म. ने अपने संयम जीवन की समुचित मर्यादाओं का पालन करते हुए अपने धर्मोपदेश द्वारा जैन शासन की अद्भुत प्रभावना की थी ।

पूज्य आत्मारामजी म. सूक्ष्म प्रज्ञा के धनी थे । अपनी आचार मर्यादाओं को प्रधानता देकर जब उन्होंने 'विश्व धर्म परिषद्' में भाग लेने से इन्कार कर दिया , तब उनकी विद्वत्ता और महानता से प्रभावित होकर परिषद् के अध्यक्ष ने उन्हें जैन धर्म के प्रतिनिधित्व रूप में एक निबंध या अपने प्रतिनिधि को भिजवाने के लिए आमंत्रण दिया । जब **पूज्य आत्मारामजी म.** ने इस बात को स्वीकार किया तब परिषद् ने उनका अत्यंत ही आभार मानते हुए जो पत्र लिखा , उससे हमें **पूज्य आत्मारामजी म.** की विश्व-प्रसिद्धि का आभास हुए बिना न रहेगा ।

Chicago, U.S.A.

June 12th, 1893

My Dear Sir,

I am desired by the Rev. Barrows to make an immediate acknowledgement of your favour of May 13th, it is eminently to be desired that there should be present at the Parliament of Religions, a learned representative of the Jain Community.

We are indeed sorry that there is no prospect of having the Muni Atmaramji with us and trust the community over which he presides will depute some one to represent. If you therefore decide to send a representative, will you kindly cable the fact to me ! The paper which learned Muni is preparing, will indeed be very welcome and will be given a place in the programme in keeping with Chicago are a long distance from you, the name of Muni Atmaramji is frequently alluded to in religious discussions !

**I am
very truly yours
William Pipe
(Private Secretary)**

इस पत्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दुस्तान में रहते हुए भी **पूज्य आत्मारामजी म.** कितने अधिक लोकप्रिय थे !

विश्व के सुप्रसिद्ध विद्वानों के बीच जैन धर्म के प्रतिनिधि के रूप में किसे भेजा जाय ? यह जानने के लिए पू. आत्मारामजी म. ने श्रावक संघ पर अपनी नजर दौड़ाई । उस समय श्रावक संघ में जैन धर्म के सूक्ष्म विद्वान् श्रावक बहुत ही अल्प थे । आखिर उन्होंने '**वीरचंद राघवजी गांधी**' को पसंद किया । वीरचंद भाई उम्र में काफी छोटे थे, फिर भी उनकी सूक्ष्म प्रज्ञा, नम्रता, विशिष्ट वक्तृत्व शैली आदि गुणों से पू. आत्मारामजी म. को काफी संतोष था ।

पूज्य आत्मारामजी म. ने वीरचंद गांधी को अपने पास रखकर जैन धर्म का गहन अध्ययन कराया । तीव्र मेधा के कारण वीरचंद गांधी ने अल्पावधि में ही जैन धर्म का गहन अध्ययन कर लिया ।

वीरचंद राघवजी गांधी के प्रभावक व्यक्तित्व व वक्तृत्व से **पू. आत्मारामजी म.** को पूर्ण संतोष था ! महान् प्रभावक गुरुवर के अंतःकरण की शुभाशीष को प्राप्त कर वीरचंद राघवजी गांधी ने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया । पूज्य आत्मारामजी म. ने '**विश्व धर्म परिषद**' के लिए '**चिकागो प्रश्नोत्तर**' नामक निबंध तैयार किया था, वह निबंध **वीरचंद गांधी** को दिया था ।

अमेरिका के चिकागो शहर में आयोजित यह '**विश्व धर्म परिषद**' 19 दिन तक चलती रही । वीरचंद गांधी ने अपने प्रभावक वक्तृत्व के द्वारा विश्व के इस मंच पर जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप प्रगट किया । उस समय अनेक पत्रों में परिषद के समाचार प्रकाशित हुए थे ।

वीरचंद गांधी ने अपने वक्तृत्व के द्वारा लोगों को कितना अधिक प्रभावित किया, उसका पता हमें उस समय प्रकाशित अमेरिकन समाचार पत्र से लगता है-

"A number of distinguished Hindu scholars, philosophers and religious teachers attended and addressed the Parliament. Some of them taking rank with the highest of any race for learning, eloquence and piety. But it is safe to say that no one of the oriental Scholars was listened to with greater interest than the Young Layman (Virchand Gandhi) of Jain Community as he declared the ethics and Philosophy of his People."

विश्व धर्म परिषद के बाद अमेरिकावासियों के अति आग्रह एवं उनकी तत्त्वजिज्ञासा की पूर्ति के लिए **वीरचंद गांधी** लगभग दो वर्ष तक अमेरिका में रहे और वहाँ पर उन्होंने अमेरिका के मुख्य-मुख्य नगरों में जैन धर्म विषयक अनेक प्रवचन कर लोगों को बहुत प्रभावित किया ।

अमेरिका के एक समाचार पत्र ने उनका परिचय इस प्रकार दिया-

"Mr. V.R. Gandhi, B.A. of the University of Bombay, India, is a brilliant lawyer of unusual attainments and is master of fourteen languages including English. He is the Honorary Secretary of the Jain Association of India, and enjoys the distinction of being the only gentleman from India. He is a man of strong personality, filled with enthusiasm, sincere and earnest in purpose, a man of unflinching moral courage and the Soul of Honour....he will answer all questions after the lecture that any one from the audience may choose to ask. There cannot be much said in praise of this grand and noble man who daily lives up to the principles of purity which he advocates."

चिकागो परिषद के बाद वीरचंद गांधी ने Steinway Hall में अपना प्रवचन दिया था । लोगों के आग्रह से गांधी ने Masonic Temple नामक Building की 13 वीं मंजिल पर अपनी Office स्थापित की ।

मेनीस्टी शहर में 'युनीटेरियन पंथ' के क्रिश्चियन लोगों का सम्मेलन था, वहाँ पर वीरचंद गांधी ने 'Occultism in India' विषय पर भाषण किया था । ओशकोश शहर में 'कोंग्रेसेशनल पंथ' के क्रिश्चियन पादरी **रेवरंड मी. स्मिथ** के आग्रह से वीरचंद गांधी ने 'हिन्दुस्तान का प्राचीन धर्म' विषय पर भाषण दिया था । इस प्रकार रेसीन, ओकपार्क, एंवस्टन, एंगलवुड, रेवीड्ज, चार्लोट, बोस्टन, वाशिंगटन, क्लीवलैंड, डीट्रोइट, रोचेस्टर, ग्रांडरेपीड्ज आदि अनेक शहरों में विविध विषयों पर भाषण किए थे ।

उनके भाषणों से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों ने तत्कालीन पत्रों में अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की थीं-

R.A. White of Chicago लिखते हैं-

"I consider Mr. Gandhi one of the best equipped of many scholarly men who represented the various religions of India in the recent Parliament of Religions.

Public lecture given by him in my church was, in my opinion, a most scholarly production, both in matter and form and showed a thorough grasp of oriental philosophy. Mr. Gandhi has a fine command of English tongue, and is altogether a most interesting man in every way."

Rev. Addison Parker लिखते हैं-

"During the meeting of the Parliament of Religions at Chicago, I had the pleasure of listening to Mr. Gandhi's address upon the Jains of India, and also of a brief personal conversation with him. He impressed me as one of the brainiest and most stirring of the representatives of the far East.

वीरचंद गांधी ने अपनी अमेरिकन यात्रा में जो कुछ सफलताएँ हासिल कीं, उनका संपूर्ण यश **पू. विजयानंदसूरिजी म.** को जाता है। वीरचंद गांधी को तैयार करनेवाले वे स्वयं ही थे।

लंदन से प्रकाशित 'The World's Parliament of Religions' के 21 वें पृष्ठ पर पूज्य आत्मारामजी म. का फोटो छपा है। उस फोटो के नीचे उनके व्यक्तित्व के परिचायक निम्न लिखित शब्द हैं-

No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain Community as Muni Atmaramji. He is one of the noble bards sworn from the day of Initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the High priest of the Jain community and is recognised as the highest authority on Jain Religion and literature by Oriental Scholars.

महान् पुरुषों का जीवन ही ऐसे पद-चिह्न हैं कि जिन पद-चिह्नों पर चलकर सामान्य व्यक्ति भी अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। **Longfellow** ने ठीक ही कहा है-

“Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing leave behind us,
Foot prints on the sand of time.

आज पूज्य विजयानंदसूरीश्वरजी म. को इस संसार से विदाई लिये एक सौ चालीस वर्ष पूर्ण हुए हैं। इन वर्षों में विश्व में बहुत परिवर्तन आया है। फिर भी पूज्य विजयानंदसूरीश्वरजी म. के प्रभावशाली व्यक्तित्व और अद्भुत कर्तृत्व की सुगंध आज भी जगत् में विद्यमान है। उन्होंने अपने जीवन में जैन शासन की जो सेवाएँ की हैं, उन्हें हम कदापि भूल नहीं सकते।

वे सत्य मार्ग के परम उपासक थे। स्थानकवासी जीवन दरम्यान जब उन्हें इस बात का पता चला कि मैं गलत मार्ग पर हूँ...और सत्य मार्ग कोई और है तो इस बात का पता चलते ही अपने मान की परवाह किए बिना उन्होंने असत्य मार्ग को छोड़ दिया और सत्यमार्ग को स्वीकार किया।

अपनी सत्यनिष्ठा के कारण ही वे युगदृष्टा बने थे। उनकी सत्यनिष्ठा के कारण ही उनके समुदाय की परम्परा में आज भी चार चांद लगे हुए हैं।

जैनधर्म के शाश्वत सत्यों को विश्व के रंगमंच पर प्रसिद्ध कराने में उनका जो योगदान रहा, उसे कभी भूल नहीं सकते हैं।

सत्य के पक्षपाती

जिनागम के 'सत्य' को समझने के बाद उन्होंने कुमत का त्यागकर पुनः संवेगी दीक्षा अंगीकार की थी ।

—वे सत्य मार्ग के पक्षपाती तो थे ही, अन्यो को सन्मार्ग दिखाने के लिए उन्मार्ग के खंडन के रूप में उन्होंने कई ग्रंथों का सर्जन भी किया ।

1. आर्य-समाजी **दयानंद सरस्वती** विरचित 'सत्यार्थ प्रकाश' के विरोध में एवं उसके प्रत्युत्तर में 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रंथ की रचना की ।

2. ईसाई धर्म के विरोध में 'ईसाई मत समीक्षा' पुस्तक लिखी ।

3. प्रतिक्रमण-देवदंडन आदि में चतुर्थ थोय की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए 'चतुर्थ स्तुति निर्णय-भाग I व II' की रचना की ।

4. स्थानकवासियों ने 'सम्यक्त्वसार' पुस्तक लिखकर उत्सूत्र प्ररूपणा की, उसके विरोध में 'सम्यक्त्व शल्योद्धार' का आलेखन कर सत्यमार्ग की उद्घोषणा की ।

अद्भुत समाधि-मरण

यद्यपि विजयानंदसूरिजी म. की काया खुब हष्ट पुष्ट थी, फिर भी 56 वर्ष की प्रौढ वय में उनके पैरों में दर्द चालू हो गया था ।

वि.सं. 1951 का अंतिम चातुर्मास जीरा गांव में किया । चातुर्मास बाद 'पट्टी' पधारे । वहां 50 जिनबिंबों की अंजनशलाका प्रतिष्ठा विधि संपन्न की ।

अंबाला में भी जिन मंदिर तैयार हो चुका था । श्रावकों की विनती स्वीकार कर पूज्य आचार्य भगवंत अंबाला पधारे ।

'सर्व धर्म परिषद्' में जैन धर्म का प्रतिनिधित्व करनेवाले **वीरचंद राघवजी गांधी** इस बीच अमेरिका से भारत आए और वे **पूज्य विजयानंदसूरिजी म.** को अंबाला में मिले थे ।

'सर्व धर्म परिषद्' और अमेरिका के विविध क्षेत्रों में **वीरचंद राघवजी गांधी** के जो प्रवचन आदि हुए थे, उन सब की विस्तृत रिपोर्ट वीरचंदभाई ने आचार्य भगवंत को सुनाई, जिसे सुनकर आचार्य भगवंत खुब प्रसन्न हुए ।

अंबाला के नूतन मंदिर की प्रतिष्ठा संपन्न कराकर पूज्य विजयानंदसूरिजी म. लुधियाना पधारे । वहां पर अपने उपदेश द्वारा संघ में रहे कुसंप को दूर किया ।

वहां से पूज्य आचार्य भगवंत सनखतरा (जिला-सिपाल कोट) पधारे । वहां शत्रुंजय की टूंक जैसा, जिनमंदिर तैयार हो चुका था । पूज्य आचार्य भगवंत की शुभ निश्रा में उसकी भी अंजनशलाका प्रतिष्ठा विधि खूब उत्साह के साथ संपन्न हुई ।

अब उनके देह को पूर्ण आराम की जरूरत थी, परंतु एक के बाद एक विहार के कार्यक्रम बनते जा रहे थे ।

सनखतरा से गुजरांवाला की ओर आचार्य भगवंत का विहार प्रारंभ हुआ ।

बीच में पशरुट गांव में उष्णजल का योग नहीं मिलने से छाश का उपयोग करना पडा । योगानुयोग वह भी खट्टी थी , शाम को पुनः वहां से विहारकर वडाला पधारे । वहां रात्रि में उनको भयंकर दम चालू हो गया ।

अब थोडा भी विहार उनके लिए कठिन हो गया । एक दिन का विहार तीन-तीन दिनों में पूरा होने लगा ।

बडी कठिनाई से जेट सुदी-2, वि.सं. 1952, के दिन पूज्य आचार्य भगवंत गुजरांवाला पहुँचे । संघ ने उनका भव्य स्वागत किया । स्वास्थ्य ठीक नहीं था , फिर भी उन्होंने प्रवचन दिया , यह उनका अंतिम प्रवचन था ।

देह के इलाज के लिए संघ दवाई लेने के लिए आग्रह करने लगा तो उन्होंने इन्कार कर दिया ।

उन्होंने कहा , **‘छोटी छोटी बीमारी में क्या दवाई लेने की ? यह रोग तो परिषह हैं , शक्ति हो तो इसे सहन करना ही चाहिये ।’**

विक्रम संवत् 1952 जेट सुदी सप्तमी की शाम को पूज्य आचार्य भगवंत ने प्रतिक्रमण किया । उसके बाद संथारा पोरिसी पढाकर सो गए ।

रात्रि के शांत वातावरण में किसे पता था कि युग पुरुष की विदाई के लिए मौत मंद कदमों से आ रही है ।

सभी आश्वस्त थे कि रोग सामान्य है , अतः पूज्य आचार्य भगवंत 1-2 दिन में पूर्ण स्वस्थ हो जाएंगे ।

जेट सुदी 7 + 8 वि.सं. 1952 का दिन । दोपहर में अस्वस्थता बढी , परंतु अरिहंत-अरिहंत का उनका जाप चालू ही था । उन्होंने हाथ में रजोहरण लेकर गुरु वंदन किया । साधुओं ने पुनः महाव्रत उच्चराए । **पापों की निंदा व सुकृतों की अनुमोदना पूर्वक चार शरण स्वीकार किये । सभी के साथ क्षमायाचना की । फिर देह-आत्मा के भेद की अनुभूति में लीन बने । शाम को प्रतिक्रमण बाद पुनः अस्वस्थता बढी । श्वास बढने लगा-फिर भी असह्य वेदना के बीच भी नवकार का अखंड जाप चालू था ।**

मध्य रात्रि में आचार्य भगवंत की नींद उड गई । दम का जोर खूब बढ गया । वे स्थंडिल जाकर आए और ‘अर्हम्’ शब्द का पुनः पुनः उच्चारण करने लगे ।

इसी बीच **‘लो भाई ! अब हम चलते हैं और सबको खमाते हैं’** इतना कहकर उन्होंने इस दुनिया से चिरविदाई ले ली ।

रात्रि में 12 बजे उनकी आत्मा ने देह पिंजर को छोड दिया और वे ऊर्ध्व दिशा की ओर आगे बढ गए ।

जैन शासन ने एक तेजस्वी आचार्य और समुदाय ने एक सफल गच्छ नेता खो दिया ।
सुबह होने तक तो ये समाचार दूर-सुदूर क्षेत्रों में फैल गए । सभी के आश्चर्य का पार न रहा । सभी दिग्मूढ हो गए ।

दूसरे दिन पूरे मान-सन्मान के साथ पूज्यश्री के देह का विधिपूर्वक अग्नि संस्कार किया गया । पूज्यश्री की विदाई से जैन शासन में शुन्यावकाश छा गया ।

उनकी पुण्य स्मृति में शत्रुंजय महातीर्थ एवं गिरनार महातीर्थ में उनकी प्रतिमा स्थापित की गई !

त्याग, तप और संयम की निर्मल साधना के द्वारा अपने जीवन को सफल बनाने वाले और सन्मार्ग की राह दिखाकर अनेकों के जीवन को प्रकाशित करनेवाले युगपुरुष के चरणों में कोटि कोटि वंदन हो ।

ग्रंथ रचना

प.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय विजयानंदसूरिजी म. ने अपने जीवन काल दरम्यान अनेक ग्रंथों का सर्जन कर जैन शासन की अद्भुत प्रभावना की है ।

1. वि.सं. 1927 में 'नवतत्त्व' की रचना की ।
2. वि.सं. 1937 में 'जैन तत्त्वादर्थ' की रचना की ।
3. वि.सं. 1942 में 'अज्ञान तिमिर भास्कर' की रचना की ।
4. वि.सं. 1941 में 'श्री सम्यक्त्व शल्योद्धार' की रचना की ।
5. वि.सं. 1942 में 'जैनमत वृक्ष' की रचना की ।
- 6-7. वि.सं. 1944 में 'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-1-2' की रचना की ।
8. वि.सं. 1945 में 'जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर' की रचना की ।
9. वि.सं. 1949 में 'चिकागो प्रश्नोत्तर' की रचना की ।
10. वि.सं. 1951 में 'श्री तत्त्वनिर्णय प्रसाद' की रचना की ।
11. वि.सं. 1951 में 'ईसाई मत समीक्षा' की रचना की ।
12. वि.सं. 1939 में 'स्तवन चौबीसी' की रचना की ।
13. वि.सं. 1939 में 'सत्तरभेदी पूजा' की रचना की ।
14. वि.सं. 1940 में 'बीस स्थानक पूजा' की रचना की ।
15. वि.सं. 1943 में 'अष्टप्रकारी पूजा' की रचना की ।
16. वि.सं. 1948 में 'नवपद पूजा' की रचना की ।
17. वि.सं. 1950 में 'स्नात्र पूजा' की रचना की ।

**पूज्य आत्मारामजी महाराज के साथ स्थानकवासी दीक्षा
त्याग कर संवेगी दीक्षा स्वीकार करनेवाले महानुभाव**

स्थानकवासी परम्परा में नाम	संवेगी दीक्षा के बाद नाम	गुरु का नाम
1. आत्मारामजी	पू. मुनिश्री आनन्दविजयजी	पू.मु. श्री बुद्धिविजयजी
2. विशनचन्दजी	पू. मुनिश्री लक्ष्मीविजयजी	पू.मु. श्री आनन्दविजयजी
3. चम्पालालजी	पू. मुनिश्री कुमुदविजयजी	पू.मु. श्री लक्ष्मीविजयजी
4. हुकमराजजी	पू. मुनिश्री रंगविजयजी	पू.मु. श्री आनन्दविजयजी
5. सलामतरायजी	पू. मुनिश्री चारित्रविजयजी	"
6. हाकिमरायजी	पू. मुनिश्री रत्नविजयजी	"
7. खूबचन्दजी	पू. मुनिश्री सन्तोषविजयजी	"
8. कन्हैयालालजी	पू. मुनिश्री कुशलविजयजी	"
9. तुलसीरामजी	पू. मुनिश्री प्रमोदविजयजी	"
10. कल्याणचन्दजी	पू. मुनिश्री कल्याणविजयजी	पू.मु. श्री चारित्रविजयजी
11. निहालचन्दजी	पू. मुनिश्री हर्षविजयजी	पू.मु. श्री लक्ष्मीविजयजी
12. निधानमलजी	पू. मुनिश्री हीरविजयजी	पू.मु. श्री कुमुदविजयजी
13. रामलालजी	पू. मुनिश्री कमलविजयजी	पू.मु. श्री लक्ष्मीविजयजी
14. धर्मचन्दजी	पू. मुनिश्री अमृतविजयजी	पू.मु. श्री रत्नविजयजी
15. प्रभु दयालजी	पू. मुनिश्री चन्द्रविजयजी	पू.मु. श्री रंगविजयजी
16. रामलालजी	पू. मुनिश्री रामविजयजी	पू.मु. श्री मोहनविजयजी
17. चन्दनमलजी	पू. मुनिश्री चन्दनविजयजी	पू.मु. श्री बुद्धिविजयजी

प्रस्तुत ग्रंथ के संदर्भ में :-

‘नवतत्त्व-संग्रह’ पूज्य विजयानंदसूरिजी की अनमोल कृति है। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना वि.सं.1927 में की थी। इस ग्रंथ के स्वाध्याय से ही पता चलता है कि उनका आगमिक अभ्यास कितना गहन और ठोस था।

उन्होंने आगमों के आधार पर नव तत्त्वों का बहुत ही सुंदर संकलन किया है।

इस ग्रंथ में उन्होंने भगवती सूत्र, पन्नवणा सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, टाणांग सूत्र आदि आगम ग्रंथों में से पदार्थों का संग्रह किया है। कहीं पर गोम्मटसार दिगंबर ग्रंथ की भी साक्षी दी है।

—बाल जीव सरलता से समझ सके, इसके लिए उन्होंने 192 कोष्ठक बनाए थे।

वे आशु कवि भी थे, उन्होंने श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित ‘ध्यान शतक’ ग्रंथ एवं वैराग्य पोषक अनित्य आदि बारह भावनाओं को पंजाबी मिश्र हिन्दी भाषा में काव्य के रूप में भी गुंथा है।

—इस ग्रंथ की रचना उन्होंने संवेगी दीक्षा अंगीकार करने के पहले की थी, परंतु उस समय ढूँढक मत के त्याग की भावना दृढ़ बन चुकी थी। ग्रंथ की रचना वि.सं.1927 में बिनोली (उत्तर प्रदेश) में की थी। प्रशस्ति में स्थानकवासी दीक्षा गुरु ‘जीवन राम’ का भी उल्लेख किया है।

वि.सं. 1949 में शेष काल में शत्रुंजय गिरिराज की पावन भूमि में ओसवाल यात्रिक भवन पालीताणा में मेरी स्थिरता था, उस समय मैं मुनि अवस्था में था।

वि.सं. 1952 में पंजाब देशोद्धारक विजयानंदसूरिजी म. का स्वर्गारोहण शताब्दी वर्ष आ रहा था, उस समय क्षत्रिय परमारोद्धारक पू. आचार्य देव श्रीमद् विजय इन्द्रदिन-सूरीश्वरजी म.सा. ने मुझे पूज्य आत्मारामजी म. के ‘नवतत्त्व संग्रह’ ग्रंथ के हिन्दी सरलीकरण के लिए प्रेरणा की थी, उन्हीं की प्रेरणा से मैंने 6-7 महिनों में उसके हिन्दीकरण का कार्य परिपूर्ण किया था। जिसका प्रकाशन वि.सं. 2057 में पावागढ से हुआ था। उसका पुनः परिमार्जन किया गया और आज उसकी तृतीय आवृत्ति प्रकाशित हो रही है।

यद्यपि उसके अनुवाद आदि में पूर्ण सावधानी रखने की कोशिश की है, फिर भी मतिमंदता वश कही भी स्खलना रही हो तो उनके लिए त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम्।

प्रेमसूरि गुरु मंदिर

पिण्डवाडा,

दि. 11-08-2027

निवेदक

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर

श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

चरण चंचरिक रत्नसेनसूरि

पू. आचार्य श्री विजयानंदसूरिजी विरचित साहित्य-परिचय

1. नवतत्त्व संग्रह-

यह ग्रन्थ उन्होंने संवत् 1924 में बिनौली (उत्तर प्रदेश) में लिखना प्रारंभ किया था और संवत् 1927 में पूर्ण किया इस ग्रन्थ में नव तत्त्वों के स्वरूप को गहनता से समझाया गया है। स्थान-स्थान पर आगमों के उद्धरण उद्धृत किए हैं। इस ग्रन्थ से उनके आगम विषयक असीम ज्ञान का परिचय मिलता है।

2. जैनतत्त्वादर्थ-

यह ग्रन्थ उन्होंने संवत् 1927 में गुंजरानवाला (पाकिस्तान) में लिखना प्रारंभ किया था और संवत् 1938 में होशियारपुर में पूर्ण किया। इस ग्रन्थ में बारह परिच्छेद हैं। इससे जैन धर्म, दर्शन, आचार और इतिहास आदि का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है। यह ग्रन्थ उनका गागर में सागर की तरह है।

3. अज्ञान तिमिर भास्कर-

यह ग्रन्थ उन्होंने संवत् 1939 में अम्बाला में लिखना प्रारंभ किया और 1942 में खंभात (गुजरात) में पूर्ण किया। इस ग्रन्थ के नाम से इसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के रूप में इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

वेद, पुराण, स्मृति और उपनिषदों का खंडन और जैन सिद्धान्तों का मंडन किया गया है। **दयानंद सरस्वती** द्वारा लिखित **सत्यार्थ प्रकाश** पुस्तक में जैन धर्म और दर्शन पर किए गए मिथ्या आक्षेपों का तर्क संगत जवाब इस ग्रन्थ में हैं।

4. सम्यक्त्वशल्योद्धार-

यह ग्रन्थ उन्होंने वि.सं. 1941 अहमदाबाद में लिखना प्रारंभ किया था और संवत् 1941 में अहमदाबाद में ही पूर्ण किया था। स्थानकवासी साधु **जेठमलजी** ने **समकित सार** पुस्तक में मूर्तिपूजा का खंडन किया था। इस पुस्तक के उत्तर में **आचार्य श्रीमद् विजयानंदसूरि महाराज** ने यह पुस्तक लिखी थी। इस ग्रन्थ में उन्होंने मूर्तिपूजा से संबंधित आगमों के अनेक पाठ उद्धृत करके उसे आगम सम्मत सिद्ध किया है।

5. जैन मत वृक्ष-

यह पुस्तक उन्होंने संवत् 1942 में सूरत में लिखनी प्रारंभ की थी और उसी वर्ष सूरत में पूर्ण की थी। इसमें जैन धर्म और जैन श्रमण परंपरा का प्राथमिक इतिहास है।

6. चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-1-

यह पुस्तक उन्होंने संवत् 1944 में राधनपुर में लिखनी प्रारंभ की और उसी वर्ष राधनपुर में ही पूर्ण की थी।

आचार्य श्रीराजेन्द्रसूरि एवं **मुनि धनविजयजी** ने चार थुई के स्थान पर तीन थुई का प्रवर्तन किया था और वे तीन थुई को ही शास्त्र सम्मत सिद्ध करने का असफल प्रयत्न कर रहे थे। उनके उत्तर में उन्होंने चार थुई को शास्त्र सम्मत सिद्ध किया है और प्रमाण के रूप में पूर्वाचार्यों के 82 ग्रन्थों के प्रमाण दिए हैं।

7. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर-

इस पुस्तक का प्रारंभ संवत् 1945 में पालनपुर में किया गया और उसी वर्ष पालनपुर में ही समाप्त किया गया।

इस पुस्तक में जैन धर्म से संबंधित प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं। जैन धर्म का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

8. चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-2-

इस पुस्तक का प्रारंभ संवत् 1948 में किया गया और उसी वर्ष **पट्टी** में ही इसे समाप्त किया गया।

पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज के पूर्व पुस्तक **चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग प्रथम** के विरुद्ध तीन थुई के **मुनि श्रीधनविजयजी** ने उनके ऊपर कुछ अनुचित आक्षेप किए थे। उन आक्षेपों के उत्तर के रूप में यह दूसरा भाग लिखा गया है।

9. चिकागो प्रश्नोत्तर-

इस पुस्तक का प्रारंभ वि. सं. 1949 में अमृतसर में किया गया और उसी वर्ष इसे समाप्त किया गया। ई. सन् 1893 में चिकागों में विश्व धर्म परिषद् हुई थी। इस परिषद् में श्री वीरचंद राघवजी गांधी जैन धर्म के प्रतिनिधि बनकर गए थे। परिषद् के आयोजकों ने **पूज्य श्रीआत्मारामजी महाराज** से परिषद् के लिए अपना एक निबंध भेजने की प्रार्थना की थी। उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करके पूज्यश्री ने चिकागो प्रश्नोत्तर पुस्तक लिखकर श्री वीरचंद राघवजी को दी थी। इसमें जैन धर्म का प्राथमिक ज्ञान है।

10. तत्त्व निर्णय प्रासाद—

इस ग्रन्थ का प्रारंभ उन्होंने संवत् 1951 में जीरा में किया था और संवत् 1953 में गुजरानवाला (पाकिस्तान) में पूर्ण किया ।

यह ग्रन्थ उनका अन्य सभी ग्रन्थों से अधिक विशालकाय है । इसमें 36 प्रकरण है । वेद, पुराण, स्मृति और उपनिषद् आदि की समीक्षा की गई है । सच्चे ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्वरूप बताया गया है । गृहस्थ के सोलह संस्कार तथा दिगम्बर और श्वेताम्बर परंपरा का भी विस्तार से वर्णन किया गया है ।

11. ईसाई मत समीक्षा—

यह पुस्तक एक ईसाई द्वारा जैन धर्म पर किए गए आक्षेपों के खंडन रूप में लिखी गई है । इस पुस्तक से पढ़ने से ज्ञात होता है कि पूज्य **श्री आत्मारामजी महाराज** को ईसाई धर्म का कितना सूक्ष्म और विशद ज्ञान था ।

12. जैन धर्म का स्वरूप—

यह उनकी सबसे छोटी पुस्तक है । जो लोग जल्दी ही जैन धर्म के विषय में जानना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है ।

13. हिन्दी काव्य रचनाएं—

- 1) संवत् 1927 में बिनौली में उन्होंने आत्मबावनी की रचना की ।
- 2) संवत् 1930 में अम्बाला में जिन चौबीसी की रचना की ।
- 3) संवत् 1940 में बीकानेर में बीस स्थानक पूजा की रचना की ।
- 4) संवत् 1943 में पालीताणा में अष्टप्रकारी पूजा की रचना की ।
- 5) संवत् 1948 में पट्टी में नवपद पूजा की रचना की ।
- 6) संवत् 1950 में जंडियालागुरु में स्नात्रपूजा की रचना की ।

उनकी ये पूजाएं और स्तवन हिन्दी भाषी क्षेत्र में सर्वत्र प्रचलित हैं और हजारों व्यक्ति इनसे लाभान्वित हो रहे हैं । उन्होंने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में जैन साहित्य की विपुल रचना करके जैन धर्म, दर्शन, साहित्य और समाज पर महान उपकार किया है । उनकी इस साहित्यिक देन और कार्य को कभी भुलाया नहीं जा सकता ।

(मुनिश्री नवीनचंद्रविजयजी के लेख में से साभार)

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	जीव तत्त्व	1
2.	अजीव तत्त्व	146
3.	पुण्य तत्त्व	170
4.	पाप तत्त्व	173
5.	आश्रव तत्त्व	174
6.	संवर तत्त्व	176
7.	निर्जरा तत्त्व	217
8.	बंध तत्त्व	243
9.	मोक्ष तत्त्व	298



नवतत्त्व संग्रह

शुद्धज्ञान-प्रकाशाय, लोकालोकैकभानवे ।

नमः श्री वर्धमानाय, वर्धमान-जिनेशिने ॥

जीव-तत्त्व-1

नवतत्त्व-संग्रह में सर्वप्रथम जीव-तत्त्व है-प्रज्ञापना पद-1

नरक नाम-1. रत्न प्रभा, 2. शर्करा प्रभा, 3. वालुका प्रभा, 4. पंक प्रभा, 5. धूमप्रभा, 6. तमःप्रभा, 7. तमस्तमा प्रभा ।♦

पृथ्वी काय- 1. काली मिट्टी, 2. नीली मिट्टी, 3-5. इस प्रकार पांच वर्ण की मिट्टी, 6. पांडु, 7. पनग धूल, 8. कंकड, 9. रेती, 10. लवण, 11. रांग, 12. लोहा, 13. ताम्र, 14. सीसा, 15. चांदी, 16. स्वर्ण, 17. हरताल, 18. सिंगरफ (हिंगलोक), 19. मनःशिल, 20. पारा, 21. प्रवाल, 22. मूंगा, 23. सोवीर अंजन, 24. अभ्रक तथा सभी जाति के रत्न-पन्ने माणिक आदि, सूर्यकांत आदि मणि ।■

अप्काय- 1. ओस, 2. हिम, 3. कोहरा, 4. कडा, 5. हरितनु, 6. वर्षा, 7. स्वाभाविक शीतल जल, 8. स्वाभाविक उष्ण जल, 9. खारा पानी, 10. खट्टा पानी, 11. लवण जैसा खारा पानी, 12. वारुण समुद्रोदक, 13. क्षीर समुद्र का पानी, 14. घृतोदक, 15. इक्षुरस जैसा पानी, 16. कुएं आदि जलाशय का पानी ।□

तेजस्काय- 1. अंगार, 2. ज्वाला, 3. मुर्मुर, 4. अर्ची, 5. उत्सुक, 6. लोहपिंड

♦“नेरइया सत्तविहा पन्नत्ता, तं जहा 1. रयणप्पभापुढविनेरइया, 2. सक्करप्पभा0, 3. वालुयप्पभा0, 4. पंकप्पभा0, 5. धूमप्पभा, 6. तमप्पभा0, 7. तमतमप्पभा0” (प्र0 सू0 31)

■“सण्हबायर पुढविकाइया सत्तविहा पन्नत्ता, तं जहा, 1. किण्हमत्तिया, 2. नील मत्तिया, 3. लोहिय मत्तिया, 4. हालिद्धमत्तिया, 5. सुक्किल्लमत्तिया, 6. पांडुमत्तिया, 7. पणगमत्तिय सेतं सण्हबादरपुढविकाइया” (सू01 14)...खरबायरपुढविकाइया अणेगविहा पन्नत्ता तं जहा, 1. पुढवीय 2. सक्करा, 3. वालुयाय, 4. उवले, 5. सिलाय 6-7. लोणूसे, 8. अय, 9. तंब, 10. तउय 11. सीसय, 12. उप्प, 13. सुवन्नेय, 14. बइरेय ॥1॥ 15. हरियाले, 16. हिंगुलए, 17. मणोसिला, 18-20. सासगंजणपवाले, 21-22. अब्भपडलब्धवालुय बायरकाए मणिविहाणा ॥2॥ 23. गोमेज्जएय, 24. रूयए, 25. अंके, 26. फलिहेय, 27. लोहियक्खेय, 28. मरगय, 29. मसार गल्ले, 30. भुयमोयग, 31. इंदनीलेय ॥3॥ 32. चंदण, 33. गेरुय, 34. हंसगम्भ, 35. पुलए, 36. सोगंधिएय बोद्धवे । 37. चंदप्पभ, 38. वेरुलिए, 39. जलकंते, 40. सूरकंतेय ॥4॥ (प्रज्ञा0 सू0 15)

□ बादर आउकाइया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा 1. उस्सा, 2. हिमए, 3. महिया, 4. करए, 5. हरतणुए, 6. सुद्धोदए, 7. सीतोदए 8. उसिणोदए, 9. खारोदए, 10. खट्टोदए, 11. अंबिलोदए, 12. लवणोदए, 13. वारुणोदए, 14. खीरोदए, 15. घओदए, 16. रसोदए, (प्रज्ञा0 सू0 16)

मिश्रित, 7. उल्कापात की अग्नि, 8. बिजली, 9. भुभर, 10. निर्घात अग्नि, 11. अरणी आदि काष्ठ घिसने से उत्पन्न अग्नि, 12. सूर्यकांत मणि से उत्पन्न अग्नि इत्यादि ।♦

वायुकाय- 10. दस दिशाओं का वायु, 11. उत्कलिका, 12. मंडलिवायु, 13. गुंजावायु, 14. झखड, 15. झंझा, 16. संवर्तकवायु, 17. घनवात, 18. तनुवात, 19. शुद्धवायु इत्यादि ।■

प्रत्येक वनस्पतिकाय- 1. वृक्ष-आम्र आदि, 2. गुच्छे-बैंगन आदि, 3. गुल्म-वनमल्लिका आदि, 4. लता-चंपक आदि, 5. वल्ली-कोहल आदि, 6. पर्व-इक्षु आदि, 7. तृण-दर्भ आदि, 8. वलया-केतकी आदि, 9. हरित-तंदुली आदि, 10. औषधि-सभी जाति के धान्य, 11. कमल आदि, 12. कुहण-भूमि स्फोटक आदि ।□

अनंतकाय- 1. हल्दी, 2. अदरक, 3. मूली, 4. गाजर, 5. आलू, 6. पिंडालू, 7. छेदने के बाद बढ़ते हों, 8. नए अंकुर, 9. कृष्णकंद, 10. वज्र कंद, 11. सूरणकंद, 12. खेलूडा इत्यादि । प्रज्ञापना सूत्र से इसके लक्षण जान लेना चाहिये । ॥०

द्वीन्द्रिय- 1. पौरा, 2. कृमि, 3. कुक्षिकृमि, 4. गंडोला, 5. गोरोमा, 6. निकुरिषा, 7. मंगल, 8. वंसीमुख, 9. सूचिमुख, 10. गोजलोक, 11. जलोक, 12. शंख, 13. लघुशंख, 14. कौडी, 15. घोघे (छोटे शंखाकारप्राणी), 16. सीप, 17. गजाइ, 18. चंदनक, 19. मातृवाहा,

♦ बादरतेऊकाइया अणेगविहा पन्नता, तं जहा- 1. इंगाले, 2. जाला, 3. मुंमुरे, 4. अच्छी, 5. अलाए, 6. सुद्धागणी, 7. उक्का, 8. विज्जू, 9. असणी, 10. णिग्घाए, 11. संघरिससमुद्धिए, 12. सूरकंतमणिणिसिस्सिए । (प्र० सू० 17)

■ बादरउकाइया अणेगविहा पन्नता, तं जहा- 1. पाइणवाए, 2. पडीणवाए, 3. दाहिणवाए, 4. उदीणवाए, 5. उड्डवाए, 6. अहोवाए, 7. तिरियवाए, 8. विदिसीवाए, 9. वाउक्कलिया, 11. वायुमंडलिया, 12. उक्कलियावाए, 13. मंडलियावाए, 14-15. झंझावाए, 16. संवट्टवाए, 17. घणवाए, 18. तणुवाए, 19. सुद्धवाए । (प्रज्ञा० सू० 18)

□ पत्तेयसरीर बादरवणस्सइकाइया दुवालसविहा पन्नता तं जहा-रुक्खा गुच्छा गुल्मा लता य वल्ली य पव्वगा चेव । तण वलय-हरिय-ओसहि-जलरुह-कुहण य बोद्धव्वा ॥1॥ (प्रज्ञा० सू० 22)

○ साहारणसरीर बादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पन्नता तं जहा- 1. अवए, 2. पणए, 3. सेवाले, 4. लोहिणी, 5. मिहुत्थु, 6. हुत्थिभागा य, 7. अस्सकन्नि, 8. सीहकन्नी, 9. सिउंढि, 10. ततो मुसुंढी य ॥1॥, 11. रुरु, 12. कुंडरिया, 13. जीरु, 14. छीर, 15. विराली, 16. तहेव किट्ठीया, 17. हालिद्धा, 18. सिंगबेरे य, 19. आतुलुगा, 20. भूलए इय ॥2॥, 21. कंबूयं, 22. कन्नुक्कड, 23. सुमत्तओ, 24. वलइ, 25. तहेव महुसिंगी, 26. नीरुह, 27. सप्पसुयंधा, 28. छिन्नरुहा चेव, 29. बीयरुहा, 30. पाढा, ॥3॥, 31. मियवालुंकी, 32. सहुररसा, 33. चेव रायक्ती य, 34. पउमा, 35. माढरि, 36. दंतीति, 37. चंडी, 38. किट्ठी, 39. ति यावरा, 40. मासपण्णी, ॥4॥ 41. मुगपण्णी, जीवियरसहे, 43. य रेणुया चेव, 44. काओली, 45. खीर काओली, 46. तहा भंगी, 47. नही इय, 48. किमिरासि, 49. भद्द, 50. मुच्छा, ॥5॥ 51. णंगलई, 52. पेलुगा इय । 53. किण्हे, 54. पउले, 55. य हढे, 56. हर तणुया चेव, 57. लोयाणी, 58. कण्हे कंदे, 59. वज्जे, 60. सूरणकंदे, ॥6॥ तहेव खल्लूरे ।

20. समुद्रलीख, 21. संवुक्क शंख विशेष, 22. नंदियावर्त इत्यादि ।♦

त्रीन्द्रिय- 1. उपविता, 2. रोहणी, 3. कुंथु, 4. चींटी, 5. उद्देस माकड, 6. दंशक, 7. उधेइ, 8. फलवेंटी, 9. बीजवेंटी, 10. जूँका, 11. लीख, 12. कानखजूरा, 13. पिसुं, 14. इन्द्रगोप, 15. हस्तीसौंडा, 16. सुरसली, 17. तूरतुवक, 18. चीचड ।■

चतुरिन्द्रिय- 1. अंधक, 2. पोतिक, 3. कोच्छलीया, 4. मक्खी, 5. मच्छर, 6. उड़ने वाले कीड़े, 7. पतंगा, 8. खटमल, 9. कुकुड, 10. कुहण, 11. नंदावर्त, 12. संगरडा, 13. काले आदि पांच वर्ण के पंख वाले, 14. भ्रमर, 15. भ्रमरी, 16. तीड, 17. बिच्छु, 18. जल बिच्छु, 19. गोबर में उत्पन्न कीड़े ।□

एए अणंत जीवा जे यावन्ने तहाविहा ॥6॥ (प्रज्ञा० सू० 24)

साधारण का लक्षण-

“चक्कागं भज्जमाणस्स, गंठी चुन्नघणो भवे।

पुढविसरिसेण भेएण, अणंत जीवं वियाणाहि ॥1॥

गूढसिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं।

जं पि य पणट्टसंधिं, अणंत जीवं वियाणाहि ॥2॥ (सू० 25)

♦ बेइन्दिया अणेगविहा पन्नत्ता, -तं जहा- 1. पुलाकिमिया, 2. कुच्छिकिमिया, 3. गंडूयलगा, 4. गोलोमा, 5. पोउरा, 6. सोमंगलगा, 7. बंसीमुहा, 8. सूइमुहा, 9. गोजलोया, 10. जलोया, 11. जालाउया, 12. संखा, 13. संखणगा, 14. घुल्ला, 15. खुल्ला, 16. गुलया, 17. खंधा, 18. वराडा, 19. सोत्तिया, 20. मुत्तिया, 21. कलुयावासा, 22. एगओवत्ता, 23. दुहओवत्ता, 24. नंदियावत्ता, 25. संबुक्का, 26. माइवाहा, 27. सिप्पिसंपुडा, 28. चंदणा, 29. समुद्दलिकखा” (प्रज्ञा० सू० 27)

■ तेइंदिय-संसार समावन्नजीव पन्नवणा अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा- 1. ओवइया, 2. रोहिणिया, 3. कुंथू, 4. पिपीलिया, 5. उद्दसगा, 6. उद्देहिया, 7. उक्कलिया, 8. उप्पाया, 9. उप्पडा, 10. तणहारा, 11. कट्टहारा, 12. मालुया, 13. पत्ताहारा, 14. तणबेर्टिया, 15. पत्तबेर्टिया, 16. पुप्फबेर्टिया, 17. फलबेर्टिया, 18. बीयबेर्टिया, 19. तेबुरणमिंजिया, 20. तओसिमिंजिय, 21. कप्पासिद्धिमिंजिया, 22. हिल्लिया, 23. झिल्लिया, 24. झिंगिरा, 25. किंगिरडा, 26. बाहुया, 27. लहुया, 28. सुभगा, 29. सोवत्थिया, 30. सुयबेंटा, 31. इंदकाइया, 32. इंदगोवया, 33. तुरुतुंबगा, 34. कुच्छलवाहगा, 35. जूया, 36. हालाहला, 37. पिसुया, 38. सयवाइया, 39. गोम्ही, 40. हत्थिसौंडा । (प्रज्ञा० सू० 28)

□ चउरिंदिय संसार समापन्न जीवपन्नवणा अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा- 1. अंधिय, 2. पत्तिय, 3. मच्छिय, 4. मसगा, 5. कीड़े, 6. तहा पयंगे य, 7. ढंकुण, 8. कुक्कड, 9. कुक्कुह, 10. नंदावत्ते य, 11. सिंगिरडे ॥1॥, 12. किण्हपत्ता, 13. नीलपत्ता, 14. लोहियपत्ता, 15. हालिद्धपत्ता, 16. सुक्किल्लपत्ता, 17. चित्तपक्खा, 18. विचित्तपक्खा, 19. ओहंजलिया, 20. जलचारिया, 21. गंभीरा, 22. पीणिया, 23. तंतवा, 24. अच्छिरोडा, 25. अच्छिवेहा, 26. सारंगा, 27. नेउरा, 28. दोला, 29. भमरा, 30. भरिली, 31. जरुला, 32. तोट्टा, 33. विंछुया, 34. पत्तविच्छुया, 35. छाणविच्छुया, 36. जलविच्छुया, 37. पियंगाला, 38. कणगा, 39. गोमयकीडा । (प्रज्ञा० सू० 29)

पंचेन्द्रिय तिर्यच- 1. जलचर-मत्स्य आदि, 2. स्थलचर-गाय आदि, 3. खेचर- हंस आदि, 4. उर परिसर्प-सर्प आदि, 5. भुज परिसर्प-गोह, नकुल, गिलहरी, छिपकली आदि ।

मनुष्य- 15-कर्मभूमिज 30-अकर्मभूमिज 56-अंतर्द्वीपज (101) संमूर्च्छिम ।♦

भवनपति- 1. असुर कुमार, 2. नाग कुमार, 3. सुवर्ण कुमार, 4. विद्युत् कुमार, 5. अग्नि कुमार, 6. द्वीप कुमार, 7. उदधि कुमार, 8. दिक् कुमार, 9. वायु कुमार, 10. स्तनित कुमार ।

पंद्रह परमाधार्मिक असुर कुमार के भेद हैं ।■

व्यंतर- 1. पिशाच, 2. भूत, 3. यक्ष, 4. राक्षस, 5. किन्नर, 6. किंपुरुष, 7. महोरग, 8. गंधर्व ।

ज्योतिषी- चंद्र, सूर्य, 88 ग्रह, नक्षत्र, तारा इत्यादि ज्योतिष के पांच भेद ।

वैमानिक- 1. सुधर्म, 2. ईशान, 3. सनत् कुमार, 4. महेन्द्र, 5. ब्रह्म, 6. लांतिक, 7. महाशुक्र, 8. सहस्त्रार, 9. आनत, 10. प्राणत, 11. आरण, 12. अच्युत ।

13-21. नौ ग्रैवेयक और

22-26. पांच अनुत्तर- 1. विजय, 2. विजयंत, 3. जयंत, 4. अपराजित और 5. सर्वार्थसिद्ध ।

इस प्रकार कुल 26 होते हैं । • इत्यादि जीव भेद समझने चाहिये ।

♦ “मणुस्सा दुविहा प0 तं0-संमुच्छिममणुस्सा य गम्भवक्कंतियमणुस्सा य ।...गम्भवक्कंतिय मणुस्सा ति विहा प0 तं0-1. कम्मभूमगा, 2. अकम्मभूमगा, 3. अन्तरदीवगा ।.... अंतरदीवगा अट्ठावीसविहा प0 तं0- 1. एगोरुया, 2. आहासिया, 3. वेसाणिया, 4. पंगोला, 5. हयकन्ना, 6. गयकन्ना, 7. गोकन्ना, 8. सक्कुलिकन्ना, 9. आयंसमुहा, 10. मेंढमुहा, 11. अयोमुहा, 12. गोमुहा, 13. आसमुहा, 14. हत्थिमुहा, 15. सीहमुहा, 16. वग्घमुहा, 17. आसकन्ना, 18. हरिकन्ना, 19. अकन्ना, 20. कण्णपाउरणा, 21. उक्कामुहा, 22. मेहमुहा, 23. विज्जुमुहा, 24. विज्जुदंता, 25. घणदंता, 26. ळड्ढदंता, 27. गूढदंता, 28. सुद्धदंता । सेतं अंतरदीवगा (याद्दशा एव यावत् प्रमाणा यावदपान्तराला यन्नामानो हिमवत् पर्वत-पूर्वापरदिग्व्यस्थिता अष्टाविंशतिविधा अन्तरद्वीपास्तादृशा एव तावत्प्रमाणा तावदपान्तरालास्तन्नामान एव शिखरिपर्वत पूर्वापरदिग्व्यवस्थिता अपि, ततोऽत्यन्तसदृशतया व्यक्तिभेदमनपेक्ष्य अन्तरद्वीपा अष्टाविंशतिविधा एव विवक्षिताछ) ...अकम्मभूमिगा तीसविहा प0 तं0 पंचहिं हेमवएहिं, पंचहिं हिरण्णवएहिं, पंचहिं हरिवासेहिं, पंचहिं रम्मगवासेहिं, पंचहिं देवकुरुहिं, पंचहिं उत्तरकुरुहिं ।...कम्मभूमगा पन्नरविहा प0 तं0 पंचहिं भरहेहिं, पंचहिं भरहेहिं, पंचहिं एरवएहिं, पंचहिं महाविदेहिं ॥” (प्रज्ञा0 सू0 37)

■ समवायांग के 15 वें स्थान में परमाधार्मिक के नाम ।

1. अंबे 2. अंबरिसी चेव, 3. सामे 4. सबले ति आवरे । 5-7. रुद्धोवरुद्धकाले अ, 8. महाकाले ति आवरे ॥1॥

9. असिपत्ते 10. धणु 11. कुंभे, 12. वालुए 13. वे अरणीति अ । 14. खरस्सरे 15. महाघोसे, एते पन्नरसाहिआ ॥2॥

अनुसंधान पन्ने 6 पर

संख्या द्वार

(1) पूर्वोत्पन्न संख्या— मनुष्य को छोड़कर 23 दंडक में असंख्यात, वनस्पति में अनंत, मनुष्य में संख्यात या असंख्यात, यह संख्या द्वार है।

(1) (श्री प्रज्ञापना शरीर पद 12 वें, अनुयोग द्वार सू. 142 तथा पंच संग्रह में कथित)

प्रथम नारकी के जीव वर्तमान में है।	प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं, उतने जीव प्रथम रत्नप्रभा नरक में हैं। प्रतर व श्रेणी का स्वरूप— सात रज्जू लंबी, सात रज्जू चौड़ी और एक प्रदेश ऊँची—इसे घनीकृत लोक की एक प्रतर कहते हैं और सात रज्जू प्रमाण लंबी, एक प्रदेश प्रमाण चौड़ी और एक प्रदेश प्रमाण ऊँची—इसे घनीकृत लोक की एक श्रेणी कहते हैं।	श्रेणी अंगुल प्रमाण चौड़ी और सात रज्जू प्रमाण लंबी। उस श्रेणी में 256 श्रेणी की कल्पना करें। उसका पहला वर्गमूल निकालने पर 16 आता है। और दूसरा वर्गमूल निकाले तो 4 आता है। फिर दूसरे वर्गमूल को पहले वर्गमूल से गुनने पर 64 होता है। उस 64 श्रेणी प्रमाण चौड़ी और 7 रज्जू लंबी ऐसी सूची होती है, उस सूची में जितने आकाश प्रदेश है, उसमें छह नरक के नारकी कम कर दें, उतने जीव पहली नरक में है।
	(जहां कहीं समुच्चय में प्रतर व श्रेणी कही गई है, वहां ऐसी प्रतर व श्रेणी समझनी चाहिये।)	
दूसरी नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उतने दूसरी नरक में नारकी जीव है।	श्रेणी के प्रदेशों का वर्गमूल निकालने पर जो 12 वां वर्गमूल आता है, उस बारहवें वर्गमूल का भाग पूर्वोक्त श्रेणी के प्रदेशों में देने पर जो संख्या आए उतने दूसरी नरक में नारकी है।
तीसरी नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग 0	श्रेणी के 10 वें वर्गमूल का भाग देने पर जो संख्या आए।
चौथी नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग 0	श्रेणी के 8 वें वर्गमूल का भाग देने पर जो संख्या आए।
पांचवीं नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग 0	श्रेणी के छठे वर्गमूल का भाग देने पर जो संख्या आए।

छठी नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग जितने	श्रेणी के तीसरे वर्गमूल का भाग ।
सातवीं नरक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग जितने	श्रेणी के दूसरे वर्गमूल का भाग ।
बादर पर्याप्त तेजस्काय	0	किंचित् न्यून घनावलि के समय प्रमाण ।
प्रत्येक, निगोद पृथ्वीकाय अप्काय	पर्याप्त लोक के असंख्यातवें भाग जितने	लोक के असंख्यातवें भाग ।
बादर अपर्याप्त पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक निगोद, सूक्ष्म पर्याप्ता, अपर्याप्ता, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, निगोद	असंख्य लोक के प्रदेश प्रमाण	असंख्यात लोक के प्रदेश प्रमाण ।
बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय की संख्या	प्रतर के असंख्यातवें भाग में कोडा कोड़ी असंख्य योजन प्रमाण चौड़ी और सात रज्जु प्रमाण लंबी एक श्रेणी लें । कल्पना से उसके प्रदेशों की संख्या 65536 गिनें, उसका पहला वर्गमूल 256, दूसरा वर्गमूल 16, तीसरा वर्गमूल 4 व चौथा वर्गमूल 2	एक प्रतर अंगुल के असंख्यातवें भाग में एक बेइन्द्रिय जीव की स्थापना करें । इस प्रकार स्थापना करते हुए घनीकृत लोक का एक प्रतर संपूर्ण भर जाये उतने बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय जीव हैं अथवा आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय है, उतने काल में एक-एक बेइन्द्रिय,

अनुसंधान पन्ने 4 से

• देवा चउब्विहा पन्नता, तं जहा—1. भवणवासी 2. वाणवंतरा 3. जोइसिया 4. वेमाणिया ।...भवणवासी दसविहा प० तं०- 1. असुर कुमारा 2. नाग० 3. सुवन्न० 4. विज्जु० 5. अग्गि० 6. दीव० 7. उदहि० 8. दिसा० 9. वाउ० 10. थणिय० वाणवंतरा अड्वविहा प०तं०-1. किन्नरा 2. किंपुरिसा 3. महोरगा 4. गंधव्वा 5. जक्ख 6. रक्खसा 7. भूया 8. पिसाचा । जोइसिया पंचविहा प० तं० 1. चंदा 2. सूर 3. गहा 4. नक्खता 5. तारा । वेमाणिया दुविहा प० तं० 1. कप्पोवगा य 2. कप्पाईया य । कप्पोवगा बारसविहा प०तं०- 1. सोहम्मा 2. ईसाणा 3. सर्णकुमारा 4. माहिंद्रा 5. बंभलोया 6. लंतया 7. महासुक्का 8. सहस्सारा 9. आणया 10. पाणया 11. आरणा 12. अच्चुया । कप्पाईया दुविहा प० तं० गेविज्जगाय अणुत्तरोवाउया य । गेविज्जगा नवविहा प०तं०—1. हिड्डिमहिड्डिमगेविज्जगा 2. हिड्डिनहिज्जिम० 3. हिड्डिमउवरिम० 4. मज्झिम हेड्डिम० 5. मज्झिममज्झिम 6. मज्झिम उवरिम 7. उवरिम हेड्डिम 8. उवरिम मज्झिम० 9. उवरिम उवरिम० । अणुत्तरोवाइया पंचविहा प० तं०—1. विजया 2. वेजजयंता 3. जयंता 4. अपराजिता 5. सब्बद्विसिद्धा । (प्रज्ञा० सू० 38)

	है। इन सभी वर्गमूलों को इकट्ठा करें तो ये 278 होते हैं। परमार्थ से तो यह संख्या असंख्य होती है। परमार्थ से असंख्य वर्गमूल प्रमाण चौड़ी व सात रज्जू प्रमाण लंबी। ऐसी बेइन्द्रिय की सूची होती है। उस सूची में जितने आकाश प्रदेश हैं, उतने बेइन्द्रिय जीव हैं।	तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय को ले जाएं। असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में संपूर्ण एक प्रतर के बेइन्द्रिय जीवों का हरण होता है। यह समास और अनुयोग द्वार का समास एक ही समझना चाहिये। केवल प्रकारान्तर ही है।
संमूर्च्छिम मनुष्य	श्रेणी के असंख्यातवें भाग...।	एक प्रदेशी सात राज लोक प्रमाण लंबी श्रेणी में से अंगुल प्रमाण प्रदेश लंबा कर ले। उसमें 256 प्रदेशों की असत् कल्पना करें, उसका पहला वर्गमूल 16 व दूसरा वर्गमूल 4 व तीसरा वर्गमूल 2 आता है, तीसरे वर्गमूल को पहले वर्गमूल से गुना करने पर 32 आते हैं। वास्तव में तो वह असंख्य है। उस 32 प्रदेश के खंड को एक संमूर्च्छिम मनुष्य के शरीर से घटाए, तब एक मनुष्य और हो तो सात रज्जू लंबी श्रेणी के प्रदेशों का हरण हो जाय, किंतु उतने नहीं हैं।
गर्भज मनुष्य	पांचवें वर्ग घन प्रमाण0	
भवनपति	प्रतर के असंख्यातवें भाग आकाश-प्रदेश तुल्य	अंगुल प्रमाण श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रदेश प्रमाण।
व्यंतर	प्रतर के असंख्यातवें भाग0	संख्यात योजनप्रमाण खंड एक-एक व्यंतर कर हरण करते संपूर्ण प्रतर का हरण हो। यह संख्यात योजन प्रमाण खंड चतुरस्त्र।
ज्योतिषी	प्रतर के असंख्यातवें भाग0	256 अंगुल के एक समचोरस खंड को 1 ज्योतिषी का अपहरण करने

		पर संपूर्ण प्रतर का अपहरण होता है । सर्वत्र घनीकृत है।
सौधर्म ईशान	प्रतर के असंख्यातवें भाग 1	अंगुल प्रमाण चौड़ी व सात राज लोक प्रमाण लंबी श्रेणी-कल्पना से 256 श्रेणी, उसका प्रथम वर्गमूल 16, दूसरा 4 व तीसरा 2 है । तीसरे को दूसरे वर्गमूल से गुना करने पर 8 आते है, परमार्थ से तो असंख्य हैं । इस कल्पनानुसार 8 श्रेणी प्रमाण चौड़ी व 7 रज्जु लंबी सूची में जितने आकाश प्रदेश हैं उतने सौधर्म-ईशान के देवता वर्तमान काल में है ।
सनतकुमार महेन्द्र	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	श्रेणी का ग्यारहवां वर्गमूल निकालकर उसी श्रेणी के प्रदेशों को ग्यारहवें वर्गमूल का भाग देने पर जो संख्या आए-उतने देवता है तथा जितने का वर्गमूल हो उसी का भाग ।
ब्रह्मलोक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	श्रेणी के नौवें वर्गमूल, श्रेणी के प्रदेश भाग ।
लांतक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	श्रेणी के 7वें स्वमूल, भाग ऊपर की तरह ।
महाशुक्र	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	श्रेणी के 5 स्वमूल, भाग दें ऊपर की तरह ।
सहस्रार	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	श्रेणी का 4 स्वमूल-भाग ऊपर की तरह ।
आनतादि चार	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	पत्योपम के असंख्यातवें भाग के समय प्रमाण ।
9 ग्रैवेयक	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	पत्योपम के बृहत्तर असंख्यातवें भाग ।
चार अनुत्तर	श्रेणी के असंख्यातवें भाग0	पत्योपम के अतिबृहत्तम असंख्यातवें भाग ।

सर्वार्थ सिद्ध	संख्यात♦	संख्यात, क्षेत्र छोटे होने से ।■
	(यह यंत्र प्रज्ञापना व अनुयोग द्वार से है)	(यह यंत्र प्रज्ञापना, अनुयोग द्वार व पंच संग्रह में श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार है ।)

♦ नेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पन्नत्ता ? गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-बद्धेल्लगा व मुक्केल्लगा य, तत्थ नं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सपिणि ओसपिणिहिं अवहीरंति कालतो, खेत्ततो असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलं बितीयवग्गमूलपडुप्पणं अहव णं अंगुलबितीयवग्गमूल-घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीतो। (सुत्र 178) ।

असुर कुमारणं भंते । विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स संखेज्जतिभागो एवं जाव थणियकुमारा । (सू.179)।

पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरगा प0 ? गो0 ! दुविहा प0 तं0-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणिहिं अवहीरंति कालतो, खेत्ततो असंखेज्जा लोगा,..... तेया कम्मगा जहा एएसिं चेव ओरालिया, एवं आउकाइय-तेउकाइया वि ।

वाउकाइयाणं भंते ! केवतिया ओरालियसरीरा प0 ? गो0 ! दु0 प0 तं-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, दुविहा वि जहा पुढविकाइयाणं ओरालिया, वेउव्वियाणं पुच्छ, गो0 दु0 त0 बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा पलितोवमस्स असंखेज्जइभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया,..... वणप्फइकाइयाणं जहा पुढविकाइयाणं, णवरं तेयाकम्मगा जहा ओहिया तेयाकम्मगा ।

बेइंदियाणं भंते ! केवइया ओरालिया सरीरगा प0 ? गो0 ! दु0 तं0- बद्धे0 मुक्के0, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा, असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणिहिं अवहीरंति कालतो, खेत्ततो असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडिओ असंखेज्जाइं सेढिवग्गमूलाई बेइंदियाणं ओरालियसरीरेहिं बद्धेल्लगेहिं पयरो अवहीरंति, असंखेज्जाहिं उस्सपिणी-ओसपिणीहिं कालतो, खेत्ततो अंगुलपयरस्स आवलियाते य असंखेज्जतिभागपलिभागेणं.....एवं जाव चउरिंदिया । पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव !....

मणुसाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरगा प0 ? गो0 ! दु0 तं0 जहा बद्धे0 मुक्के0 तत्थ णं, जे ते बद्धेल्लगा ते णं सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा, जहण्णपदे संखेज्जा संखेज्जाओ कोडाकोडीओ तिजमलपयस्स उवरिं चउजमलपयस्स हिट्ठा, अहव णं छट्ठो वग्गो अहव णं छण्णउईछेयणगदाइरासी, उक्कोसपए असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सपिणि ओसपिणीहिं अवहीरंति कालतो, खेत्तओ रूवपक्खितेहिं सेढी अवहीरई, तीसे सेढीए आकासखेत्तेहिं अवहारो मागिज्जइ असंखेज्जा असंखेज्जाहिं उस्समिणिओसपिणी हिं कालतो, खेत्ततो अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पणं.....! वाणमंतराणं जहा नेरइयाणं ओरालिया आहारगा य, वेउव्वियसरीरगा जहा नेरइयाणं, नवरं तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई संखेज्जजो अणसयवग्गपलिभागो पयरस्स...। तासि णं सेढिणं विक्खंभसूई बिछप्पन्नंगुल-सयवग्ग पलिभागो पयरस्स..... वेयाणियाणं एवं चेव, नवरं तासिणं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलबितीयवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पणं अहवण्णं अंगुलतइयवग्गमूल घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीयो...। (सू. 180)

■ पंच संग्रह के द्वितीय बंधक द्वार की गाथाएं—

पत्तेय पज्जवण काइया, उ पयरं हरंति लोगस्स । अंगुल-असंख-भागेण, भाइयं भूदगतणू य ॥43॥

आवलिवग्गो अंतावलीय, गुणिओ हु बायरो तेऊ । वाऊ लोगासंखं, सेसतिगमसंख्या लोगा ॥44॥

अनुसंधान पन्ने 10 पर

(2) ♦वृद्धि-हानि (भगवती शतक 5, उद्देश 8)

जीव	वृद्धि	हानि
नरकादि वैमानिक 24	उत्कृष्ट से आवलिका का असंख्य भाग	उत्कृष्ट से आवलिका का असंख्य भाग
सिद्ध	उत्कृष्ट 8 समय	—
जघन्य सर्वत्र	1 समय	1 समय

(3) सभी कालों में अवस्थित जीवों का कोष्टक■

नारकी	उत्कृष्ट 24 मुहूर्त	ज्योतिषी	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त
रत्नप्रभा	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त	सुधर्म-ईशान	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त
शर्करा प्रभा	उत्कृष्ट 14 दिन रात्रि	सनत्कुमार	उत्कृष्ट 18 दिन 40 मुहूर्त

अनुसंधान पन्ने 9 से

पज्जतापज्जता बितिचउ, अस्सन्निणो अवहरंति। अंगुलासंखासंखप्पएस, भइयं पुढो पयरं ॥45॥
 सन्नी चउसु गईसु पढमाए, असंखसेढि नेरइया। सेढी असंखेज्जंसो, सेसासु जहुत्तरं तह य ॥46॥
 संखेजजोयणाणं, सूइपएसेहिं भाइओ पयरो । वंतरसुरेहिं हीरइ, एवं एक्केक्कमेएणं ॥47॥
 छप्पन्न दोसयंगुल सूई, पएसेहि भाईओ पयरो । हीरइ जोइसिएहिं, सट्ठाणे त्थीउ संखगुणा ॥48॥
 अस्संखसेढि खपएसतुल्लया, पढमदुइयकप्पेसु । सेढि असंखंससमा, उवरिं तु जहोत्तरं तह य ॥49॥
 सेडिएक्केक्क पएसरइय, सूईण मंगुलप्पमिउं । धम्माए भवण सोहम्मयाण, माणं इमं होई ॥50॥
 छप्पन्नदोसयंगुलभूओ, भूओ विगिज्झ मूलतिगं । गुणिया जहुत्तरत्था, रासीओ कमेण सूईओ ॥51॥
 अहवंगुलप्पएसा, समूलगुणिया उ नेरइयसूई । पढमदुइया पयाई समूल, गुणियाई इयराणं ॥52॥
 अंगुलमूलासंखिय, भागप्पमिया उ होति सेढीओ । उत्तरविउब्बियाणं, तिरियाण य सन्निपज्जाणं ॥53॥
 सामण्णा पज्जता, पणतिरि देबेहि संखगुणा । संखेज्जा मणुया तहि, मिच्छाइगुणा वि सट्ठाणे ॥54॥
 उक्कोसपए मणुया सेढीं, रुवाहिया अवहरंति । तईय मूलाहएहिं, अंगुलमूलप्पएसेहिं ॥55॥

♦ जीवा णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति, अवड्ढिया ? गोयमा ! जीवा णो वड्ढंति, नो हायंति, अवड्ढिया ।
 नेरइया णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति, अवड्ढिया ? गोयमा ! नेरइया वड्ढंति वि, हायंति वि., अवड्ढिया वि
 जहा नेरइया एवं जाण वेमाणिया । सिद्धा णं भंते ! पुच्छ, गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति, नो हायंति अवड्ढिया वि ।

■ जीवा णं भंते केवतियं कालं अवड्ढिया वि.? सव्वद्धं । नेरइया णं भंते केवतियं कालं
 वड्ढंति ? गोयमा ! जहन्नेणं एगं समयं, उक्को0 आवलियाए असंखेज्जतिभागं, एवं हायंति, नेरइया
 णं भंते केवतियं कालं अवड्ढिया ? गोयमा ! जह0 एगं समयं, उक्को, चउवीसं मुहुत्ता, एवं सत्तसु
 वि पुढवीसु वड्ढंति हायंति, भाणियव्वं, नवरं अवड्ढिएसु इमं नाणत्तं तं जहा—रयणप्पभा पुढवीए
 अडतालीसं मुहुत्ता, सक्कर0 चोद्दस रातिंदियाणं, वालु0 मासं, पंक0 दो मासा, धूम0 चत्तारि मासा,

अनुसंधान पन्ने 11 पर

वालुका प्रभा	उत्कृष्ट 1 मास	महेन्द्र	"24 दिन 20 मुहूर्त
पंक प्रभा	उत्कृष्ट 2 मास	ब्रह्मलोक	"45 अहोरात्र
धूम्र प्रभा	उत्कृष्ट 4 मास	लांतक	"90 रात्रि दिन
तम प्रभा	उत्कृष्ट 8 मास	महाशुक्र	"160 रात्रि दिन
तमस्तम प्रभा	उत्कृष्ट 12 मास	सहस्रार	"200 रात्रि दिन
10 भवनपति	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त	आनत-प्राणत	"संख्याते मास
पांच एकेन्द्रिय	उत्कृष्ट आवलिका असंख्यात भाग	आरण-अच्युत	"संख्याते वर्ष
तीन विकलेन्द्रिय	उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त (?)	पहले तीन ग्रैवेयक	"संख्याते सौ वर्ष
संमूर्च्छिम तिर्यच पंचेन्द्रिय	उत्कृष्ट 2 मुहूर्त	मध्यम तीन ग्रैवेयक	"संख्याते हजार वर्ष
गर्भज तिर्यच पंचेन्द्रिय	उत्कृष्ट 24 मुहूर्त	ऊपर तीन ग्रैवेयक	"संख्याते लाख वर्ष
संमूर्च्छिम मनुष्य	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त	विजयादि चार	"पत्योपम का असंख्यातवां भाग
गर्भज मनुष्य	उत्कृष्ट 24 मुहूर्त	सर्वार्थ सिद्ध	"पत्योपम का संख्यातवां भाग
व्यंतर	उत्कृष्ट 48 मुहूर्त	सिद्ध	"छह मास

अनुसंधान पन्ने 10 से

तमाए अट्ट मासा, तमतमाए बारस मासा । असुर कुमारा वि० वड्ढंति हायंति जहा नेरइया, अवट्टिया जह० एककं समयं उक्को० अट्टचत्तालीसं मुहुत्ता, एवं दसविहा वि, एगिंदिया वड्ढंति वि हायंति वि अवट्टिया वि, एएहिं तिहि वि जह० एककं समयं, उक्को० आवलियाए असंखेज्जतिभागं, बेइंदिया वड्ढंति हायंति तहेव, अवट्टिया जह० एककं समयं, उक्को० दो अंतोमुहुत्ता, एवं जाव चउरिंदिया, अवसेसा सब्बे वड्ढंति-हायंति तहेव, अवट्टियाणं णाणत्तं इमं त० संमुच्छिमपंचिदियतिरिक्ख-जोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता, गम्भवक्कंतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता, संमुच्छिम मणुस्साणं अट्ट चत्तालिसं मुहुत्ता, गम्भवक्कंतिय मणुस्साणं चउव्वीसं मुहुत्ता वाणमंतर जोतिससोहम्मीसाणेसु अट्टत्वत्तालीस मुहुत्ता, सणकुमारे अट्टारस रातिंदियाई चत्तालीस य मुहु० माहिंदे चउवीसं रातिं० वीस य मुहु० बंभलोए पंचचत्तालीसं रातिं० लंतए नउति रातिं० महासुक्के सट्ठिं रातिंदियसतं, सहस्सारे दो रातिं दियसयाई, आणय-पाणयाणं संखेज्जा मासा, आरणच्चुयाणं संखेज्जाई वासाई, एवं गेवेज्जदेवाणं विजयवेजयंतजयंत अपराजियाणं असंखिज्जाई वास सहस्साई, सब्बव्वसिद्धे य पलिओवमस्स (अ) संखेज्जतिभागो, एवं भाणियव्वं, वड्ढंति हायंति जह० एककं समयं, उक्को० आवलियाए असंखेज्जतिभागं, अवट्टियाणं जं भणियं ।

सिद्धाणं भंते ! केवतियं कालं वड्ढंति ? गोयमा ! जह० एककं समयं, उक्को० अट्ट समया, केवतियं कालं अवडिया ? गोयमा ! जह० एककं समयं उक्को छम्मासा ।

(4) सोपचय आदि (भगवती श.5, उ.8)♦

	सोपचय (वृद्धि सहित)	सापचय (हानि सहित)	सोपचय सापचय	निरुव-निवचया
जीव	0	0	0	सर्वाद्धा
पांच एकेन्द्रिय को	उत्कृष्ट से	उत्कृष्ट से	उत्कृष्ट से	उत्कृष्ट से अपने
छोड़कर वैमानिक	आवलिका का	आवलिका का	आवलिका का	अपने विरह प्रमाण
पर्यंत 19 दंडक	असंख्यातवां भाग	असंख्यातवां भाग	असंख्यातवां भाग	समझ में
पांच एकेन्द्रिय	0	0	सर्वाद्धा	0
सिद्ध	8 समय	0	0	छह मास

यह यंत्र उत्कृष्ट का है । जघन्य से सर्वत्र एक समय समझें ।

(5) कृतादि युग्म (भगवती श.18, उ.4)■

	जघन्य पद	मध्यम पद	उत्कृष्ट पद
पंचेन्द्रिय के 16 दंडक	कृत युग्म 1	कृत युग्मादि 4 युग्म	त्र्योज
पृथ्वी आदि चार व 3 विकलेन्द्रिय	"	"	द्वापर युग्म
1 वनस्पति व सिद्ध में	0	"	0
स्त्री समुच्चय तथा 15 दंडक में भिन्न-भिन्न	कृत युग्म 1	"	कृत युग्म 1

♦ जीवा णं भंते । किं सोवचया, सावचया सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया ? गोयमा ! जीवो णो सोवचया, नो सावचया, णो सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया । एगिंदिया ततियपए, सेसा जीवा चउहि वि पदेहि वि भाणियव्वा । सिद्धाणं भंते ! पुच्छ, गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया । जीवा णं भंते ! केवतियं कालं निरुवचयनिरवचया ? गोयमा ! सवद्धं । नेरतिया णं भंते ! केवतियं कालं सोवचया ? गोयमा ! जह0 एककं समयं उक्को0 आवलियाए असंखेज्जाइभागं । केवतियं कालं सावचया ? एवं चेव । केवतियं कालं सोवचयसावचया ? एवं चेव । केवतियं कालं निरुवचयनिरवचया ? गोयमा ! जह0 एककं समयं उक्को0 बारस मुहु0 एगिंदिया सव्वे सोवचयसावचया सवद्धं, सेसा सव्वे सोवचया वि सावचया वि सोवचयसावचया वि निरुवचयनिरवचया वि जह0 एगं समयं उक्को0 आवलियाए असंखेज्जति भागं अवड्ढिएहिं वक्कंति कालो भाणियव्वो । सिद्धा णं भंते केवतियं कालं सोवचया ? गोयमा ! जह0 एककं समयं, उक्को0 अड्ड समया, केवतियं कालं निरुवचय निरवचया ? जह0 एककं उक्को0 छम्मासा (सू. 222)

■ नेरइया णं भंते ! किं कडजुम्मा तेयोगा, दावरजुम्मा, कलियोगा ? गोयमा ! जहन्नपदे कडजुम्मा, उक्कोसपदे तेयोगा, अजहन्नुक्कोसपदे सिय कडजुम्मा 1, जाव सिय कलियोगा 4 एवं जाव थणियकुमारा । वणस्सइकाइयाणं पुच्छ गोयमा ! जह0 अपदा, उक्को0 य अपदा, अजह0 सियकडजुम्मा जाव सिय कलियोगा । बेइंदिया, णं पुच्छ, गोयमा ! जह0 कड0 उक्को0 दावर0 अजह0 सिय कड0 कलियोगा, एवं जाव चतुरिंदिया सेसा एगिंदिया जहा बेइंदिया, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया, सिद्धा जहा वणस्सइकाइया । इत्थीओ णं भंते ! किं कड0 पुच्छ गोयमा ! जह0 कडजुम्माओ, उक्को0 सिय कडजुम्माओ अजह0 सिय कडजुम्माओ जाव सिय कलियोगाओ, एवं असुरकुमारित्थीओ वि जाव थणियकुमार इत्थीओ एवं तिरिक्खजोणिय इत्थीओ एवं मणुसित्थीओ एवं जाव वाणमंतरजोइसिय-वेमाणियदेवित्थीओ । (सू0 624)

(6) योग विषयक अल्प बहुत्व (भगवती श.25, उ.1)♦

योग	सूक्ष्म एकेन्द्रिय	बादर एकेन्द्रिय	बेइन्द्रिय	तेइन्द्रिय	चउरि- न्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	संज्ञी पंचेन्द्रिय
जघन्य अपर्याप्ता योग	स्तोक 1	2 असंख्य गुणा	3 असंख्य	4 असंख्य	5 असं.	6 असं.	7 असं.
जघन्य पर्याप्ता योग	8 असं.	9 असं.	14 असं.	15 असं.	16 असं.	17 असं.	18 असं.
उत्कृष्ट अपर्याप्ता योग	10 असं.	11 असं.	19 असं.	20 असं.	21 असं.	22 असं.	23 असं.
उत्कृष्ट पर्याप्ता योग	12 असं.	13 असं.	24 असं.	25 असं.	26 असं.	27 असं.	28 असं.

(7) पंद्रह योग विषयक अल्प बहुत्व (भगवती श.25, उ.1)■

15 योग	सत्य मनो योग	असत्य मनो योग	मिश्र मनो योग	बबहार मनो योग	सत्य वचन योग	असत्य वचन योग	मिश्र वचन योग	बबहार वचन योग	औदा- रिक	औदा- रिक मिश्र	वैक्रि- य	वैक्रि- य मिश्र	आहा- रक	आहा- रक मिश्र	कार्म- ण
जघन्य योग	12 असं- ख्य गुणा	12 तुल्य	10 तुल्य	10 असं- ख्य	12 तुल्य	12 तुल्य	12 तुल्य	12 तुल्य	4 असं- ख्य गुणा	2 असं- ख्य	5 असं- ख्य	3 असं- ख्य	11 असं- ख्य	7 असं- ख्य गुणा	1 स्तोक

♦ सब्बथोवे सुहुमस्स अपज्जतगस्स जहन्नए जोए1, बादरस्स अप0 जह0 जोए असंखेज्जगुणे2, बेइंदियस्स अप0 जह0 जोए असं03, एवं तेइंदियस्स 4, एवं चउरिंदियस्स 5, असन्निस्स पंचिंदियस्स अपज्ज0 जह0 जोए असं0 6, सन्निस्स पंचि0 अपज्ज0 जह0 जोए असं0 7, सुहुमस्स पज्जतगस्स जह0 जोए असं0 8, बादरस्स पज्ज0 जह0 जोए असं0 9, सुहुमस्स अपज्जतगस्स उक्कोसए जोए असं0 10, बादरस्स अपज्ज0 उक्को0 जोए असं0 11, सुहुमस्स पज्ज0 उक्को0 जोए असं0 12, बादरस्स पज्ज0 उक्को0 जोए असं0 13, बेइंदियस्स पज्ज0 जह0 जोए असं0 14, ज्जं तेइंदिय एवं जाव सन्निपंचिंदियस्स पज्ज0 जह0 जोए असं0 18, बेइंदियस्स अपज्ज0 उक्को0 जोए असं0 19, एवं तेइंदियस्स वि 20, एवं चउरिंदियस्स वि 21, एवं जाव सन्निपंचि0 अपज्ज0 उक्को0 जोए असं0 23, बेइंदियस्स पज्ज0 उक्को0 जोए असं0 24 एवं तेइंदियस्स वि पज्ज0 उक्को0 जोए असं0 25, चउरिंदियस्स पज्ज0 उक्को0 (जोए) असं0 26, असन्नि पंचिंदियपज्जत0 उक्को0 जोए असं027, एवं सन्नि पंचिं0 पज्ज0 उक्को0 जोए असं028 । (सूत्र 717)

■ सब्बथोवे कम्मगसरीर जहन्न जोए 1, ओरालियमीसगस्स जहन्नजोए असं0 2, वेउब्बियमीसगस्स जहन्नए असं0 3, ओरालियसरीरस्स जहन्नए जोए असं0 4, वेउब्बियसरीरस्स जहन्नए जोए असं0 5, कम्मगसरीरस्स उक्कोसए जोए असं0 6, आहारगमीसगस्स जोए असं0 7. तस्सचेव उक्कोसए जोए असं0 8, ओरालियमीसगस्स 9, विउब्बियमीसगस्स 10, एएसि णं उक्को0 जोए दोण्ह वि तुल्ले असं0 असच्चा मोसमण जोगस्स जह0 जोए असं0 11, आहारसरीरस्स जह0 जोए असं0 12, तिबिहस्स मणजोगस्स 15, चउबिहस्स वयजोगस्स 19, एएसि णं सत्तण्ह वि तुल्ले जह0 जोए असं0 आहारगसरीरस्स उक्को0 जोए असं0 20, ओरालियसरीरस्स वेउब्बियस्स चउबिहस्स य मणजोगस्स चउबिहस्स य वइजोगस्स एएसि णं दसण्ह वि तुल्ले उक्को0 जोए असं0 30 (सूत्र 719)

उत्कृष्ट योग	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	14 तुल्य	9 असं- ख्य	14 तुल्य	9 तुल्य	13 असं- ख्य	8 असं- ख्य गुणा	6 असं- ख्य गुणा
-----------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	-------------	------------------	-------------	------------	-------------------	--------------------------	--------------------------

(8) सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि की अवगाहना (भगवती श.19, उ.3)♦

		अपर्याप्ता जघन्य	पर्याप्ता जघन्य	अपर्याप्ता उत्कृष्ट	पर्याप्ता उत्कृष्ट
1.	सूक्ष्म निगोद	1 स्तोत्र	12 असंख्य	13 विशेषाधिक	14 विशेषाधिक
2.	सूक्ष्म वायु	2 असंख्य	15 असंख्य	16 विशेषाधिक	17 विशेषाधिक
3.	सूक्ष्म तेज	3 असंख्य	18 असंख्य	19 विशेषाधिक	20 विशेषाधिक
4.	सूक्ष्म अप्	4 असंख्य	21 असंख्य	22 विशेषाधिक	23 विशेषाधिक
5.	सूक्ष्म पृथ्वी	5 असंख्य	24 असंख्य	25 विशेषाधिक	26 विशेषाधिक
6.	बादर वायु	6 असंख्य	27 असंख्य	28 विशेषाधिक	29 विशेषाधिक
7.	बादर तेज	7 असंख्य	30 असंख्य	31 विशेषाधिक	32 विशेषाधिक
8.	बादर अप्	8 असंख्य	33 असंख्य	34 विशेषाधिक	35 विशेषाधिक

♦ सबत्थोवा सुहुमनिओयस्स अपज्जत्तस्स जहन्निया ओगाहणा1, सुहुमवाउक्काइयस्स अपज्जत्तगस्स जह0 ओगा0 असंखेज्जगुणा2, सुहुमतेउअपज्जत्तस्स जह0 ओगा0 असं0 3, सुहुमआउअपज्ज0 जह0 ओगा0 असं0 4, सुहुमपुढविअपज्जत्त0 जह0 ओगा0 असं0 5, बादरवाउकाइयस्स अपज्जत्तगस्स जह0 ओगा0 असं0 6, बादरतेउअपज्जत्त जहन्निया ओ0 असं0 7, बादरआउअपज्जत्त जहन्निया ओगा0 असं0 8, बादरपुढवीकाइय अपज्जत्त जहन्निया ओगा0 असं0 9, पत्तेयसरीरबादर वणस्सइकाइयस्स बादरनिओयस्स एएसि णं पज्जत्तगाणं एएसि णं अपज्जत्तगाणं जह0 ओगा0 दोण्ह वि तुल्ला असं0 10-11, सुहुमनिगोयस्स पज्जत्तगस्स जह0 ओगा0 असं0 12 तस्सेव अपज्जत्तगस्स उक्कोसिया ओगा0 विससा 13, तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्को0 ओगा0 वि0 14, सुहुमवाउकाइयस्स पज्जत्तग0 जह0 ओगा0 असं0 15, तस्स चेव अपज्जत्त0 उक्को0 ओगा0 वि0 16, तस्स चेव पज्जत्त0 उक्को0 वि0 17, एवं सुहुमतेउक्काइयस्स वि 18, 19, 20 एवं सुहुम आउक्काइयस्स वि. 21, 22, 23 एवं सुहुम पुढविकाइयस्स विससा 24, 25, 26 एवं बादर वाउकाइयस्स वि. 27, 28, 29 एवं बादर तेउकायस्स 30, 31, 32 एवं बादर आउकाइयस्स वि0 33, 34, 35 एवं बादर पुढविकाइयस्स वि0 36, 37, 38 सब्बेसिं तिविहेणं गमेणं भाणियव्व0 बादर निगोयस्स पज्जत्तगस्स जह0 ओगा0 असं0 39 तस्स चेव अपज्जत्तगस्स उक्को0 ओगा0 विससाहिया 40, तस्स चेव पज्जत्तगस्स उक्को0 ओगा0 विससाहिया 41, पत्तेयसरीर बादरवणस्सइकाइयस्स् पज्जत्तगस्स जह0 ओगा0 असं0 42, तस्स चेव अपज्जत्त0 उक्को0 ओगा0 असं0 43, तस्स चेव पज्जत्त उक्को0 ओगा0 असं0 44 । (सूत्र 651)

9.	बादर पृथ्वी	9 असंख्य	36 असंख्य	37 वि	38 वि
10.	बादर निगोद	10 असंख्य	39 असंख्य	40 वि	41 वि
11.	प्रत्येक वनस्पति	11 असंख्य	42 असंख्य	43 असंख्य	44 असंख्य गुणा

(9)♦

	कायिकी	आधिकरणिकी	प्राद्वेषिकी	परिताप	प्राणातिपात
कारण	सारंभ	सारंभ	सारंभ	समारंभ	आरंभ
काइया संबंध	0	नियमा	नियमा	भजना	भजना
अहिगरणिया	नियमा	0	"	"	"
पादोसिया	"	नियमा	0	"	"
पारितापनिक	"	"	नियमा	0	"
प्राणातिपात	"	"	"	नियमा	0

♦ जस्स णं भंते । जीवस्स कातिया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया कज्जति, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जति तस्स कातिया कज्जति ? गोयमा ! जस्स णं जीवस्स कातिया किरिया कज्जति तस्स अहिगरणी किरिया नियमा कज्जति, जस्स अहि० किरिया क० तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जति, जस्स णं भंते जीवस्स काइया कि० तस्स पादोसिया कि० जस्स पादोसिया कि० तस्स काइया किं क० ? गोयमा ! एवं चेव, जस्स णं भंते ! जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ, जस्स पारियावणिया किरिया कज्जइ, तस्स कातिया किरिया कज्जइ ? गो० ! जस्स णं जीवस्स काइया कि० कज्जइ तस्स पारितावणिया सिय कज्जइ सिय नो कज्जइ, जस्स पुण पारियावणिया किं० क० तस्स काइयानियमा कज्जति, एवं पाणाइवायकिरिया वि० एवं आदिल्लाओ परोप्परं नियमा तिण्णि कज्जंति, जस्स आइल्लाओ तिन्नि कज्जंति तस्स उवरिल्लाओ दोन्नि सिय कज्जंति सिय नो कज्जंति, जस्स उवरिल्लाओ दोण्णि कज्जंति तस्स आइल्लाओ नियमा तिण्णि कज्जंति, जस्स णं भंते जीवस्स पारियावणिया किरिया कज्जंति तस्स पाणातिवायकिरिया क०, जस्स पाणाति० क० तस्स पारियावणिया कि० कं० ? गोयमा ! जस्स णं जीवस्स पारियावणिया कि० तस्स पाणातिवातकिरिया सिय क० सिय नो क० जस्य पुण पाणातिपातकिरिया क० तस्स पारियावणिया किरिया नियमा कज्जति । (प्रज्ञा० सू० 282)

(10) क्रिया-कोष्ठक (प्रज्ञापना पद 22, सूत्र 284)♦

0	आरंभिता	परिग्रह	माया प्रत्यया	मिथ्या दर्शन प्रत्यया	अप्रत्याख्यान
कारण	प्रमाद	प्रत्याख्यान चतुष्क	चार संज्वलन	अनंत मिथ्यात्व	चार अप्रत्याख्यान
कौन से गुणस्थान में	6	5	10	3	4
संबंधारंभ	0	भजना	नियमा	भजना	भजना
परिग्रह	नियमा	0	"	"	"
माया प्रत्यया	भजना	भजना	0	"	"
मिथ्या दर्शन	नियमा	नियमा	नियमा	0	नियमा
अप्रत्याख्यान प्रत्यया	"	"	"	भजना	0

♦ कति णं भंते किरियाओ पण्णत्ताओ ? गोयमा ! पंचकिरियाओ पं0 तं0 आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया, आरंभिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जति ? गो0 ! अण्णयरस्स वि पमत्तसंजयस्स परिग्गहिया णं भंते ! किरिया कस्स कज्जइ ? गो0 ! अण्णयरस्स वि संजयासंजयस्स, मायावत्तिया णं भंते ! किरिया कस्स क0 ? गो0 ! अण्णयरस्सा वि अपमत्त संजयस्स, अपच्चक्खाणकिरिया णं भंते ! कस्स क0 ? गो0 ! अण्णयरस्स वि अपच्चक्खाणिस्स, मिच्छादंसणवत्तिया णं भंते ! किरिया कस्स क0 ? गो0 ! अण्णयरस्सावि मिच्छादंसणिस्स ।... जस्सणं भंते ! जीवस्स आरंभिया किरिया क0 तस्स परिग्गहिया किं0 क0 ? जस्स परिग्गहिया कि0 तस्स आरंभिया कि0 ? गो0 ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया कि0 तस्स परि0 सिय क0 सिय नो क0, जस्स पुण परिग्गहिया कि0 तस्स आरंभिया कि0 णियमा क0, जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया कि0 क0 तस्स मायावत्तिया कि0 क0 पुच्छ, गो0 ! जस्स णं जीवस्स आरंभिया कि0 क0 तस्स माया0 कि0 नियमा क0, जस्स पुण माया0 कि0 क0 तस्स आरंभिया कि0 सिय नो क0 । जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया कि0 तस्स अपच्चक्खाणकिरिया पुच्छ, गो0 ! जस्स जीवस्स जस्स णं भंते ! जीवस्स आरंभिया कि0 तस्स अपच्चक्खाण किरिया पुच्छ, गो0 ! जस्स जीवस्स आरंभिया कि0 तस्स अपच्च0 सिय क0 सिय नो क0, जस्स पुण अपच्च0 क0 तस्स आरंभिया कि0 णियमा क0, एवं मिच्छादंसण वत्तियाए वि समं, एवं पारिग्गहिया वि तिहिं उवरिल्लाहिं समं संचारेतत्वा, जस्स माया कि0 तस्स उवरिल्लाओ दो वि सिय कज्जंति सिय नो कज्जंति, जस्स उवरिल्लाओ दो कज्जंति तस्स माया0 नियमा क0 जस्स अपच्च0 कि0 क0 तस्स मिच्छा0 कि सिय क0 सिय नो क0 जस्स पुण मिच्छा0 कि0 तस्स अपच्च0 कि0 णियमा कज्जति । (सूत्र 284)

(11) काल-कोष्टक (भगवती शतक 1, उद्देश 2)♦

0	शून्य काल	अशून्य काल	मिश्रकाल	संतिष्ठान काल
नारकी	3 अनंत गुणा	1 सर्वस्तोक 12 मुहूर्त	2 अनंत गुणा	2 असंख्यात गुणा
तिर्य्यच	0	1 सर्वस्तोक अन्तमुहूर्त त्रस आश्रित	"	4 अनंत गुणा
मनुष्य	3 अनंत गुणा	1 सर्व स्तोक 12 मुहूर्त	"	1 सर्व स्तोक
देव	"	सर्व स्तोक 12 मुहूर्त	"	3 असंख्येय गुणा

(12) लेश्या द्वार (उत्तराध्ययन 34 तथा प्रज्ञापना पद 17 से)

नाम 1	कृष्ण लेश्या 2	नील लेश्या 3	कपोत लेश्या 4	तेजो लेश्या 5	पद्म लेश्या 6	शुक्ल लेश्या 7
द्रव्य लेश्या का वर्ण	काले बादल, भैंसा के सींग, शकट का खंजन के समान कृष्ण वर्ण	अशोक वृक्ष, चास पक्षी के पंख, वैडूर्य मणि, तोते के पंख समान वर्ण	अलसी के फूल, कोयल के पंख, कबूतर के गले के समान वर्ण	हिंगुल धातु पाषाण विशेष रक्त, उदीयमान सूर्य के समान वर्ण	हरताल, हल्दी, सण, असन आदि वृक्ष के फूल समान पीत वर्ण	शंख, अंक रत्न, मचकुंद के फूल, दही, चांदी के हार समान शुक्ल
द्रव्य लेश्या आश्रित रस	कडवा उंब, नीम तथा अर्कपत्र के रस से अनंत गुणा कडवा रस	त्रिकूट रस, हस्ती पीपल के रस से अनंत गुणा अधिक	अपक्व आम्र फल, कपित्थ फल से अनंत गुणा कषाय रस	पक्व आम्र रस, पक्व कपित्थ फल के रस से अनंत गुणाधिक	श्रेष्ठ मदिरा, पुष्पासव, मधु, मद्य विशेष अनंत गुणा	खजूर द्राक्ष, खांड रस, मिश्री के रस से अनंत गुणा
द्रव्य लेश्या आश्रित गंध	मृत गाय, मृत कुत्ता, मृत सर्प की दुर्गंध से अनंत गुणा अधिक	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	सुगंधी द्रव्य और सुवासित द्रव्यों की सुगंध से अनंत गुणा	तेजो लेश्यावत्	तेजो लेश्यावत्

♦ “नेरइय संसार संचिद्वण कालेणं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ? गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं० सुन्नकाले, असुन्नकाले, मिस्सकाले । तिरिक्खजोणियसंसार पुच्छा, गो० । दुविहे प० तं० असुन्नकाले य मिस्सकाले य, मणुस्साण य देवाण य जहा नेरइयाणं । एयस्स णं भंते ! नेरइयसंसार संचिद्वण कालस्स सुन्नकालस्स असुन्नकालस्स मिसकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुए वा तुल्ले वा विसेसाहिए वा ? गो० ! सब्बत्थोवे असुन्नकाले, मिस्सकाले अणंतगुणे, सुन्नकाले अणंतगुणो । तिरिक्ख० भंते ! सब्ब० असुन्न० मिस्स० अणंत० मणुस्सदेवाण य जहा नेरइयाणं। एयस्सणं भंते ! नेरइयस्स संसार संचिद्वण कालस्स जाव देव संसार संचिद्वण जाव विसेसाहिए वा गो ! सब्ब० मणुस्स संसार संचिद्वणकाले, नेरइयसंसार० असंखेज्जगुणे० देवसंसार० अस० तिरिक्ख जोणिए अणंत० ।” (सूत्र 23)

द्रव्य लेश्या आश्रित स्पर्श	करवत की धार, गाय की जीभ, साग वनस्पति के पत्ते के स्पर्श से अनंत गुणा कर्कश स्पर्श	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	बर वनस्पति, मक्खन एवं शिरिष के फूल से अनंत लुणा कोमल स्पर्श	तेजो लेश्यावत्	तेजो लेश्यावत्
परिणाम समुच्चय	जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट इन्हें 9 बार, 27 बार, 81 बार, 243 बार इस तरह असंख्य बार गुणा करें-इतने परिणाम हैं।	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्
विशिष्ट लेश्या की अपेक्षा से लक्षण (देवता आदि के साथ व्यभिचार नहीं) विशिष्ट उत्कृष्ट शुद्ध अथवा अशुद्ध	21 बोल 5 आश्रव का सेवन करने वाला, तीन गुप्ति से अगुप्त, षट्काय की अविरति-तीव्र आरंभी, सभी का अहितकारी, साहसिक, बिना सोचे कार्य करने वाला, जीव हिंसा में निर्भय, इस लोक परलोक के कृष्ट के प्रति निःशंक होने से निर्ध्वंस परिणामी, अजितेन्द्रिय और लज्जा रहित।	15 बोल 1 ईर्ष्या-पर गुण असहिष्णु, 2 तप रहित 3 कुशास्त्री 4 मायावी 5 निर्लज्ज 6 अभिनिवेशी 7 विषय लंपट 8 द्वेषी 9 शठ 10 जाति आदि मद वाला 11 रस लोलुपी 12 शाता गवेषी 13 आरंभ से अविरति वाला 14 क्षुद्र 15 बिना सोचे कार्य करने वाला साहसिक।	12 बोल 1 वक्री बोली 2 वक्र आचार वाला 3 अत्यंत मायावी 4 असरल 5 स्व दोष को ढांकने वाला 6 कपटी 7 मिथ्या दृष्टि 8 अनार्य 9 उत्प्राशक 10 दुष्टवचन 11 चोर 12 मत्सरी परसंपत्ति को नहीं सहने वाला।	13 बोल 1 विनयवान् 2- 6 पांच इन्द्रियों को वश में रखने वाला 7 शास्त्र पढ़कर उपधान तप वाला 8 प्रियधर्मी 9 दृढ़ धर्मी 10 पाप से डरने वाला 11 मोक्षाभिलाषी 12 शुभ योग वाला एवं तेजो लेश्या के परिणाम वाला यह लेश्या साधु को होती है।	12 बोल 1 प्रशांतचित्त 2-6 दमितात्मा 7 शुभ योगवान् 8 शास्त्र पढ़कर उपधान तप वाला 9 अल्पभाषी 10 उपशमवान् 11 जितेन्द्रिय 12 ये लक्षण पद्म लेश्या के स्वामी साधु को होते हैं, अन्य को नहीं।	18 बोल 1 प्रशांत चित्त 2-6 दांतात्मा 7-11 पांच समिति वाला 12-14 तीन गुप्ति वाला 15 सराग 16 वीतराग 17 उपशांत 18 जितेन्द्रिय ये लक्षण अणगार को होते हैं।

अशुभ के	कितने असंख्य ?	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्
अशुभ व शुभ के शुभ प्रकर्ष अपकर्ष रूप स्थान	असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय तुल्य, क्षेत्र से असंख्य लोक के आकाश प्रदेश तुल्य	0	0	0	0	0
नारकी की स्थिति	जघन्य-पत्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक 10 सागरोपम, उत्कृष्ट-33	जघन्य-पत्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक तीन सागरोपम। उत्कृष्ट-पत्योपम का संख्यातवां भाग, अधिक 10 सागरोपम	जघन्य एक हजार वर्ष, उत्कृष्ट-पत्योपम का असंख्यातवां, भाग अधिक तीन सागरोपम	0	0	0
तिर्य्यच	जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्यावत्
मनुष्य	जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त	"	"	"	"	छद्मस्थ एवं केवली, जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देश ऊन पूर्व कोटि वर्ष
भवन पति	जघन्य-10000 वर्ष उत्कृष्ट-पत्योपम का असंख्यातवां भाग ।	जघन्य कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट से एक समय अधिक उत्कृष्ट पत्योपम को असं० भाग	जघन्य-नील के उत्कृष्ट से एक समय अधिक उत्कृष्ट-पत्योपम का असं० भाग ।	जघन्य-10000 वर्ष, उत्कृष्ट-साधिक सागरोपम । व्यंतर की स्वयं विचार लें ।	0 0	0

ज्योतिषी	0	0	0	जघन्य पत्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट-9 लाख वर्ष अधिक एक पत्योपम	0	0
वैमानिक	0	0	0	जघन्य-1 पत्योपम 2 सागरोपम से कुछ अधिक	जघन्य-तेजो लेश्या के उत्कृष्ट से एक समय अधिक उत्कृष्ट- अन्त-मुहूर्त अधिक 10 सागरोपम	जघन्य-1 समय अधिक 10 सागरोपम उत्कृष्ट-33 सागरोपम
गति	दुर्गतिगामी	दुर्गतिगामी	दुर्गतिगामी	सद्गतिगामी	सद्गतिगामी	सद्गतिगामी
आयु	आयु की पूर्णता से पहले मृत्यु	अन्त समय में जब अंतर्मुहूर्त आयु शेष रहती है तब जिस भव का आयु हो वैसी लेश्या भावना होती है ।				
स्कंध	अनंत प्रदेशी	अनंत प्रदेशी	अनंत प्रदेशी	अनंत प्रदेशी	अनंत प्रदेशी	अनंत प्रदेशी
अवगाहना	असंख्य प्रदेशी	असंख्य प्रदेशी	असंख्य प्रदेशी	असंख्य प्रदेशी	असंख्य प्रदेशी	असंख्य प्रदेशी
वर्गणा	अनंत वर्गणा	कृष्णलेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्

द्रव्यार्थ प्रदेश अल्प बहुत्व	3 असंख्य गुणी वर्गणा	2 असंख्य गुणी वर्गणा	1 स्तोक	4 असंख्य गुणी	5 असंख्य गुणी	6 असंख्य गुणी
विशुद्ध	अविशुद्ध	अविशुद्ध	अविशुद्ध	विशुद्ध	विशुद्ध	विशुद्ध
प्रशस्त	अप्रशस्त	अप्रशस्त	अप्रशस्त	प्रशस्त	प्रशस्त	अप्रशस्त
ज्ञान	2, 2, 4	2, 3, 4	2, 3, 4	2, 3, 4	2, 3, 4	2, 3, 4, 1
क्षेत्र	1 बहु	2 बहु	3 बहु	4 बहु	5 बहु	6 बहु
ऋद्धि	1 स्तोक	2 बहु	3 बहु	4 बहु	5 बहु	6 बहु
अल्प बहुत्व	7 विशेष	6 विशेष	5 अनंत गुण	3 संख्या	2 संख्या	1 स्तोक 6 अलेश्यी 4 अनंत

स्थिति का समाधान – समुच्चय कृष्ण लेश्या की स्थिति में अन्तमुहूर्त अधिक 33 सागरोपम की जो स्थिति कही है, यह पूर्वापर भव की अपेक्षा से ही और नारकी की 33 सागरोपम की जो स्थिति कही है, वह नरक भव की अपेक्षा से है, इसी तरह देवता की लेश्या में पद्म लेश्या आदि में उस भव और पूर्वापर भव की अपेक्षा से सूत्रकार ने निर्देश किया है। (यह समाधान उत्तराध्ययन की अवचूर्णि से समझ लेना चाहिये)

भाव का अल्पबहुत्व (कर्मग्रंथ के आधार पर)

1. जीव के योग स्थान-जघन्य आदि सबसे थोड़े हैं।
2. एक-एक कर्म प्रकृति के भेद असंख्य गुणे हैं।
3. कर्म स्थिति स्थान जघन्य आदि असंख्य गुणे हैं।
4. स्थिति रूप षट्लेश्या स्थान असंख्य गुणे हैं।
5. अनुभाग बंध के अध्यवसाय असंख्य गुणे हैं।
6. कर्म प्रदेश दल रूप असंख्य गुणे हैं।

7. रस छेद जीव राशि से अनंत गुणे हैं ।
8. मनः पर्यव के पर्याय अनंत गुणे हैं ।
9. विभंग ज्ञान के पर्याय अनंतगुणे हैं ।
10. अवधि ज्ञान के पर्याय अनंत गुणे हैं ।
11. श्रुत अज्ञान के पर्याय अनंत गुणे हैं ।
12. श्रुत ज्ञान के पर्याय अनंत गुणे हैं ।
13. श्रुत ज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं ।
14. मति ज्ञान के पर्याय अनंत गुणे हैं ।
15. द्रव्य के अगुरुलघु पर्याय अनंत गुणे हैं ।
16. केवल ज्ञान के पर्याय अनंत गुणे हैं ।

(13) लेश्याओं का अल्प बहुत्व (प्रज्ञापना सू०, पद 17, उद्दे. 2)

अल्प बहुत्व	कृष्ण लेश्या	नील लेश्या	कापोत लेश्या	तेजो लेश्या	पद्म लेश्या	शुक्ल लेश्या
जीव	7 वि.	4 वि.	4 अनंत	3 असंख्यात	2 असंख्यात	1 स्तोक
नारकी	1 स्तोक	2 असंख्यात	3 असंख्यात	0	0	0
वनस्पति काय	4 वि.	3 वि.	2 अनंत	1 स्तोक	0	0
पृथ्वीकाय 1 अप्काय 2	4 वि.	3 वि.	2 असंख्यात	1 स्तोक	0	0
तेजस्काय, वायुकाय तीन विकलेन्द्रिय 3	3 वि.	2 वि.	1 स्तोक	0	0	0
1 तिर्यच पंचेन्द्रिय	6 वि.	5 वि.	4 असंख्यात	3 संख्यात	2 संख्यात	1 स्तोक
2 समुच्छिन्न पंचे० तिर्यच	3 वि.	2 वि.	1 स्तोक	0	0	0
3 गर्भज तिर्यच पंचेन्द्रिय	6 वि.	5 वि.	4 संख्यात	3 संख्यात	2 संख्यात	1 स्तोक

अल्प बहुत्व	कृष्ण लेख्या	नील लेख्या	कापोत लेख्या	तेजो लेख्या	पद्म लेख्या	शुक्ल लेख्या
4 तिर्यच स्त्री	6 वि.	5 वि.	4 संख्यात	3 सं०	2 सं०	1 स्तोक
समुच्छिर्म तिर्यच पंचे०	9 वि.	8 वि.	7 असं०	0	0	0
5 गर्भज तिर्यच पंचे०	6 वि.	5 वि.	4 वि.	3 सं०	2 सं०	1 स्तोक
समुच्छिर्म तिर्यच पंचे०	9 वि.	8 वि.	7 असं०	0	0	0
6 तिर्यच स्त्री	6 वि.	5 वि.	4 वि.	3 सं०	2 सं०	1 स्तोक
गर्भज तिर्यच पंचे०	9 वि.	8 वि.	7 वि.	5 सं०	3 सं०	1 स्तोक
7 तिर्यच स्त्री	12 वि.	11 वि.	10 सं०	6 सं०	4 सं०	2 सं०
समुच्छिर्म तिर्यच पंचे०	15 वि.	14 वि.	13 असं०	0	0	0
गर्भज तिर्यच पंचे०	9 वि.	8 वि.	7 वि.	5 सं०	3 सं०	1 स्तोक
7 तिर्यच स्त्री	12 वि.	11 वि.	10 सं०	6 सं०	4 सं०	2 सं०
1 तिर्यच पंचेन्द्रिय समुच्चय	12 वि.	11 वि.	10 असंख्यात	5 संख्यात	3 संख्यात	1 स्तोक
1 तिर्यच स्त्री	8 वि.	8 वि.	7 सं०	6 सं०	4 सं०	2 सं०
तिर्यच	12 वि.	11 वि.	10 अनंत	5 सं०	3 सं०	1 स्तोक
10 तिर्यच स्त्री	9 वि.	8 वि.	7 सं०	6 सं०	4 सं०	2 असं.
1 देवता	5 वि.	4 वि.	3 असं०	6 सं०	2 असं०	1 स्तोक
2 देवी	3 वि.	2 वि.	1 स्तोक	4 सं०	0	0
देवी	8 वि.	7 वि.	6 सं०	10 सं०	0	0
3 देवता	5 वि.	4 वि.	3 असं०	9 सं०	2 असं०	1 स्तोक
4 भवनपति देव 5 व्यंतर देव	4 वि.	3 वि.	2 असं०	1 स्तोक	0	0

अल्प बहुत्व	कृष्ण लेख्या	नील लेख्या	कापोत लेख्या	तेजो लेख्या	पद्म लेख्या	शुक्ल लेख्या
6 भवनपति देवी 7 व्यंतर देवी	4 वि.	3 वि.	2 असं०	1 स्तोक	0	0
भवनपति देव व्यंतर देव	5 वि.	4 वि.	3 असं०	1 स्तोक	0	0
8 भवनपति देवी 9 व्यंतर देवी	8 वि.	7 वि.	6 सं०	2 सं०	0	0
10 ज्योतिषी देव	0	0	0	1 स्तोक	0	0
10 ज्योतिषी देव	0	0	0	2 सं०	0	0
11 वैमानिक देव	0	0	0	3 असं०	2 असं०	1 स्तोक
11 वैमानिक देवी०	0	0	0	4 सं०	0	0
12 भवनपति	7 वि.	6 वि.	5 असं०	4 असं०	0	0
12 व्यंतर	11 वि.	10 वि.	9 असं०	8 असं०	0	0
12 ज्योतिषी	0	0	0	12 सं०	0	0
12 वैमानिक	0	0	0	3 असं०	2 असं०	1 स्तोक
3 भवन देवी	5 वि.	8 वि.	3 असं०	2 असं०	0	0
13 व्यंतर देवी	9 वि.	8 वि.	7 वि.	6 असं०	0	0
13 ज्योतिषी देवी	0	0	0	10 सं०	0	0
13 वैमानिक देवी	0	0	0	1 स्तोक	0	0
12 भवन० देव	9 वि.	8 वि.	7 असं०	5 असं०	0	0
14 भवन० देवी	12 वि.	11 वि.	10 सं०	6 सं०	0	0
14 व्यंतर देव	17 वि.	16 वि.	15 असं०	13 असं०	0	0
14 व्यंतर देवी	20 वि.	19 वि.	18 सं०	14 सं०	0	0
14 ज्योतिषी देव	0	0	0	21 सं०	0	0
14 ज्योतिषी देवी	0	0	0	22 सं०	0	0
14 वैमानिक देव	0	0	0	3 असं०	2 असं०	1 स्तोक
14 वैमानिक देवी	0	0	0	4 सं०	0	0

मनुष्य में नौ बोल का अल्प बहुत्व तिर्यच की तरह समझ लेना चाहिये । दसवें बोल का अल्प बहुत्व मनुष्य दंडक में नहीं है । इसलिए नौ बोल के अल्प बहुत्व की तरह समझ लें ।

(14) श्री प्रज्ञापना पद 2 के स्थान कोष्ठक-क्षेत्र द्वार

जीवों के भेद	स्व स्थान में रहने से	उपपात से उत्पन्न होने से	समुद्घात की अपेक्षा
1 पृथ्वी, 2 अप्, 3 तेज, 4 वायु, 5 वनस्पति ये पांच सूक्ष्म पर्याप्ता और ये पांच अपर्याप्ता-कुल 10	सर्वलोक में	सर्वलोक में	सर्वलोक में
1 बादर पृथ्वी, 2 अप्, 3 वायु, 4 वनस्पति-ये चार अपर्याप्ता	लोक के असंख्यातवें भाग में	सर्वलोक में	सर्वलोक में (असंख्य लोक के प्रदेश-तुल्य होने से)
अपर्याप्ता बादर तेज का 1	मनुष्य लोक	मनुष्य लोक के दो ऊर्ध्व कपाट-तिच्छर्ण लोक का तट	सर्वलोक में
बादर तेजकाय-पर्याप्ता 1	मनुष्य लोक	लोक के असंख्य भाग में (अल्प होने से)	लोक के असंख्यातवें भाग में
पर्याप्ता बादर वायुकाय 1	लोक के अनेक असंख्य भाग में	लोक के अनेक असंख्य भाग में	लोक के अनेक असंख्य भाग में
पर्याप्ता बादर वनस्पति 1	लोक के असंख्य भाग में	सर्वलोक में (अधिक होने से)	सर्वलोक में
शेष सब जीव	लोक के असंख्य भाग में	सर्वलोक में	सर्वलोक में

(15) स्पर्शना द्वार (प्रज्ञापना पद 21 से)♦

मरणांत समुद्घात तेजस अवगाहना	नारकी	भवन0 व्यंतर ज्योतिषी, सौधर्म, ईशान	3 से 8 देवलोक	9 से 12 देवलोक	9 त्रैवेयक 5 अनुत्तर	5 स्थावर	तीन विकले- न्द्रिय तिर्यच पंचे0	मनुष्य
जघन्य	1000 योजन साधिक पाताल- कलश की दिवाल आश्रित	स्व आभरण आदि अपेक्षा से अंगुल का असंख्या- तवां भाग	अंगुल का असंख्यातवां भाग (स्त्री से भोग कर मर कर वहां अन्य में उत्पन्न हो)	अंगुल का असंख्यातवां भाग (स्त्री से भोग कर वहां योनि में पूर्व वीर्य में उत्पन्न हो)	विद्याधर श्रेणी	अंगुल का असंख्या- तवां भाग	यथावत्	यथावत्
उत्कृष्ट	सातवीं नरक	तीसरी नरक का चरम अंत	पाताल कलश के ऊपर के दो भाग	अधोग्राम में	अधोग्राम में	14 रज्जू प्रमाण	7 रज्जू प्रमाण	7 रज्जू प्रमाण

♦ जीवस्स णं भंते मारणंतियसमुद्घाएणं समोहयस्स तेयासरीस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पं0 ? गो0 ! सरीर पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जभागो, उक्कोसेणं लोगंताओ लोगंते। एगिंदियस्स णं भंते ! मारणंतिय. सरीरो प0 गो0 ! एवं चेव, जाव पुढवि0 आउ0 तेउ0 वाउ0 वणप्फइकायस्स ! बेइंदियस्सणं भंते ! मारणंतिय0 पं0 ? गो0 ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जह0 अंगुलस्स असं0 उक्को0 तिरियलोगाओ लोगंते, एवं जाव चउरिंदियस्स । नेरइयस्स णं भंते ! मार0 जह0 सातिरेकं जोयणसहस्सं. उक्को0 अधे जाव अहेसत्ता पुढवी, तिरियं जाव सयंभुरमणे समुद्दे, उड्डं जाव पंडगवण पुक्खरिणीतो । पंचिंदियतिरिक्ख जोणियस्स णं भंते ! गो0 जहा बेइंदियसरीरस्स । मणुस्सस्स णं भंते ! गो0 । समयखेत्ताओ लोगंतो ! असुरकुमारस्स णं भंते ! जह0 अंगुलस्स असं0, उक्को0 अधे जाव तच्चाए पुढवीए हिड्डिल्ले चरमंते तिरियं जाव संयभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्ले वेइयंते, उड्डं जाव इसीपब्भारा पुढवी एवं जाव थणिय कुमार तेयग सरीरस्स । वाणमंतर जोइसिय सोहम्मीसाणगा य एवं चेव । सणंकुमार देवस्स णं भंते ! जह0 अंगु0 असं0, उक्को0 अधे जाव महापातालाणं दोच्चे तिभागे, तिरियं जाव सयंभुरमणे समुद्दे, उड्डं जाव अच्चुओ कप्पो, एवं जाव सहस्सारदेवस्स अच्चुओ कप्पो । आणयदेवस्स णं भंते । जह0 अंगु0 असं0, उक्को0 जाव अधोलोइयगामा, तिरियं जाव मणूसखेत्ते, उड्डं जाव अच्चुओ कप्पो, एवं जाव आरणदेवस्स अच्चुअदेवस्स एवं चेव, णवरं उड्डं जाव सयाइं विमाणांति । गेविज्जगदेवस्स णं भंते । जह0 विज्जाहरसेढीतो, उक्को0 जाव अहोलोइया गामा, तिरियं जाव मणूसखेत्ते, उड्डं, जाव सगातिं विमाणांतिं अणुत्तरोववाइयस्स वि एवं चेव ।” (प्रज्ञा0 सू0 275)

तिर्छा	स्वयं-भूरमण समुद्र	स्वयंभूरमण समुद्र की वेदिका अंत तक	स्वयंभूरमण समुद्र	मनुष्य क्षेत्र	मनुष्य क्षेत्र	1 रज्जू	1 रज्जू	आधा रज्जू
ऊर्ध्व	पंडग वन की बावडी	ईषत् प्राग्भार पृथ्वी	अच्युत विमान	अच्युत विमान	स्वयं का विमान	14 रज्जू	7 रज्जू	7 रज्जू

(16) श्री प्रज्ञापना पद 36 में से समुद्घात कोष्टक

7 समुद्घात	वेदनीय	कषाय	मारणांतिक	वैक्रिय	तैजस	आहारक	केवल	असम वहता
स्वामी	चार गति	चार गति	चार गति	चार गति	नरक छोड़ तीन गति	मनुष्य 1	मनुष्य 1	चार गति के जीव
काल	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्त0	8 समय	—
अतीत काल	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	1	1	0
जघन्य उत्कृष्ट भविष्य में करेगा जघन्य	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	अनंतीबार	4	1	0
अल्प बहुत्व	7 विशेष	6 असं0	5 अनंत गुणा	4 असं0	3 असं0	1 स्तोक	2 संख्येय गुणा	8 असं0 गुणा
क्षेत्र-दिशा	6	6	3,4,5,6	6	6	3	6	0
विष्कंभ बाहुल्य	शरीर प्रमाण	शरीर प्रमाण	शरीर प्रमाण	शरीर प्रमाण	शरीर प्रमाण	शरीर प्रमाण	सर्वलोक	0
आयाम-लंबाई	"	"	14 रज्जू				"	0
विग्रह समय	3	3	3	3	3	0	0	0
संख्या क्रिया	3,4,5	3,4,5	3,4,5	3,4,5	3,4,5	3,4,5	0	0

(17) केवली समुद्घात कोष्ठक

प्रथम आवर्जीकरण कर आत्मा को मोक्ष के सन्मुख करे, फिर समुद्घात करता है। जिस समय में आत्म प्रदेशों को सर्वलोक में व्याप्त करे उस समय में अपने आठ रुचक प्रदेश को लोक रुचक पर स्थापित करे (स्थानांग-वृत्ति)।

आठ समय	1 समय	2 समय	3 समय	4 समय	5 समय	6 समय	7 समय	8 समय
तीन योग	औदारिक	ओदा0 मिश्र	कार्मण	कार्मण	कार्मण	मिश्र	मिश्र	औदारिक
आठ करण	दंड करे	कपाट करे	मंथान करे	अंतर भरे	अंतर का संहरण करे	मंथान का संहरण करे	कपाट का संहरण करे	दंड का संहरण करे शरीरस्थ
उर्ध्व-अधो पूर्व-पश्चिम	लोकांत शरीर प्रमाण	लोकांत शरीर प्रमाण	लोकांत "	लोकांत "	लोकांत "	लोकांत शरीर प्रमाण	लोकांत शरीर प्रमाण	लोकांत शरीर प्रमाण
उत्तर दक्षिण	"	लोकांत	"	"	"	"	"	"
जीव प्रदेश	सर्व शरीर में	बाह्य थोडे	आभ्यंतर में थोडे	लोकाकाश तुल्य	लोकाकाश तुल्य	अभ्यंतर स्तोक	बाह्य स्तोक	सर्व शरीर में

(18) सात समुद्घात में अल्प बहुत्व (प्रज्ञापना पद 36)

द्वार	वदनीय 1	कषाय 2	मरणांतिक 3	वैक्रिय 4	तैजस 5	आहारक 6	केवल 7
नरक	2 संख्येय	4 संख्येय	1 स्तोक	2 असं0	0	0	0
भवनपति	3 असं0	"	2 असं0	5 संख्य	1 स्तोक	0	0
पृथ्वी	3 विशे.	2 संख्येय	1 स्तोक	0	0	0	0
अप्	"	"	"	0	0	0	0
अग्नि	"	"	"	0	0	0	0
वायु	4 वि.	3 सं0	2 असं0	1 स्तोक	0	0	0
वनस्पति	3 वि.	2 सं0	1 स्तोक	0	0	0	0

बेइन्द्रिय	2 असं .	3 सं0	"	0	0	0	0
तेइन्द्रिय	"	"	"	0	0	0	0
चउरिन्द्रिय	"	"	"	0	0	0	0
तिर्य्यच पंचेन्द्रिय	4 असं .	5 सं0	3 सं0	2 असं0	1 स्तोक	0	0
मनुष्य	6 असं .	7 सं0	5 असं .	4 सं0	3 सं0	1 स्तोक	2 सं0
व्यंतर	3 असं .	4 सं0	2 असं .	5 सं0	1 स्तोक	0	0
ज्योतिषी	"	"	"	"	"	0	0
वैमानिक	"	"	"	"	"	0	0

(19) कषाय पद में अल्प बहुत्व (प्रज्ञापना सूत्र)

द्वार	क्रोध द्वार संख्या	मान	माया	लोभ	अकषाय
नरक	4 विशेषा	3 संख्यात	2 संख्यात	1 स्तोक	0
भवनपति	1 स्तोक	2 संख्यात	3 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
पृथ्वी	1 विशेषाधिक	1 स्तोक	2 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
अप्	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	2 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
अग्नि	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	2 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
वायु	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	2 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
वनस्पति	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	"	4 विशेषाधिक	0
बेइन्द्रिय	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	"	4 विशेषाधिक	0
तेइन्द्रिय	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	"	4 विशेषाधिक	0
चउरिन्द्रिय	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	"	4 विशेषाधिक	0
तिर्य्यच पंचेन्द्रिय	2 विशेषाधिक	1 स्तोक	"	4 विशेषाधिक	0
मनुष्य	2 विशेषाधिक	—	—	—	1 स्तोक
व्यंतर	1 स्तोक	2 संख्यात	3 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
ज्योतिष	1 स्तोक	2 संख्यात	3 संख्यात	4 विशेषाधिक	0
वैमानिक	1 स्तोक	2 संख्यात	3 संख्यात	4 विशेषाधिक	0

आचारांग सूत्रानुसार 16 संज्ञाओं का स्वरूप

1. आहार संज्ञा – आहार संज्ञा आहार की अभिलाषा रूप है। यह संज्ञा तैजस शरीर नाम कर्म व अशाता वेदनीय के उदय से होती है।

2. भय संज्ञा – यह संज्ञा संत्रास रूप है। मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

3. मैथुन संज्ञा – यह संज्ञा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद के उदय से होती है।

4. परिग्रह संज्ञा – मूर्च्छा रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

5. सुख संज्ञा – यह संज्ञा शातावेदनीय के उदय से होती है।

6. दुःख संज्ञा – यह संज्ञा अशातावेदनीय के उदय से होती है।

7. मोह संज्ञा – यह संज्ञा मिथ्यादर्शन रूप है और मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

8. विचिकित्सा संज्ञा – यह संज्ञा चित्तविप्लुति रूप है और मोहनीय एवं ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होती है।

9. क्रोध संज्ञा – अप्रीति रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

10. मान संज्ञा – गर्व रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

11. माया संज्ञा – वक्रता रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

12. लोभ संज्ञा – गृद्धि रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से होती है।

13. शोक संज्ञा – विप्रलाप व वैमनस्य रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म से उदय होती है।

14. लोक संज्ञा – स्वच्छंद विकल्प रूप लोक रुढ़ि, जैसे-श्वान यक्ष है, विप्र देवता है, कौएं पितामह है, मोर की पंख के पवन से मयूरी को गर्भ होता है, इत्यादि रुढ़ियां लोक संज्ञा कहलाती है। ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम व मोहनीय के उदय से यह संज्ञा होती है।

15. धर्म संज्ञा – क्षमा आदि के सेवन रूप यह संज्ञा मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होती है।

16. ओघ संज्ञा – अव्यक्त उपयोग रूप है, जैसे लता वृक्ष पर चढ़ती है। यह संज्ञा ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से होती है।

उपरोक्त 15 संज्ञाएं संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि को यथासंभव होती है एवं ओघ संज्ञा, एकेन्द्रिय जीवों को समझनी चाहिये। ये बातें निर्युक्ति में कही गई हैं।

(20) स्थानांग (स्थाने 4 उद्देशे 4) अथवा पन्नवणा के संज्ञा पद के अनुसार आहार आदि संज्ञाएं—

चार संज्ञाएं	1 आहार संज्ञा	2 भय संज्ञा	3 मैथुन संज्ञा	4 परिग्रह संज्ञा
नारकी	2 संख्येय गुणा	4 संख्येय गुणा	1 सबसे कम	3 संख्येय गुणा
तिर्य्यच	4 संख्येय गुणा	3 संख्येय गुणा	2 संख्येय गुणा	1 सबसे कम
मनुष्य	2 संख्येय गुणा	3 सबसे कम	4 संख्येय गुणा	3 संख्येय गुणा
देवता	1 सबसे कम	2 संख्येय गुणा	3 संख्येय गुणा	4 संख्येय गुणा

संज्ञाओं के उद्दीपन के चार-चार कारण-1 आहार संज्ञा (1) पेट खाली हो जाने से (2) क्षुधा लगने से (3) आहार को देखने व उसके बारे में सुनने से (4) आहार की चिंता करने से ।

2 भय संज्ञा – (1) धैर्य के अभाव से (2) भय के उदय से (3) भयजनक वस्तु देखने से (4) भय की चिंता करने से ।

3 मैथुन संज्ञा – (1) मांस-खून की पुष्टता होने से (2) वेद के उदय से (3) स्त्री को देखने-सुनने से (4) काम भोग की चिंता करने से ।

4 परिग्रह संज्ञा – (1) मूर्च्छा होने से (2) लोभ के उदय से (3) वस्तु को देखने-सुनने से (4) वस्तु की चिंता करने से ।

(21) सांतर-निरंतर द्वार

गति भेद	नारकी	तिर्य्यच	मनुष्य	देवता
जघन्य अंतर	1 समय	0	1 समय	एक समय
उत्कृष्ट अंतर	12 मुहूर्त	0	12 मुहूर्त	12 मुहूर्त
जघन्य जीव संख्या	1 समय में 1 जीव उत्पन्न होता है ।	प्रति समय अनंत जीव उत्पन्न होते हैं ।	एक समय में एक जीव उत्पन्न	एक समय में एक जीव उत्पन्न
उत्कृष्ट जीव संख्या	श्रेणी का असंख्यातवां भाग	अनंत उत्पन्न होते हैं ।	पत्न्य के असंख्यातवें भाग	श्रेणी असंख्यातवें भाग
निरंतर जघन्य प्रमाण	दो समय निरंतर	सर्व अद्धा	दो समय निरंतर	दो समय निरंतर

निरंतर उत्कृष्ट प्रमाण	आवलिका के असंख्यातवें भाग	सर्व अद्धा	आवलिका के असंख्यातवें भाग	आवलिका के असंख्यातवें भाग
जघन्य जीव संख्या	दो जीव दो समय में उत्पन्न हो ।	अनंत समय से उत्पन्न हो ।	दो जीव दो समय में उत्पन्न हो ।	दो जीव दो समय में उत्पन्न हो ।
उत्कृष्ट जीव संख्या	श्रेणी के असंख्यातवें भाग	सर्व अद्धा	पत्न्य के असंख्यातवें भाग	श्रेणी के असंख्यातवें भाग
सांतरोपन्नगा	2 असंख्य गुणे	0	दो असंख्य गुणे	दो असंख्य गुणे
निरंतरोपन्नगा	1 स्तोक	0	1 स्तोक	1 स्तोक

(22) भाषा-पुद्गल भेदक कोष्टक (पन्नवणा पद 11)

भेद	खंड भेद 1	प्रत्तर भेद 2	चूर्ण भेद 3	अनुताडिता भेद 4	उत्कारिका भेद 5
अर्थ	लोहे के खंड की तरह भाषा के खंड होते हैं	अभ्रक के पुद्गल की तरह भाषा बोलने के बाद भेद जाते हैं	अन्न के आटे की तरह भाषा बोलने के बाद भेदे जाते हैं ।	सरोवर की अन्नेड (पूर्व में दरार का न होना) की तरह वक्ता के पूर्व प्रयत्न से विसर्जित भाषा पुद्गल भेद को पाते हुए तिच्छी गति करते हैं ।	एरंड, मटर, मूंग व उडद की फली सूखने पर उछलने वाले दाने की तरह
अल्प					
बहुत्व	5 अनंत गुणा	4 अनंत गुणा	3 अनंत गुणा	2 अनंत गुणा	1 थोडे

भाषा स्वरूप (प्रज्ञापना पद 11)

(1) आदि – भाषा की आदि जीव से होती है ।

(2) उत्पत्ति – भाषा की उत्पत्ति औदारिक, वैक्रिय व आहारक शरीर से होती है ।

(3) भाषा का संस्थान – भाषा का संस्थान वज्र आकार का होता है । जैसे—वज्र आगे-पीछे विस्तीर्ण व बीच में पतला होता है, वैसा संस्थान भाषा का होता है । क्यों ? लोकव्यापी तद्लोक समान संस्थान है ।

(4) स्पर्श – तीव्र प्रयत्न से बोलने पर भाषा के पुद्गल लोक की छ दिशाओं के चरम अंत तक चार समय में स्पर्श करते हैं ।

(5) **द्रव्य** – भाषा द्रव्य से अनंत प्रदेशी स्कंध लेती है ।

(6) **क्षेत्र** – भाषा क्षेत्र से असंख्य प्रदेश अवगाहन वाले स्कंध ग्रहण करती है ।

(7) **काल** – काल से भाषा का अंतर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट से वनस्पति काल (असंख्य पुद्गल-परावर्त) ।

(8) **भाव** – भाव से भाषा 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श को ग्रहण करती है ।

(9) **दिशा** – भाषा के पुद्गल छ दिशाओं से ग्रहण किये जाते हैं ।

(10) **स्थिति** – भाषा की स्थिति जघन्य से एक समय व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

(11) **अंतर** – भाषा का अंतर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से हैं ।

(12) **ग्रहण** – भाषा के पुद्गल काय योग से ग्रहण होते हैं ।

(13) **व्युत्सर्ग** – भाषा वर्णों को वचनयोग से छोड़ते हैं ।

(14) **निरंतर** – भाषा के पुद्गल पहले समय में लेते हैं, दूसरे समय में नए लेते हैं और पुराने छोड़ते हैं, इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पांचवें यावत् अन्तर्मुहूर्त तक नए लेते हैं वे पीछे के छोड़ते हैं । अंतिम समय में नया ग्रहण नहीं करते हैं, बल्कि पीछे का छोड़ते हैं । यहां पहले समय में लेते ही हैं और अंतिम समय में छोड़ते ही है और मध्य के असंख्य समय में लेना व छोड़ना ये दोनों बातें प्रत्येक समय में होती हैं ।

(23) 5 शरीर का कोष्ठक (प्रज्ञापना पद 21)

नाम 1		औदारिक 1	वैक्रिय 2	आहारक 3	तैजस 4	कार्मण 5
स्वामी 2		मनुष्य-तिर्यच	चारों गति के जीव	14 पूर्वधर मनुष्य	चार गति के जीव	चारों गति के जीव
संस्थान 3		छह	मूल शरीर देवता को समचतुरस्त्र नारक को हुंडक उत्तर वैक्रिय नाना-विध है ।	समचतुरस्त्र	अनेक संस्थान	अनेक संस्थान
जघन्य प्रमाण 4		अंगुल का असंख्यातवां भाग	अंगुल का असंख्यवां भाग	कुछ न्यून एक हाथ	अंगुल का असंख्यातवां भाग	अंगुल का असंख्यातवां भाग

उत्कृष्ट प्रमाण 4		1000 योजन	1 लाख योजन	1 हाथ	4 रज्जूलोक	सर्वलोक प्रमाण
पुद्गल 5		3, 4, 5, व 6 दिशा से	छह दिशाओं से	छह दिशाओं से	3, 4, 5, व 6 दिशा से	3, 4, 5, व 6 दिशा से
परस्पर 5	औदारिक	—	भजना	भजना	नियमा	नियमा
शरीर का	वैक्रिय	भजना	0	0	नियमी	नियमा
संयोग	आहारक	नियमा	0	0	नियमा	नियमा
द्वार 6	तैजस	भजना	भजना	भजना	0	0
	कर्मण	भजना	भजना	भजना	0	0
अल्प	द्रव्यार्थ (द्रव्यार्थिक नय)	3 असंख्येय गुणा	2 असंख्येय गुणा	सबसे कम 1	4 अनंत गुणा	4 अनंत गुणा
बहुत्व	प्रदेशार्थ (प्रदेशार्थिक नय)	3 असंख्येय गुणा	2 असंख्येय गुणा	सबसे कम 1	4 अनंत गुणा	5 अनंत गुणा
द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ	द्रव्यार्थ	3 असंख्येय गुणा	2 असं. गुणा	1 सबसे कम	7 अनंत गुणा	7 अनंत गुणा
उभय 7	प्रदेशार्थ	6 असंख्येय गुणा	5 असं. गुणा	4 अनंत गुणा	8 अनंत गुणा	9 अनंत गुणा
अवगाहना	जघन्य	1 थोडे	3 असंख्येय गुणा	4 असंख्येय गुणा	2 विशेषाधिक	2 विशेषाधिक
का	उत्कृष्ट	2 संख्येय गुणा	3 संख्येय गुणा	थोडे	4 असंख्येय	4 असंख्येय गुणा
अल्प बहुत्व 8	जघन्य	थोडे	3 असंख्येय गुणा	4 असंख्येय	2 विशेषाधिक	2 विशेषाधिक
	उत्कृष्ट	6 संख्येय गुणा	7 संख्येय गुणा	5 विशेषाधिक	8 असंख्येय	8 असंख्येय गुणा

योनि प्रकार (प्रज्ञापना पद 9)

- 1) **संवृत योनि**—ढंकी हुई योनि-देव, नारक और स्थावर की संवृत योनि होती है ।
- 2) **विवृत योनि**—खुली योनि । विकलेन्द्रिय की होती है ।

3) संवृत-विवृत योनि—खुली व ढंकी हुई । गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यच और गर्भज मनुष्य की होती है ।

4) सचित योनि—जीव प्रदेश संयुक्त । स्थावर आदि की तरह होती है ।

5) अचित योनि—जीव रहित योनी । देवता व नारकी की होती है ।

6) मिश्र योनि—सचित व अचित रूप गर्भज की होती है ।

7) शीत योनि—शीत उत्पत्ति स्थान । नारक आदि की तेजस्काय की होती है ।

8) उष्ण योनि—उष्ण उत्पत्ति स्थान । नारक व तेजस्काय की होती है ।

9) शीतोष्ण योनि—उभय उत्पत्ति स्थान । मनुष्य व देव आदि की होती है ।

10) शंखावर्त योनि—यह योनि स्त्री रत्न की होती है, इसमें जीव का जन्म नहीं होता ।

11) कूर्मोन्नत योनि—कच्छुए की तरह । तीर्थकर-चक्रवर्ती-बलदेव व वासुदेव की माता की होती है ।

12) वंशीपत्रा योनि—पृथक् जन की माता । सामान्य स्त्री की यह योनि होती है ।

(24) चौरासी लाख योनि

पृथ्वीकाय	7 लाख	बेइन्द्रिय	2 लाख
अप्काय	7 लाख	तेइन्द्रिय	2 लाख
तेजस्काय	7 लाख	चउरिन्द्रिय	4 लाख
वायुकाय	7 लाख	देवता	4 लाख
बादर निगोद	7 लाख	नारकी	4 लाख
सूक्ष्म निगोद	7 लाख	तिर्यच पंचेन्द्रिय	4 लाख
प्रत्येक वनस्पति	10 लाख	मनुष्य	14 लाख

(25) एक कोडाकोडी 9750 लाख करोड कुल

पृथ्वी	12 लाख कोटि	जलचर	12½ लाख कोटि
अप्	7 लाख कोटि	स्थलचर	10 लाख कोटि
तेउ	3 लाख कोटि	खेचर	12 लाख कोटि
वायु	7 लाख कोटि	उरग	10 लाख कोटि
वनस्पति	28 लाख कोटि	भुजग	9 लाख कोटि
बेइन्द्रिय	7 लाख कोटि	मनुष्य	12 लाख कोटि
तेइन्द्रिय	8 लाख कोटि	देवता	26 लाख कोटि
चउरिन्द्रिय	8 लाख कोटि	नारकी	25 लाख कोटि

संघयण स्वरूप

1) वज्रऋषभ नाराच – संघयण अर्थात् अस्थिसंचय । वज्र अर्थात् कील ।

ऋषभ अर्थात् परिवेष्टन और नाराच अर्थात् उभय मर्कट बंध ।

दोनों हड्डियों की आपस में मर्कटबंध स्थापना । ऋषभ अर्थात् ऊपर वेष्टन स्थापना, वज्र जो कीलिका रूप है, ऊपर लगाई जाती है और तीन हड्डियों का भेद कर रहती है ।

2) ऋषभ नाराच – ऋषभ नाराच में उभय मर्कट बंध और ऊपरि वेष्टन । इसमें वज्र की कील नहीं होती ।

3) नाराच – सिर्फ मर्कट बंध । ऊपर वेष्टन व कील नहीं होती ।

4) अर्ध नाराच – एक ओर कील और एक ओर मर्कट बंध – उसे अर्ध नाराच कहते हैं ।

5) कीलिका – दोनों हड्डियों को बांधने वाली सिर्फ कील हो – उसे कीलिका कहते हैं ।

6) सेवार्त – दोनों हड्डियों के छोर का सिर्फ स्पर्श हो, उसे सेवार्त कहते हैं । संस्थान स्वरूप (स्थानांग से) ।

1) समचतुरस्र – सम अर्थात् शास्त्रोक्त रूप, चतुर अर्थात् चार, अम्र अर्थात् शरीर के अवयव इसे समचतुरस्र कहते हैं । यह संस्थान सर्व लक्षणों से युक्त होता है । ऊँचाई 108 अंगुल प्रमाण होती है ।

2) न्यग्रोध परिमंडल – न्यग्रोध अर्थात् बड की तरह । मंडल अर्थात् नाभि से ऊपर । परि अर्थात् प्रथम संस्थान के लक्षण हैं ।

जिस संस्थान में बड की तरह नाभि के नीचे लक्षण हीन व नाभि से ऊपर लक्षण युक्त हो उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं ।

3) सादि – जिसमें नाभि से नीचे लक्षण युक्त व नाभि के ऊपर लक्षण हीन हो उसे सादि संस्थान कहते हैं ।

4) कुब्ज – हाथ, पैर व मस्तक लक्षण युक्त हो और हृदय, पीठ, उदर लक्षण हीन हो उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं ।

5) वामन – जहां हृदय, उदर व पीठ लक्षण सहित हो और शेष सभी अवयव लक्षण हीन हो उसे वामन कहते हैं । यह कुब्ज से ठीक विपरीत होता है ।

6) हुंडक – जहां सभी अवयव लक्षण हीन हो उसे हुंडक संस्थान कहते हैं ।

(26) उत्पाद के 14 बोल (भगवती शतक 1, उ. 2 सूत्र 25)

कौन ?	जघन्य उत्पत्ति स्थान	उत्कृष्ट उत्पत्ति स्थान
1. असंयत भव्य, द्रव्यदेव, चरण परिणाम से शून्य, मिथ्यादृष्टि भव्य अथवा अभव्य, द्रव्य से क्रिया करने वाला, समस्त समाचारी अनुष्ठान युक्त, तथा द्रव्यलिंगधारी ।	भवनपति में	नौवें ग्रैवेयक में
2. अविराधित संयम प्रव्रज्या काल से लेकर अभग्न चारित्र परिणाम, प्रमत्त गुणस्थानक में भी जिसने चारित्र का घात नहीं किया हो ।	प्रथम देवलोक	सर्वार्थ सिद्ध
3. विराधित संयम (ऊपर से विपरीत अर्थ) सुकुमालिका जो दूसरे देवलोक में गई, इसके कारण उसने उत्तर गुण विराधना की थी) यहां विशिष्टतर संयम विराधना लेने की है ।	भवनपति	प्रथम देवलोक
4. आराधक श्रावक, स्थूल से व्रत ग्रहण कर अखंड व्रत का पालन करनेवाला श्रावक ।	प्रथम देवलोक	12 वां देवलोक
5. विराधक श्रावक (ऊपर से विपरीत अर्थ)	भवनपति	ज्योतिष
6. तापस (गिरे हुए पत्र आदि खाने वाले बाल तपस्वी	भवनपति	ज्योतिष

7. असंज्ञी (मनोलब्धि रहित अकाम निर्जरा वाले)	भवनपति	प्रथम देवलोक
8. कंदर्पिक (व्यवहार में चारित्रवंत किंतु वंदन, मुख, नेत्र आदि अंगों को विकृत कर लोगों को हंसाने वाला)	भवनपति	प्रथम देवलोक
9. चरक परिव्राजक (त्रिदंडी अथवा चरक-कछोटकाय, परिव्राजककपिल मुनि के संतानीय ।	भवनपति	प्रथम देवलोक
10. किल्बिषिक (व्यवहार से चारित्रवान् किंतु जमालि की तरह ज्ञानादि से अवर्णवाद बोलता है)	भवनपति	ब्रह्मदेवलोक पांचवें
11. तिर्य्यच (गाय, घोड़ा आदि देश विरतिधर)	भवनपति	छठे देवलोक
12. आजीविकानुयायी (गौशाला के शिष्य की तरह आजीविका निमित्त कार्य करें-पाखंडी विशेष)	भवनपति	आठवें देवलोक
13. आभियोगिक (मंत्र यंत्र द्वारा सामने वाले को वश करे)	भवनपति	बारहवें देवलोक
14. स्वलिङ्गी दर्शन व्यापन्न (साधु का वेष होने पर भी जो सम्यक्त्व से भ्रष्ट है-निहनव आदि)	भवनपति	बारहवें देवलोक

जिसे उत्पन्न हुए एक समय हुआ हो, उसे अप्रदेशी समझना चाहिये और जिसे उत्पन्न हुए दो आदि अनंत समय हुआ हो उसे सप्रदेशी समझना चाहिये । इन चारों कोष्ठकों में जिस दंडक में जो बोल हैं, उनकी अपेक्षा से विचार करना चाहिये ।

प्रथम-अप्रथम का लक्षण

जिसने जो भाव पहले प्राप्त किया हो वह 'प्रथम' और जिसने जो भाव दो आदि बार प्राप्त किया हो उसे 'अप्रथम' समझना चाहिये ।

चरम-अचरम का लक्षण—♦

जो जं पावहिति पुणो भावं सो तेण अचरिमे होइ (अचरिमो होंति ?)

अच्चंत विओगे जस्स जेण भावेण सो चरिमो ॥

जीवाहारग 1-2 भव 3 सण्णी 4 लेसा 5 दिट्ठि 6 य संजय 7 कसाए 8 ।

णाणे 9 जोगुवओगे 10-11 वेए 12 सरीर 13 पज्जती 14 (मूल गाथा)

♦ प्रथम-अप्रथम का लक्षण भगवती सूत्र 616 की निम्न गाथा में नजर पडता है—

“जो जेण पत्तपुवो भावो सो तेण अपढमो होइ ।
सेसेसु होइ पढमो, अपत्तपुव्वेसु भावेसु ॥”

(27) काल की अपेक्षा सप्रदेशी-अप्रदेशी

काल की अपेक्षा से सप्रदेशी- अप्रदेशी	आहा- रक	अणा- हारी	भव्य अभं- व्य	नो भव्य नो अभं- व्य	संज्ञी	असं- ज्ञी	नो संज्ञी नो असं- ज्ञी	सलेशी	कृष्ण नील का- पोत	तेजो- लेश्या	पद्म शुक्ल	अले- शी	सम्य- ग् दृष्टि	मिथ्या दृष्टि	मिश्र दृष्टि	मिश्र दृष्टि	संयम
1.जीव	सप्र- देशी अप्र- देशी अना- दि अनंत	सप्र. अप्र.	स.	3	3	3	3	स.प्र.	सं.अ.	3	3	3	3	3	3	6	3
2.नारक	3	6	3	0	3	6	0	3	3	0	0	0	0	3	3	6	0
3.10 देव भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक	3	6	3	0	3	6	0	3	3	3	3	3	0	3	3	6	0
4.पृथ्वी, अप्, वनस्पति	स.अ. प्र.स.	स.अ. प्र.	स.अ. प्र.	0	0	स.अ. प्र.	0	स.अ. प्र.	स.अ. प्र.	6	0	0	0	0	स.अ. प्र.	0	0
5.तेज, वायु	स.अ. प्र.स.	स.अ. प्र.	स.अ. प्र.	0	0	स.अ.	0	"	"	0	0	0	0	0	"	0	0
6.विक- लेन्द्रिय	3	6	3	0	0	3	0	3	3	0	0	0	0	6	3	0	0
7.तिर्यच पंचेन्द्रिय	3	6	3	0	3	3	0	3	3	3	3	3	0	3	3	6	0
8.मनुष्य	3	6	3	0	3	6	3	3	3	3	3	3	6	3	3	6	3
9.सिद्ध	0	3	0	3	0	0	3	0	0	0	0	0	3	3	0	0	0

काल आदेश से सप्रदेशी-अप्रदेशी

काल की अपेक्षा से सप्रदेशी- अप्रदेशी	असं-	देश विरति	नो संयत नो असंयत नो श्रावक	सका- पायी	क्रोध कषाय	मान, माया	लोभ	अक- पायी	औधि ज्ञान	मतिश्रुत	अवधि	मन. पर्यव
1.जीव	3	3	3	3	स.अ.प्रस	अभंग	अभंग	3	3	3	3	3
2.नारक	3	0	0	3	3	6	6	0	3	3	3	0
3.देव 10 भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक	3	0	0	3	6	6	3	0	3	3	3	0
4.पृथ्वी, अप्, वनस्पति	स.अ.प्र.	0	0	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग	0	0	0	0	0
5.तेउ, वायु	स.अ.प्र.	0	0	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग	0	0	0	0	0
6.विकले- न्द्रिय	3	0	0	3	3	3	3	0	6	6	0	0
7.तिर्यच पंचेन्द्रिय	3	3	0	3	3	3	3	0	3	3	3	0
8.मनुष्य	3	3	3	0	3	3	3	3	3	3	3	3
9.सिद्ध	0	0	3	0	0	0	0	3	3	0	0	0

काल आदेश से सप्रदेशी-अप्रदेशी

काल की अपेक्षा से सप्रदेशी- अप्रदेशी	केवल ज्ञानी	औघ अज्ञानी	मति श्रुत अज्ञानी	विभंग ज्ञानी	सहयोगी	मन- वचन योगी	काय- योगी	अयोगी	साकार उपयोगी	अनाकार उपयोग	सवेदी	स्त्री- पुरुष वेदी
1.जीव	3	3	3	3	स	3	3	3	अभंग	अभंग	3	3
2.नारक	0	3	3	3	3	3	3	0	3	3	3	0
3.10 देव भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक	0	3	3	3	3	3	3	0	3	3	3	3
4.पृथ्वी, अप्, वनस्पति	0	अभंग	अभंग	0	अभंग	0	अभंग	0	अभंग	अभंग	अभंग	0
5.तेउ, वायु	0	अभंग	अभंग	0	अभंग	0	अभंग	0	अभंग	अभंग	अभंग	0
6.विकलेन्द्रिय	0	3	3	0	3	3	3	0	3	3	3	0
7.तिर्यच पंचेन्द्रिय	0	3	3	3	3	3	3	0	3	3	3	3
8.मनुष्य	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3
9.सिद्ध	3	0	0	0	0	0	0	3	3	3	0	0

काल आदेश से सप्रदेशी

काल की अपेक्षा से सप्रदेशी- अप्रदेशी	नपुंसक वेदी	अवेदी	सशरीरी तेजस कर्मण	औदा- रिक	वैक्रिय शरीरी	आहारक शरीरी	अशरीरी	आहार आदि चार पर्याप्ति	भाषा, मन दो पर्याप्ति	आहार अप- र्याप्ति	शारीरादि तीन अप- र्याप्ति	भाषा- मन अप- र्याप्ति
1.जीव	3	3	स.अ.प्र.	3	3	6	1	अभंग	3	अभंग	अभंग	3
2.नारक	3	0	3	0	3	0	0	3	3	6	6	6
3.10 भवनपति व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव	0	0	3	0	3	0	0	3	3	6	6	6

4.पृथ्वी, अप्, वनस्पति	अभंग	0	अभंग	अभंग	0	0	0	अभंग	0	अभंग	अभंग	0
5.तेउ, वायु	अभंग	0	अभंग	अभंग	0	0	0	अभंग	0	अभंग	अभंग	0
6.विकलेन्द्रिय	3	0	3	3	0	0	0	3	3	6	3	3
7.तिर्यच पंचेन्द्रिय	3	0	3	3	3	0	0	3	3	6	3	3
8.मनुष्य	3	3	3	3	3	6	0	3	3	6	6	6
9.सिद्ध	0	3	0	0	0	0	3	0	0	0	0	0

(28) आहारी-अणाहारी (प्रज्ञापना पद 28, उद्दे-2)

	आहारी	भव्य अभव्य	नो भव्य नो अभव्य	संज्ञी	असंज्ञी	नो संज्ञी नो असंज्ञी	सलेशी कृष्ण, नील, कापोत	तेजो-लेश्या	पद्म, शुक्ल लेश्या	अलेशी	सम्यग् दृष्टि	मिश्र दृष्टि	मिथ्या
1.जीव	अभंग	अभंग	अणा-हारी	3	अभंग	अभंग	अभंग	3	3	अणा-हारी	3	आहारी	अभंग
2. नारक	3	3	0	3	6	0	3	0	0	0	3	आहारी	3
3.भवनपति व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव	3	3	0	3	6, 6	0	3, 3	3	3	0	3	आहारी	3
4.पृथ्वीकाय आदि पांच एकेन्द्रिय	अभंग	अभंग			अभंग		अभंग	6	0	0	0	0	अभंग
5.विकलेन्द्रिय	3	3	0	0	3	0	3	0	0	0	6	0	3
6.तिर्यच पंचेन्द्रिय	3	3	0	3	3	0	3	3	3	0	3	आहारी	3
7.मनुष्य	3	3	0	3	6	3	3	3	3	अणा-हारी	3	आहारी	3
8.सिद्ध	अणा-हारी	0	अणा-हारी	0	0	अणा-हारी	0	0	0	अणा-हारी	अणा-हारी	0	0

आहारी-अणाहारी (प्रज्ञापना पद 28, उ.-2)

	संयत	असंयत	श्रावक	नो संयत नो असंयत नो श्रावक	सक- षायी	क्रोध	मान, माया	लोभ कषाय	अकषायी	सज्ञानी	मति श्रुत ज्ञानी
1.जीव	3	अभंग	आहारी	अणाहारी	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग	3	3
2.नारक	0	3	0	0	3	3	6	6	0	3	3
3.देव 10 भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव	0	3	0	0	3	3	6	6	0	3	3
4. पृथ्वीकाय	0	अभंग	0	0	0	अभंग	अभंग	अभंग	0	0	0
5. विकलेन्द्रिय	0	3	0	0	3	3	3	3	0	6	6
6.तिर्यच पंचेन्द्रिय	0	3	आहारी	0	3	3	3	3	0	3	3
7. मनुष्य	3	3	आहारी	0	3	3	3	3	3	3	3
8. सिद्ध	0	0	0	अणाहारी	0	0	0	0	अणाहारी	अणाहारी	0

आहारी-अणाहारी (प्रज्ञापना पद 28, उ.-2)

काल की अपेक्षा से सप्रदेशी- अप्रदेशी	नपुंसक वेदी	अवेदी	सशरीरी तेजस कर्मण	औदा- रिक	वैक्रिय शरीरी	आहारक शरीरी	अशरीरी	आहार आदि चार पर्याप्ति	भाषा, मन दो पर्याप्ति	आहार अप- र्याप्ति	शारीरादि तीन अप- र्याप्ति	भाषा- मन अप- र्याप्ति
1.जीव	3	आहारी	अभंग	अभंग	3	अभंग	3	अभंग	अणा- हारी	अभंग	अभंग	3
2.नारक	3	0	0	3	3	3	3	3	0	3	3	0
3.देव भवनपति व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव	3	0	0	3	3	3	3	3	0	3	3	0

4. पृथ्वीकाय आदि पांच एकेन्द्रिय	0	0	0	अभंग	0	0	0	अभंग	0	अभंग	अभंग	0
5. विकलेन्द्रिय	0	0	0	3	0	3	0,3	3	0	3	3	0
6. तिर्यच पंचेन्द्रिय	आहारी	0	0	3	आहारी	3	3	3	0	3	3	3
7. मनुष्य	3	अहारी	3	3	आहारी	3	3	3	अणा- हारी	3	3	3
8. सिद्ध	0	0	अणा- हारी	0	0	0	0	0	अणा- हारी	अणा- हारी	0	0

आहारी-अणाहारी (प्रज्ञापना पद 28, उ. 2)

	नपुं- सक वेदी	अवे- दी	सश- रीरी	औदा- रिक शरीर	वैक्रिय आहा- रक शरीरी	तैजस कर्मण	अश- रीरी	आहार शरीर आन प्राण इन्द्रिय भाषा मन	आहार अप- र्याप्ति	शरीर अप- र्याप्ति	इन्द्रिय अप- र्याप्ति	आन- प्राण अप- र्याप्ति	भाषा मन अप- र्याप्ति
1. जीव	अभंग	अभंग	अभंग	3	आहारी	अभंग	अणा- हारी	3	अणा- हारी	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग
2. नारक	3	0	3	0	आहारी	3	0	आहारी	अणा- हारी	6	6	6	6
3. देव भवनपति व्यंतर, ज्योतिष, वैमानिक देव	0	0	3	0	आहारी	3	0	आहारी	अणा- हारी	6	6	6	6

4.पृथ्वी- काय आदि पांच एकेन्द्रिय	अभंग	0	अभंग	आहारी	0	अभंग	0	आहारी	अणा- हारी	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग
5.विक- लेन्द्रिय	3	0	3	आहारी	0	3	0	आहारी	अणा- हारी	अभंग	अभंग	अभंग	अभंग
6.विक- लेन्द्रिय	3	0	3	आहारी	आहारी	3	0	आहारी	अणा- हारी	3	3	3	3
7.मनुष्य	3	3	3	3	आहारी	3	0	3	अणा- हारी	६	६	६	६
8.सिद्ध	0	अणा- हारी	0	0	0	0	अणा- हारी	0	अणा- हारी	0	0	0	0

(29) चरम-अचरम कोष्टक (भगवती शतक 18, उद्देश 1, सू. 616)

1. भाव	आहार 2, संज्ञी 7, असंज्ञी 8, सलेशी 10, यावत् शुक्ल लेशी 16, मिथ्या दृष्टि 19, मिश्र दृष्टि 20, संयत 21, असंयत 22, संयता-संयत श्रावक 23, सकषायी 25, यावत् लोभ कषायी 29, मति ज्ञानी 32, यावत् मनः पर्यव ज्ञानी 35, अज्ञानी 40, सयोगी 41, यावत् काययोगी 44, सवेदी 48, यावत् नपुंसक वेदी 51, सशरीरी 53, यावत् कार्मण शरीरी 58, पांच पर्याप्ती 64, पांठ अपर्याप्ती 69	आणा- हारी 3, सम्यग्- दृष्टि 18, सज्ञानी 31 साकारो- पयुक्त 46, अनाका- रोपयुक्त 47	भव सिद्धिक 4	अभव सिद्धिक 5	नोभव सिद्धिक 6 नो अभव सिद्धिक 6, नो संयत नो असंयत, नो संयता- संयत 24, अश- रीरी 59	नो संज्ञी नो असंज्ञी 9, अलेशी 17 केवल ज्ञानी 36 अयोगी 45	अकषायी 30 अवेदी 52
	52	5	1	1	3	4	2
जीवा- नाम्	चरम	चरम-अचरम	अचरम	चरम	अचरम	अचरम	अचरम

24 दंडक	चरम- अचरम	चरम अचरम	चरम अचरम	चरम अचरम	अचरम	0	चरम	चरम अचरम
सिद्ध	अचरम	0	अचरम	0	0	अचरम	अचरम	अचरम

(30) प्रथम-अप्रथम कोष्टक (भगवती शतक 18, उद्देश 1, सू. 616)

	भाव 1	आहारक 2, भव्य 24, अभव्य 5, संज्ञी 7, असंज्ञी 8, सलेशी 10, यावत् शुक्ल लेशी 16, मिथ्या दृष्टि 19, असंयत 22, सकषायी 24, यावत् लोभ कषायी 29, अज्ञानी 37, यावत् विभंगज्ञानी 40, सयोगी 41, यावत् काययोगी 44, सवेदी 48, यावत् नपुंसक वेदी 52, सशरीरी 53, औदारिक 54, वैक्रिय 55, तैजस आहारक 53-57 कर्मण-58, पांच पर्याप्ति 64, पांच अपर्याप्ति 67	आणा- हारी 3, साकारो- पयुक्त 46, अनाका रोपयुक्त 47	सम्यग्- दृष्टि 18, सज्ञानी 23	नो भव सिद्धिक नो अभव सिद्धिक नो संयत 9 असंयत नो संयता- संयत 24, अशरीरी 59	नो संज्ञी नो असंज्ञी 9 अलेशी 17, केवल ज्ञानी 36 अयोगी 45	अकषायी 30 अवेदी 52	मिश्र दृष्टि 20 संयम 21 संयता- संयत 23, मतिज्ञान 32, यावत् मनःपर्यव ज्ञानी 35, आहारक शरीर 56,
		46	3	2	3	4	2	8
जीव	अप्रथम	अप्रथम	अप्रथम- प्रथम	प्रथम- अप्रथम	प्रथम	प्रथम	प्रथम- अप्रथम	प्रथम- अप्रथम
24 दंडक	अप्रथम	अप्रथम	अप्रथम- प्रथम	प्रथम- अप्रथम	0	प्रथम	प्रथम- अप्रथम	प्रथम- अप्रथम
सिद्ध	प्रथम	0	प्रथम	प्रथम	प्रथम	प्रथम	प्रथम	0

(31) भगवती शतक 26, उद्देश 1, सूत्र 824)

	सम्यक्त्व 1 वाद	मिश्र 2 वाद	मिथ्यात्व 3 वाद	औधिक-4 वाद
जीव मनुष्य 2 46	अलेशी 1, सम्यग् दृष्टि 2, समुच्चय ज्ञानी 3, यावत् केवल ज्ञानी 8, नो संज्ञोपयुक्त 9, अवेदी 10, अकषायी 11, अयोगी 12,	सम्यग् मिथ्यादृष्टि	कृष्णपक्षी 1, मिथ्यादृष्टि 2, अज्ञानी 3, मति श्रुत अज्ञानी 4-5, विभंग ज्ञानी 6	सलेशी प्रमुख 7, शुक्लपक्षी 8, संज्ञा 4-12, सवेदी 13 क्रोधादि स्त्री-पुरुष-नपुंसक 16 सकषायी प्रमुख पांच 21, उपयोग दो 23, सयोगी प्रमुख 4, इस प्रकार सभी बोल 27 हुए ।
पंचेन्द्रिय तिर्यच 39	सम्यग्दृष्टि 1 ज्ञानी 2 मति ज्ञानादि 3 इस प्रकार सभी बोल 5	सम्यग् मिथ्यादृष्टि	कृष्णपक्षी आदि ऊपर के 6 बोल	सलेशी आदि ऊपर के 27 बोल जान लें ।
भवनपति व्यंतर 36	"	"	"	इन 27 में से पद्म, शुक्ल लेश्या, नपुंसकवेद-इन तीनों को छोड़ शेष 24 बोल
नरक 34	"	"	"	तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या, स्त्री वेद व पुरुष वेद-इन 5 को छोड़ शेष 22
वैमानिक 35	सम्यग्दृष्टि 1 ज्ञानी 2 मति ज्ञानादि 3 इस प्रकार कुल 5 बोल	सम्यग् मिथ्यादृष्टि	कृष्णपक्षी आदि ऊपर के 6 बोल	उपरोक्त 27 में कृष्ण आदि तीन लेश्या व नपुंसक वेद इन 4 को छोड़कर शेष 23
ज्योतिष 33	"	"	"	उपरोक्त 27 में से कृष्ण आदि तीन लेश्या पद्म-शुक्ल लेश्या व नपुंसक वेद-ये 6 छोड़ शेष 21
वाद0	एक क्रियावादी लाभे ।	अज्ञानवादी विनयवादी	अक्रिया 1, अज्ञान 2, विनय 3, वाद	क्रिया 1, अक्रिया 2, अज्ञान 3, विनयवादी 4

आयुबंध	क्रियावादी मनुष्य तिर्यच, वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं । मनुष्य में अलेशी 1, केवली 2, अवेदी 3, अकषायी 4, अयोगी 5, इन पांच बोल में आयुष्य नहीं बांधते हैं । क्रियावादी देव-नारकी, मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं ।	आयुष्य नहीं बांधते हैं ।	मनुष्य, तिर्यच चारों गति का आयुष्य बांधते हैं । देवता-नारकी, मनुष्य, तिर्यच के आयुष्य का बंध करते हैं ।	क्रियावादी मनुष्य-तिर्यच कृष्ण आदि तीन संक्लिष्ट लेश्या में आयु नहीं बांधते हैं, शेष बोल में रहते आयुष्य बांधते हैं । वैमानिक के शेष 3, समवसरण चारों गति के देवता-नारकी-क्रियावादी मनुष्य आयु बांधते हैं । शेष समवसरण मनुष्य-तिर्यच के एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय में समवसरण 2, अक्रिया 1, अज्ञानी 2, विकलेन्द्रिय में अज्ञानी मति श्रुत ज्ञानी आयु नहीं बांधते हैं । एकेन्द्रिय में तेजोलेश्या में आयुष्य नहीं बांधते हैं । शेष बोल में मनुष्य तिर्यच का आयुष्य बांधते हैं । तेउ, वायु तिर्यच का आयुष्य बांधते हैं । 1 क्रियावादी, 1 मिश्र दृष्टि और 3, शुक्लपक्षी निश्चय से भव्य होते हैं, शेष में भजना ।
				इति प्रथम उद्देशक ।
				(1) अनंतरोप. (2) अनंतोगाढा (3) अनंतर आहार (4) अनंतर-पज्जत्तगा इनमें 24 दंडक से कोई भी आयुष्य नहीं बांधता है । अचरम में 1 अलेशी 2 केवली 3 अयोगी नहीं और सभी उद्देशा प्रथम की तरह समझने चाहिये । द्वारा गाथा-जीवा य लेस्स पक्खिय दिट्ठी वेय कसाय उवओग, जोग एक्कारस वि ठाणा । (भग. सू. 810)

(32) गति आदि में ज्ञान-अज्ञान (भगवती शतक 9, उद्देश 2, सूत्र 319-321)

1	जीव सामान्य	5 ज्ञान भजना	3 अज्ञान भजना
15	नारकी, भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक	3 नियमा	3 भजना
20	पृथ्वी आदि 5	0	2 नि.
23	विकलेन्द्रिय 3	2 नि.	2 नि.
24	तिर्यच पंचेन्द्रिय	3 भजना	3 भजना
25	मनुष्य	5 भजना	3 भजना
26	सिद्ध	1 नियमा	0

गति द्वार

		ज्ञान	अज्ञान
1-2	नरक गति, देव गति	3 नियमा	3 भजना
3	तिर्यच गति	2 नि.	2 नि.
4	मनुष्य गति	3 भ.	2 नि.
5	सिद्ध गति	1 नियमा	0

इन्द्रिय द्वार

		ज्ञान	अज्ञान
1	सेन्द्रिय	4 भजना	3 भजना
2	एकेन्द्रिय	0	2 नियमा
3-5	बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय	2 नि.	2 नि.
6	पंचेन्द्रिय	4 भजना	3 भ.
7	अनिन्द्रिय	1 नि.	0

काय द्वार

		ज्ञान	अज्ञान
1	सकाय	5 भजना	3 भजना
2-6	पृथ्वीकाय आदि 5	0	2 नियमा
7	त्रसकाय	5 भ.	3 भ.
8	अकाय	1 नि.	0
1	सूक्ष्म	0	2 नि.
2	बादर	5 ज्ञान	3 भ.
3	नो सूक्ष्म-नो बादर	1 नि.	0

पर्याप्ता द्वार

1	जीव पर्याप्ता	5 भजना	3 भजना
2	पर्याप्ता नारक	3 नि.	3 नि.
15	भवनपति, व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक पर्याप्त	3 नि.	3 नि.
20	पृथ्वी आदि 5 पर्याप्ता	0	2 नि.
23	विकलेन्द्रिय पर्याप्ता	0	2 नि.
24	पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्ता	3 भ.	3 भ.
25	मनुष्य पर्याप्ता	5 भ.	3 भ.

अपर्याप्ता द्वार

1	अपर्याप्ता जीव	3 भ.	3 भ.
2	अपर्याप्ता नारक	3 नि.	3 भ.
13	भवनपति, व्यंतर अपर्याप्त	3 नि.	3 भ.
18	पृथ्वीकाय आदि 5 अपर्याप्ता	0	2 नि.
21	बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय च0 अपर्याप्ता	0 2 नि.	2 नि. 2 नि.

22	तिर्यच पंचेन्द्रिय अपर्याप्ता	2 नि.	2 नि.
23	मनुष्य अपर्याप्ता	3 भ.	2 नि.
24-25	ज्योतिष-वैमानिक अपर्याप्त	3 नि.	3 नि.
26	नो पर्याप्ता-नो अपर्याप्ता	1 नि.	0

भव द्वार

1	नरक भवावस्था	3 नि.	3 भजना
2	तिर्यच भवावस्था	3 भ.	3 भजना
3	मनुष्य भवावस्था	5 भ.	3 भजना
4	देव भवावस्था	3 नि.	3 भजना
5	अभवावस्था	1 नि.	3 भजना

भव्य द्वार

1	भव्य	5 भजना	3 भजना
2	अभव्य	0	3 भजना
3	नो भव्य नो अभव्य	1 नि.	0

संज्ञी द्वार

1	संज्ञी	4 भजना	3 भजना
2	असंज्ञी	2 नि.	2 नि.
3	नो संज्ञी-नो असंज्ञी	1 नि.	0

लब्धि द्वार

1	ज्ञान लब्धि	5 भ.	0
2	ज्ञान अलब्धि	0	3 भ.
4-5	मति श्रुतक लब्धि	4 भ.	0
6	मति श्रुत अलब्धि	1 नि.	3 भ.
7	अवधि लब्धि	4 भ.	0
8	अवधि अलब्धि	4 भ.	3 भ.
9	मनः पर्यव लब्धि	4 भ.	0
10	मनः पर्यव अलब्धि	4 भ.	3 भ.
11	केवल अलब्धि	1 नि.	0

12	केवल लब्धि	4 भ.	3 भ.
13	अज्ञान लब्धि	0	3 भ.
14	अज्ञान अलब्धि	5 भ.	0
15-16	मति श्रुत अज्ञान लब्धि	0	3 भ.
17	मति श्रुत अज्ञान लब्धि	5 भ.	0
18	विभंग लब्धि	0	3 नि.
19-20	विभंग अलब्धि	5 भ.	2 नि.
1	दर्शन लब्धि	5 भ.	3 भ.
2	दर्शन अलब्धि	0	0
3	सम्यग् दर्शन लब्धि	5 भ.	0
4	सम्यग् अलब्धि	0	3 भ.
5	मिथ्या दर्शन लब्धि	0	3 भ.
6	मिथ्या दर्शन अलब्धि	5 भ.	3 भ.
7	सम्यग् मिथ्या दर्शन लब्धि	0	3 भ.
8	सम्यग् मिथ्या दर्शन अलब्धि	5 भ.	3 भ.
1	चारित्र लब्धि	5 भ.	3 भ.
2	चारित्र अलब्धि	4 भ.	3 भ.
3-6	सामायिक आदि चार चारित्र लब्धि	4 भ.	0
7-10	सामायिक आदि चार चारित्र अलब्धि	4 भ.	3 भ.
11	यथाख्यात लब्धि	5 भ.	0
1	चरित्राचारित्र लब्धि	3 भजना	0
2	चरित्राचारित्र अलब्धि	5 भजना	3 भ.
3-7	दानादि 5 लब्धि	5 भजना	3 भ.
8-10	दानादि 5 अलब्धि	1 नि.	0
11	बालवीर्य लब्धि	3 भ.	3 भ.

12	बालवीर्य अलब्धि	5 भ.	0
13	पंडित वीर्य लब्धि	5 भ.	0
14	पंडित वीर्य अलब्धि	4 भ.	3 भ.
15	बालपंडित वीर्य लब्धि	3 भ.	0
16	बाल पंडित वीर्य अलब्धि	5 भ.	3 भ.
1	इन्द्रिय लब्धि	4 भ.	3 भ.
2	इन्द्रिय अलब्धि	1 नि.	0
3	श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि	4 भ.	3 भ.
4	श्रोत्रेन्द्रिय अलब्धि	1 नि. 2 भ.	2 भ.
5-6	चक्षुरिन्द्रिय-प्राणेन्द्रिय लब्धि	4 भ.	3 भ.
7-8	चक्षुरिन्द्रिय-प्राणेन्द्रिय अलब्धि	1 नि. 2 भ.	2 नि.
9	जिह्वेन्द्रिय लब्धि	4 भ.	3 भ.
10	जिह्वेन्द्रिय अलब्धि	1 नि.	2 नि.
11	स्पर्शेन्द्रिय लब्धि	4 भ.	3 भ.
12	स्पर्शेन्द्रिय अलब्धि	1 नि.	0
1	साकार उपयोग	5 भ.	3 भ.
2-3	मति श्रुत साकार उपयोग	4 भ.	0
4	अवधि साकार	4 भ.	3 भ.
5	मनःपर्यव साकार उपयोग	4 भजना	0 3 भ.
6	केवल साकारोपयोग	9 नि.	0
7-8	मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान साकारोपयोग	0	3 भ.
9	विभंग साकारोपयोग	0	3 नि.
10	अनाकार उपयोग	5 भ.	3 भ.
11	चक्षुदर्शन अनाकार उप.	4 भ.	3 भ.

12	अचक्षुदर्शन अनाकार उपयोग	4 भ.	3 भ.
13	अवधि दर्शन अना. उप.	4 भ.	3 भ.
14	केवल दर्शन अना.उप.	1 नि.	0
1	सयोगी	5 भ.	3 भ.
2	मन योगी	5 भ.	3 भ.
3	वचन योगी	5 भ.	3 भ.
4	काययोगी	5 भ.	3 भ.
5	अयोगी	1 नि.	0
1	सलेश्यी	5 भ.	3 भ.
2-6	कृष्णादि 5 लेश्या	4 भ.	3 भ.
7	शुक्ल लेश्या	5 भ.	3 भ.
8	अलेशा	1 नि.	0
1	सकषायी	4 भ.	3 भ.
2-5	क्रोध आदि 4 कषाय	4 भ.	3 भ.
6	अकषायी	5 भ.	0
1	सवेदी	4 भ.	3 भ.
2-4	स्त्री-पु.-नपुंसक वेद	4 भ.	3 भ.
5	अवेदी	5 भ.	0
1	आहारक	5 भ.	3 भ.

(33) द्रव्य आदि की अपेक्षा से ज्ञान का विषय (भग. शतक 8, उद्देश सूत्र 322)

ज्ञानना और देखना	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
मति	सामान्य से सर्व द्रव्य	सर्वक्षेत्र	सर्व काल	सर्व भाव
श्रुत	उपयोग से सर्व द्रव्य	सर्वक्षेत्र	सर्व काल	सर्व भाव
अवधि ज्ञान	जघन्य से अनंत रूपी द्रव्य उत्कृष्ट से सर्व रूपी द्रव्य	जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट से लोक समान असंख्य अलोक खंड	जघन्य से आवलिका का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी	जघन्य से अनंत भाव उत्कृष्ट से सर्व भाव का अनंतवां भाग जाने व देखे ।
मनःपर्यव ज्ञान	जघन्य व उत्कृष्ट से अनंतानंत प्रदेशी स्कंध	जघन्य व उत्कृष्ट से मनुष्य क्षेत्र, ऊंचाई में 909 योजन व नीचे अधोलोक का क्षुल्लक प्रतर	जघन्य व उत्कृष्ट से पल्योपम का असंख्यातवां भाग	अनंत भाव (सर्व भाव का अनंतवां भाग)
केवल ज्ञान	सर्व द्रव्य	सर्व क्षेत्र	सर्व काल	सर्व भाव
मति अज्ञान	परिग्रह द्रव्य	परिग्रह	परिग्रह	परिग्रह
श्रुत अज्ञान	"	"	"	"
विभंग ज्ञान	"	"	"	"

स्थिति ज्ञान—ज्ञानी दो प्रकार के हैं—(1) सादि-अपर्यवसित (2) सादि-सपर्यवसित ।

सादि सपर्यवसित —

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कृष्ट से 66 सागरोपम से कुछ अधिक ।

मति — श्रुतज्ञान —

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त

उत्कृष्ट से साधिक 66 सागरोपम ।

अवधि ज्ञान —

जघन्य से एक समय

उत्कृष्ट से साधिक 66 सागरोपम ।

मनःपर्यवज्ञान —

जघन्य से एक समय

उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड वर्ष ।

केवल ज्ञान —

सादि अपर्यवसित ।

अज्ञानी के तीन प्रकार हैं— (1) अनादि अपर्यवसित (2) अनादि सपर्यवसित (3) सादि सपर्यवसित ।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त

उत्कृष्ट से देशोन अर्धपुद्गल परावर्त काल

मति व श्रुत अज्ञान पूर्व की तरह ज्ञान लें ।

विभंग ज्ञान — जघन्य से एक समय ।

उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड वर्ष अधिक 33 सागरोपम ।

(34) अंतर द्वार (जीवाभिगम प्रति. 9, उ. 2 सूत्र 267)

0	जघन्य अंतर	उत्कृष्ट अंतर
ज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्धपुद्गल परावर्तकाल
मति श्रुत ज्ञानी	"	"
अवधि ज्ञानी	"	"
मनः पर्यव ज्ञानी	"	"
केवलज्ञानी	0	0
अज्ञानी	अन्तर्मुहूर्त	साधिक 66 सागरोपम
मतिश्रुत अज्ञानी	"	"
विभंग ज्ञानी	"	वनस्पति काल-अनन्त

ज्ञान-अज्ञान	अल्प बहुत्व (ज्ञान-अज्ञान का अलग-अलग)	8 का अल्प बहुत्व	पर्यव अल्प बहुत्व	आठ का पर्यव अल्प बहुत्व
मति ज्ञान	3 वि.	3 वि.	4 अनंत	7 वि.
श्रुत ज्ञान	4 वि. 3 तु.	4 वि.तु.	3 अनंत	5 वि.
अवधि ज्ञान	2 असं.	2 असं.	2 अनंत	3 अनंत गुणा
मनः पर्यव ज्ञान	1 स्तोक	1 स्तोक	1 स्तोक	1 स्तोक
केवल ज्ञान	5 अनंत	5 अनंत	5 अनंत	8 अनंत
मति अज्ञान	2 अनंत	6-7 अनंत	3 अनंत गुण	6 अनंत
श्रुत अज्ञान	2 अनंत तुल्य	तुल्य 6	2 अनंत	4 अनंत
विभंग ज्ञान	1 स्तोक	4 असं.	1 स्तोक	2 अनंत

द्वार गाथा — जीव 1 गति 5 इंदी 7 काय 8 सुहम्म 3 पज्जत्त 3 भवत्थ 5 भवसिद्धिय 3 सन्ना 3 लद्धी 7 अवओग 12 जोगिय 5-1 लेसा 8 कसाय 6 वेदे 5 य आहारे 2 नाणगोयरे 17 काले 1 अंतर 10 अप्पाबहुयं 8 पज्जवा 8 चेव दाराइं ॥22॥

(नंदी सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, भगवती सूत्र एवं नंदी टीका के आधार पर)

मति ज्ञान के मुख्य भेद—(1) अवग्रह (2) ईहा (3) अवाय (4) धारणा ।

अर्थावग्रह आदि—सामान्यतया अर्थ (पदार्थ) को ग्रहण करे, उसे अवग्रह कहते हैं । जैसे कोई मार्ग में जा रहा हो और वह दूर से कोई ऊंची वस्तु को देख कर यह जाने कि 'यहां कुछ है' उसे अवग्रह समझना चाहिये ।

अवग्रह से जो पदार्थ ग्रहण किया हो उसके सदभूत अर्थ का विचार करना जैसे-यह कौनसी वस्तु है ? **दुंठ** है अथवा पुरुष है ? उसे **ईहा** कहते हैं ।

ईहा के बाद पदार्थ का निश्चय करना । जैसे-यह तो चलता-फिरता है, अतः कोई पुरुष है, **दुंठ** नहीं-इसे अवाय कहते हैं ।

अवाय के अनंतरकाल में निर्णित अर्थ को धारण करना, जैसे-यह वही पुरुष है जिसे पहले मैंने देखा था, उसे धारणा कहते हैं ।

धारणा के भेद—(1) अविच्युति धारणा (2) वासना धारणा (3) स्मृति धारणा ।

अविच्युति धारणा—जो अर्थ धारण किया हो उसे उपयोग से क्षण मात्र भी नहीं भूलना उसे अविच्युति धारणा कहते हैं, इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ।

वासना धारणा—जिस वस्तु का उपयोग था, वह तो नष्ट हो गया किंतु संस्कार रह गया हो (पुष्पवासनावत्) उसे वासना धारणा कहते हैं, इसकी स्थिति संख्य-असंख्य काल की है ।

स्मृति धारणा—कालांतर में सदृश वस्तु के दर्शन से संस्कार-प्रबोध के कारण ज्ञान हुआ हो, जैसे—'यह तो मैंने पहले देखा था' इसे स्मृति धारणा कहते हैं ।

अवग्रह आदि चार की स्थिति— 1. **अवग्रह** अन्तर्मुहूर्त ।

2. वस्तु देखने के बाद जो विकल्प हो वह **ईहा**—अन्तर्मुहूर्त विचारणा रूप होती है ।

3. **अवाय**-पदार्थ का निर्णय करने रूप अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है ।

4. **धारणा**-आयु आश्रित संख्य-असंख्य काल ।

अवग्रह के दो भेद—(1) **व्यंजनावग्रह**-व्यंजन शब्द के तीन अर्थ हैं ।

1. श्रोत्र आदि इन्द्रिय और शब्द आदि अर्थ का जो अव्यक्त रूप से संबंध है, उसे व्यंजन कहते हैं ।

2. शब्दादि अर्थ को भी व्यंजन कहते हैं ।

3. श्रोत्र आदि इन्द्रिय को भी व्यंजन कहते हैं । तात्पर्य यह है कि अप्रकट संबंध द्वारा ग्रहण करना, उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं । यह व्यंजनावग्रह प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण समझना चाहिये ।

2 अर्थावग्रह—प्रकटरूप से अर्थग्रहण करना, उसे अर्थावग्रह कहते हैं । वह एक समय प्रमाण होता है ।

व्यंजनावग्रह के चार प्रकार—(1) श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह (2) घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह (3) रसनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह और (4) स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह ।

चार इन्द्रियां प्राप्यकारी होने से उनका व्यंजनावग्रह होता है ।

वस्तु को पाकर, परस्पर छूकर, प्रकाश करे उसे प्राप्यकारी कहते हैं अथवा विषय-वस्तु से अनुग्रह-उपघात प्राप्त करे, उसे प्राप्यकारी कहते हैं । आंख को छोड़कर चार इन्द्रियां प्राप्यकारी हैं । आंख व मन अप्राप्यकारी हैं ।

श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह—अव्यक्तरूप से श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द के पुद्गल प्रथम समय आदि में ग्रहण करना उसे श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह कहते हैं । इसी तरह घ्राण, रसना व स्पर्शन के साथ समझ लेना चाहिये ।

अर्थावग्रह के छ भेद—(1) स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह (2) रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह (3) घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह (4) चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह (5) श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह (6) नोइन्द्रिय अर्थावग्रह ।

स्पर्शन इन्द्रिय से प्रकट रूप से स्पर्शित पुद्गलों को ग्रहण करना, उसे स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह कहते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये । नोइन्द्रिय अर्थात् मन ।

ईहा के छ भेद—(1) स्पर्शनेन्द्रिय ईहा (2) रसनेन्द्रिय ईहा (3) घ्राणेन्द्रिय ईहा (4) चक्षुरिन्द्रिय ईहा (5) श्रोत्रेन्द्रिय ईहा (6) नोइन्द्रिय ईहा ।

स्पर्शन इन्द्रिय से ग्रहित अर्थ पर विचार करना उसे स्पर्शनेन्द्रिय ईहा कहते हैं—इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये ।

अवाय के छ भेद—(1) स्पर्शनेन्द्रिय अवाय (2) रसनेन्द्रिय अवाय (3) घ्राणेन्द्रिय अवाय (4) चक्षुरिन्द्रिय अवाय (5) श्रोत्रेन्द्रिय अवाय (6) नोइन्द्रिय अवाय ।

स्पर्शनेन्द्रिय से ग्रहित वस्तु का विचार कर उसका निश्चय करना '**स्पर्शनेन्द्रिय अवाय**' हैं । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये ।

धारणा के छ भेद—(1) स्पर्शनेन्द्रिय धारणा (2) रसनेन्द्रिय धारणा (3) घ्राणेन्द्रिय धारणा (4) चक्षुरिन्द्रिय धारणा (5) श्रोत्रेन्द्रिय धारणा (6) नोइन्द्रिय धारणा ।

स्पर्शनेन्द्रिय से ग्रहण की गई वस्तु का विचार कर-निश्चय कर धारणा करना, स्पर्शनेन्द्रिय धारणा है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

$6 \times 4 = 24$ तथा चार व्यंजनावग्रह-इस प्रकार श्रुत निश्चित मति ज्ञान के 28 भेद होते हैं।

अश्रुत निश्चित मति ज्ञान के औत्पातिकी आदि चार बुद्धि का विस्तार नंदी सूत्र से समझना चाहिये।

श्रुत निश्चित मति ज्ञान के 336 भेद—(1) बहुग्राही—क्षयोपशम की विचित्रता के कारण अवग्रह आदि द्वारा एक ही साथ बजाए गए शंख-भेरी आदि के शब्दों को भिन्न-भिन्न जानना, उसे बहुग्राही कहते हैं।

(2) अबहुग्राही—अव्यक्त रूप से वाद्य यंत्र की ही ध्वनि को जाने, उसे अबहुग्राही कहते हैं।

(3) बहुविधग्राही—स्त्री आदि के द्वारा बजाए गए मधुर आदि अनेक पर्याय वाले शंख आदि की ध्वनि को जाने, उसे बहुविध ग्राही कहते हैं।

(4) अबहुविधग्राही—उपरोक्त से विपरीत रूप में जाने, उसे अबहुविधग्राही कहते हैं।

(5) क्षिप्रग्राही—जो शब्द आदि बोले हों उन्हें शीघ्र जान ले, उसे क्षिप्रग्राही कहते हैं।

(6) अक्षिप्रग्राही—बोले गए शब्द आदि को देरी से जाने, उसे अक्षिप्रग्राही कहते हैं।

(7) निश्चित—एक लिंग (चिह्न) से जो जाने उसे निश्चित कहते हैं। जैसे-ध्वजा देखकर मंदिर के अस्तित्व को जान ले।

(8) अनिश्चित—उपरोक्त से विपरीत रूप से जाने, उसे अनिश्चित कहते हैं।

(9) असंदिग्ध—जो संशय रहित जाने, उसे असंदिग्ध कहते हैं।

(10) संदिग्ध—जो संशय युक्त जाने, उसे संदिग्ध कहते हैं।

(11) ध्रुव—जो एक बार जान लेने पर सदा जानता हो और कालांतर में भी उपदेश की अपेक्षा न रखे उसे 'ध्रुव' कहते हैं।

(12) अध्रुव—उपरोक्त से विपरीत रूप से जाने उसे 'अध्रुव' कहते हैं।

उपरोक्त 12 भेद को पूर्वोक्त 28 भेदों से गुणा करने पर मति ज्ञान के 336 भेद होते हैं।

एकार्थक नाम—(1) ईहा (2) अपोह (3) विमर्श (4) मार्गणा (5) गवेषणा (6) संज्ञा (7) स्मृति (8) मति और (9) प्रज्ञा-ये मति के नौ नाम हैं।

मति के 9 द्वार—

- (1) **सत् पद प्ररूपणा**—मति ज्ञान कहाँ कहाँ होता है ?
- (2) **द्रव्य प्रमाण**—एक काल में कितने जीव मति ज्ञान पाते हैं ?
- (3) **क्षेत्र**—मति ज्ञानी कितने क्षेत्र में हैं ?
- (4) **स्पर्शना**—मति ज्ञानी कितने क्षेत्र का स्पर्श करते हैं ?
- (5) **काल**—मति ज्ञान कितने काल तक रहता है ?
- (6) **अंतर**—मति का अंतर ।
- (7) **भाग**—अन्य ज्ञानियों से मति ज्ञानी कितने भाग में है ?
- (8) **भाव**—मति ज्ञान छह भावों में से किस भाव में है ?
- (9) **अल्प बहुत्व**—मति ज्ञान पूर्व प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान में कौन से अधिक व कौन से कम हैं ?

(35) सत् पद द्वार बीस भेद

सत् पद प्ररूपणा 20 द्वार से	मति है या नहीं				
चारों गति में 1	है	बारह कषाय में	है	साकार-अनाकारों में 12	है
एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय में प्रायः	नहीं	प्रथम तीन भाव लेश्या में	नहीं	आहारी-अणाहारी में 13	है
पंचेन्द्रिय में 2	है	बाद की तीन लेश्या में 7	है	भाषा लब्धिवान् में	है
पृथ्वी, अप्, तेज, वायु वनस्पति में	नहीं	सम्यक्त्व में	है	जिसे भाषा की लब्धि नहीं है । 14	नहीं
त्रसकाय में	है	पांच मिथ्यात्व में 8	नहीं	प्रत्येक शरीर में	है
एकांत काय योग में	नहीं	मति आदि चार ज्ञान में	है	साधारण शरीरी में 15	है
एकांत वचन योग में	नहीं	केवल ज्ञान में 9	नहीं	पर्याप्ता में	है
जहां तीनों योग इकट्ठे हों वहां 4	है	चक्षु आदि तीन दर्शन में 3	है	लब्धि अपर्याप्ता में 16	नहीं
स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद में 5	है	केवल दर्शन में 10	नहीं	सूक्ष्म में	नहीं

अनंतानुबंधी चतुष्क में	नहीं	पांच संयत में 11	है	बादर में 17	है
संज्ञी में	है	असंज्ञी में प्रायः 18	नहीं	भव्य में	है
अभव्य में 19	नहीं	चरम में	है	अचरम में 20	नहीं

1. द्रव्य प्रमाण द्वार—मतिज्ञानी सदा असंख्य होते हैं ।

2. क्षेत्र द्वार—सभी मतिज्ञानी इकट्ठे किए जाय तो लोक के असंख्यातवें भाग में व्याप्त हों ।

3. स्पर्शना द्वार—मतिज्ञानी लोक के असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं । एक क्षेत्र प्रदेश में सात प्रदेश की स्पर्शना होती है ।

4. काल द्वार—मतिज्ञानी की स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से साधिक 66 सागरोपम है । उपयोग आश्रित मतिज्ञान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ।

5. अंतर द्वार—मति का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल है ।

6. भाग द्वार—मतिज्ञानी, सर्व ज्ञानी के अनंतवें भाग व सर्व अज्ञानी के अनंतवें भाग हैं ।

7. भाव द्वार—मतिज्ञान क्षयोपशम भाव है ।

8. अल्प बहुत्व द्वार—नए मति ज्ञान को पाने वाले कम हैं और पूर्व में पाए हुए असंख्य हैं ।

श्रुत ज्ञान का स्वरूप

(1) अक्षर श्रुत (2) अनक्षर श्रुत (3) संज्ञी श्रुत (4) असंज्ञी श्रुत (5) सम्यक् श्रुत (6) मिथ्या श्रुत (7) अनादि श्रुत (8) अपर्यवसित श्रुत (9) सादि श्रुत (10) सपर्यवसित श्रुत (11) गमिक श्रुत (12) अगमिक श्रुत (13) अंग प्रविष्ट श्रुत (14) अनंग प्रविष्ट श्रुत ।

1. अक्षर श्रुत—जीव से जो कदापि नहीं क्षरता है उसे अक्षर कहते हैं । वह अक्षर श्रुत तीन प्रकार का है ।

1. संज्ञाक्षर—जिसको करने से जाना जाता है उसे 'संज्ञा' कहते हैं, इस कारण जो अक्षर-पंक्ति है उसे संज्ञाक्षर कहते हैं । वह ब्राह्मीलिपी आदि 18 भेद वाला है, उसे द्रव्य श्रुत कहते हैं, उससे भाव श्रुत होता है । भावश्रुत के कारण को 'द्रव्यश्रुत' कहते हैं ।

2. व्यंजनाक्षर—अकार आदि अक्षर के उच्चारण को व्यंजन कहते हैं । वह अर्थ का व्यंजक बोधक है, इस कारण अकार आदि अक्षर के उच्चारण को व्यंजन कहते हैं । वह व्यंजन अक्षर श्रुत अनेक प्रकार का है । एक मात्रा से उच्चरित को 'ह्रस्व', दो मात्रा से उच्चरित को 'दीर्घ' तथा तीन मात्रा से उच्चरित को 'प्लुत' कहते हैं । इत्यादि भेद जैनैन्द्र व्याकरण से समझने चाहिए । इन्हे भी द्रव्य श्रुत कहते हैं ।

3. लब्ध्यक्षर—अक्षर उच्चारण की लब्धि अथवा अक्षरार्थ समझाने की लब्धि को 'लब्ध्यक्षर' कहते हैं । लब्ध्यक्षर श्रुत छ प्रकार का है—स्पर्शनेन्द्रिय लब्ध्यक्षर—स्पर्शन इन्द्रिय से मृदु, कर्कश आदि स्पर्श को प्राप्त कर अक्षर को जाने और अर्क, तूल (रुई) ऊन वस्त्र आदि शब्दार्थ

का विचार करें उसे स्पर्शनेन्द्रिय लब्धक्षर श्रुत कहते हैं। इसी प्रकार पांचों इन्द्रियों के विषय में समझना चाहिये। मन की वस्तु के अक्षर समझने को **‘नोइन्द्रिय लब्धक्षर श्रुत’** कहते हैं।

2. अनक्षर श्रुत—स्पष्ट रूप से जो अक्षर भासित न होते हों उसे अनक्षर श्रुत कहते हैं। उच्छ्वास, निःश्वास, निष्ठीवन (थूकना), काश, क्षुत, सीटी बजाना आदि अनेक प्रकार का समझना चाहिये।

3. संज्ञी श्रुत—जिस प्राणी को संज्ञा हो, उसे संज्ञी कहते हैं, उसके श्रुत को **‘संज्ञी श्रुत’** कहते हैं। वह संज्ञी श्रुत तीन प्रकार का है।

1. दीर्घकालिकी उपदेशेन संज्ञी—जिस प्राणी को पूर्वापर अर्थ की दीर्घ विचारणा हुई हो, जैसे-**‘पूर्व में ऐसे था अभी ऐसा है और आगे ऐसा होगा’** ऐसे विचार को दीर्घकालिकी तथा उपदेशेन अर्थात् उपदेश द्वारा संज्ञी। गर्भज मनुष्य, तिर्यच, देव, नारकी तथा मनःपर्याप्ति के धारक को यह संज्ञा होती है।

2. हेतु उपदेशेन संज्ञी—जो प्राणी स्वदेह के पालन के लिए इष्ट आहार आदि में प्रवृत्त हो और अनिष्ट से निवृत्त हो-इतना ही जानता हो किंतु पूर्वापर (आगे-पीछे) परिणाम को नहीं जानता हो-उसे हेतु उपदेशेन संज्ञी कहा जाता है। संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय, मनुष्य, तिर्यच व विकलेन्द्रिय प्राणी को यह संज्ञा होती है।

3. दृष्टिवाद उपदेशेन संज्ञी—जो प्राणी सम्यग्दृष्टि हो, जिसे वीतराग-भाषित वचन पर रुचि हुई हो-उसे दृष्टिवाद उपदेशेन संज्ञी समझना चाहिये। चौथे गुणस्थानक से लेकर आगे के सभी गुणस्थानकों में यह संज्ञा समझनी चाहिये।

4 असंज्ञी श्रुत स्वरूप

1. दीर्घकालिकी उपदेश से असंज्ञी—जो प्राणी पूर्वापर विचार को नहीं जानता हो उसको दीर्घकालिकी उपदेशेन असंज्ञी समझना चाहिये। यह संज्ञा संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय मनुष्य, तिर्यच, विकलेन्द्रिय व एकेन्द्रिय को जाननी चाहिये।

2. हेतु उपदेश से असंज्ञी—जो प्राणी स्वदेह के पालन के लिए इष्ट वस्तु आहार आदि में प्रवृत्त न हो सके और अनिष्ट से निवृत्त न हो सके उसे हेतु उपदेशेन असंज्ञी कहते हैं। स्थावर नाम कर्म के उदय वालों को हेतु उपदेशेन असंज्ञी कहते हैं।

3. दृष्टिवाद उपदेश से असंज्ञी—जिसकी मिथ्या दृष्टि प्रबल हो और जिसने वीतराग के अनेकांत-स्याद्वाद रूप वचन नहीं जाने हों, ऐसे प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव दृष्टिवाद उपदेशेन असंज्ञी होते हैं।

4. सम्यग् श्रुत—जिनेन्द्र प्रभु के वचनानुसार गौतम आदि गणधर रचित द्वादश अंग को सम्यक् श्रुत कहते हैं। चौदह पूर्वधारी यावत् दश पूर्वधारी रचित को भी सम्यक् श्रुत कहते हैं। दश पूर्व में कुछ न्यून हो उसके द्वारा कथित सम्यक् श्रुत हो भी और न भी हो।

कहा है-अभिन्नदसपुवि जस्स सम्मसुयं, तेण परं भयणा ।♦

♦ अभिन्नदश पूर्वाणि यस्य सम्यग् श्रुतं तेन परं भजना ।

3. मिथ्या श्रुत—मिथ्या दृष्टि द्वारा कहा गया महाभारत, चार वेद आदि को मिथ्या श्रुत समझना चाहिये ।

मिथ्या दृष्टि सम्यक् श्रुत को भी पढ़े तो वह उसके लिए मिथ्या श्रुत हो जाता है, क्योंकि वह किसी नय भेद को समझता नहीं है और उसे रुचि भी नहीं होती है, अतः वह अनेकांत की भी एकांत प्ररूपणा कर देता है, अतः उसे मिथ्या श्रुत कहते हैं और यदि सम्यग् दृष्टि आत्मा मिथ्या श्रुत पढ़े तो वह उसके लिए सम्यक् श्रुत हो जाता है । वह (सम्यग् दृष्टि) शास्त्र (मिथ्या) पढ़कर पूर्वापर का विचार करता है और वह उसे विसंवादित लगता है ।

जैसे-वेद में पहले तो यह कहा है—‘**न हिंसेत् सर्वभूतानि**’ और फिर कहा है ‘**यज्ञे पशून् हिंसेत्**’ यह देखकर वह सोचता है कि यह वचन तो परस्पर बाधित है । अतः धन्य है- वीतराग त्रिलोक पूजित परमात्मा को, जिनकी अनेकांत=स्याद्वाद रूप वाणी कहीं पर भी बाधित नहीं है ।

7. सादि श्रुत—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से सादि श्रुत चार प्रकार का है ।
द्रव्य से एक पुरुष आश्रित श्रुत की आदि है । जहां सम्यक्त्व पाता है, वहां से आदि है । **क्षेत्र से** पांच भरत व पांच ऐरावत की अपेक्षा से आदि है क्योंकि वहां प्रथम तीर्थंकर के उपदेश से श्रुत प्रकट होता है ।

काल से—अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे के अंत में वे उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे से प्रारंभ होता है, अतः इस अपेक्षा से आदि है । भाव अर्थात् उपयोग । जब श्रुत में उपयोग देते हैं, तब उसकी आदि कही जाती है ।

(36)

	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
8 सपर्य- वसित श्रुत	एक पुरुष की अपेक्षा से सम्यक्त्व का वमन करने पर अथवा केवलज्ञान पाने पर श्रुत का अंत ।	पांच भरत व पांच ऐरावत में जिन शासन का विच्छेद होने की अपेक्षा से श्रुत का अंत	अवसर्पिणी काल में पांचवें आरे के अंत में व उत्सर्पिणी काल में चौथे आरे के अंत में	जब उपयोग नहीं हो, तब श्रुत का अंत ।
9 अनादि श्रुत	अनेक पुरुषों की अपेक्षा अनादि श्रुत समझें ।	विदेह की अपेक्षा से अनादि सर्वाद्धा तीर्थ	नोअवसर्पिणी, नो उत्सर्पिणी की अपेक्षा से ।	क्षयोपशम भाव की अपेक्षा से प्रवाह से अनादि ।
10 अनंत श्रुत	सर्व पुरुष की अपेक्षा से श्रुत का कभी अंत नहीं ।	सर्वक्षेत्र की अपेक्षा से श्रुत का कभी अंत नहीं ।	नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी की अपेक्षा से श्रुत का अंत नहीं	क्षमोपशम भाव की अपेक्षा के श्रुत का अंत नहीं ।

8. गमिक श्रुत—एक सदृश सूत्र किंतु विशेष निमित्त से जिसका बारबार उच्चारण हो उसे गमिक श्रुत कहते हैं। उसे बहुलता से दृष्टिवाद समझना चाहिये।

9. अगमिक श्रुत—गमिक से विपरीत अगमिक श्रुत कहलाता है। आचारांग आदि कालिक श्रुत अगमिक श्रुत है।

10. अंग प्रविष्ट श्रुत—द्वादशांगी श्रुत अंग प्रविष्ट है।

11. अनंग प्रविष्ट श्रुत—इसके दो भेद हैं—

(1) जो अवश्य किये जाते हैं वे आवश्यक-सामायिक आदि छ अध्ययन।

(2) आवश्यक से अतिरिक्त-इसके भी दो भेद हैं—

(3) कालिक-दिन-रात के पहले व अंतिम प्रहर में जो पढ़े जाते हैं वे कालिक कहलाते हैं—

उत्तराध्ययन आदि (नंदी से जान लें)

(2) उत्कालिक-दशवैकालिक आदि।

इन चौदह भेदों में लौकिक-लोकोत्तर भेद समझ लेने चाहिये।

(37) श्रुत ज्ञान ग्रहण करने की विधि

सुस्सूसइ	पडिपुच्छइ	सुणइ	गिण्हइ	ईहए	अपोहइ	धारेइ	करेइ
सिद्धांत (सूत्र) लेने की इच्छा वाले शिष्य को सर्व प्रथम एकाग्रचित से गुरु के मुख से निकले हुए वचन को श्रवण की इच्छा।	संदेह होने पर विनय पूर्वक नमन कर पुनः पूछे।	गुरु द्वारा संदेह का समाधान करने पर उन्हें अच्छी तरह से सावधान होकर सुने।	गुरु ने संदेह का जो अर्थ कहा हो उसे अच्छी तरह से ग्रहण कर रखें।	उस अर्थ को पूर्वापर विरोध दूर कर हृदय में विचार करें।	उस अर्थ का विचार कर फिर निश्चय करे कि यह बात ऐसी ही है।	फिर उस अर्थ को हृदय में धारण कर रखे, किंतु भूले नहीं।	फिर जो अनुष्ठान जिस विधि से कहा हो उस विधि से करे।

(38) सात प्रकार से शास्त्र श्रवण की विधि

मूअ	हुंकार	बाढक्कार	पडिपुच्छ	विमंसा	पसंगपराय	परीयण ठिय
प्रथम जब शिष्य गुरु के पास अर्थ सुने तब विनय पूर्वक शरीर संकुचित कर मौन रखें ।	दूसरी बार अर्थ सुनने पर मस्तक झुकाकर हुंकार दें ।	तीसरी बार स्पष्ट बोले- हे भगवन् ! यह बात ऐसी ही है अन्यथा नहीं ।	चौथी बार संदेह उठने पर प्रश्न करें ।	पांचवीं बार उस अर्थ को हृदय में सोचें ।	छठी बार अर्थ को पार करें ।	सातवीं बार गुरु की तरह शिष्य अर्थ कहें ।

गुरु शिष्य को सिद्धांत का अर्थ किस प्रकार कहें ?

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ ।

तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगो♦

अर्थ—सर्व प्रथम गुरु सूत्र के अक्षरार्थ मात्र अच्छी तरह से कहे किंतु विशेष न कहे ।

प्रश्न—ऐसा क्यों ?

उत्तर—पहले से ही विशेष कह देने पर शिष्य की बुद्धि मूढ़ हो जाती है, वह कुछ भी समझे नहीं । फिर दूसरी बार अर्थ जानने के बाद निर्युक्ति सहित सूत्र विशेष का व्याख्यान करे ।

वे अच्छी तरह से जान लेने पर तीसरी बार गुरु शिष्य को उस सूत्र में रहे संपूर्ण विशेषों को और सूत्र में नहीं कहे गए गम्य शेष आदि सब समझाना चाहिये । इसे सिद्धांत को अनुयोग पूर्वक अर्थ कहने की विधि समझनी चाहिये ।

अवधि ज्ञान का स्वरूप

अवधि ज्ञान के असंख्य-अनंत भेद हैं । इन सब का स्वरूप नहीं लिखा है । इस कारण अवधि ज्ञान का चौदह भेद से निक्षेप कहता हूं और पंद्रहवें द्वार में ऋद्धि प्राप्त-लब्धिवंत कहूंगा और उसके लिए कुछ लब्धियों का स्वरूप कहूंगा ।

अवधि ज्ञान के चौदह द्वार

1. अवधि—अवधि ज्ञान के प्रथम द्वार में नाम आदि भेद से कथन करना ।

2. क्षेत्र परिमाण—अवधि ज्ञान का क्षेत्र परिमाण कहना ।

♦ सूत्रार्थ : खलु प्रथमो, द्वितीयो निर्युक्ति-मिश्रको भणितः । तृतीयश्च निरवशेष एष विधिर्भवत्यनुयोगः ।

3. **संस्थान**—अवधि ज्ञान का संस्थान-आकार विशेष कहना ।
4. **अनुगामी**—आंख की तरह जो अवधि ज्ञान मालिक के साथ चले, वह अनुगामी कहलाता है और जो मालिक के साथ न जाए वह अननुगामी ।
5. **अवस्थित**—जितना अवधि ज्ञान उत्पन्न हुआ हो, उतना ही रहे अर्थात् वृद्धि-हानि न हो वह अवस्थित कहलाता है ।
6. **चल**—परिणाम विशेष से जिसमें हानि-वृद्धि होती हो, उसे चल अवधि कहते हैं ।
7. **तीव्रमंद्र**—कुछ अवधि स्पष्ट होता है वह तीव्र और जो अस्पष्ट हो वह मंद कहलाता है ।
8. **प्रतिपाति**—अवधि का उत्पन्न होना-नष्ट होना प्रतिपाति कहलाता है ।
9. **ज्ञान**—ज्ञान द्वार में प्रशंसा करना ।
10. **दर्शन**—दर्शन द्वार में प्रशंसा करना ।
11. **विभंग**—मिथ्यात्वी का अवधि ज्ञान विभंग ज्ञान कहलाता है ।
12. **देश**—अवधि देश (अंश) व सर्व से उत्पन्न होता है ।
13. **क्षेत्र**—क्षेत्र के विषय में संबद्ध अर्थात् एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र से संबंधित, असंबद्ध अर्थात् जिसमें दो क्षेत्रों के बीच में अंतराल पड़ जाय ।
14. **गति**—गड़दियकाए-मति ज्ञान की तरह बीस द्वार ।
15. **ऋद्धि प्राप्त**—लब्धि का स्वरूप ।

(39) अवधिज्ञान का नाम द्वार में नामादि छ प्रकार

नाम अवधि	स्थापना अवधि	द्रव्य अवधि	क्षेत्र अवधि	काल अवधि	भव अवधि	भाव अवधि
जीव अथवा अजीव का 'अवधि' नाम देना वह 'नाम अवधि' अथवा 'अवधि' ऐसा जो नाम वह 'नाम अवधि' कहलाता हैं ।	अवधि ज्ञान ने जो द्रव्य अथवा क्षेत्र देखा हो, उसका आकार अथवा अवधि ज्ञानी पुरुष के आकार की स्थापना करना-उसे स्थापना अवधि कहते हैं ।	अवधि ज्ञानी जिस समय असावधान हो तथा उपयोग रहित अवधि शब्द का उच्चारण वह द्रव्य अवधि कहलाता है ।	जिस क्षेत्र में रहकर अवधिज्ञान से वस्तु को देखें, वह क्षेत्र अवधि कहलाता है ।	जिस काल में अवधि उत्पन्न हुआ हो वह काल अवधि अथवा जिस काल में अवधि का व्याख्यान करे वह काल अवधि कहलाता है ।	नारकी के भव में अथवा देवता के भव में जो अवधि-ज्ञान उत्पन्न हो, वह भव अवधि कहलाता है ।	क्षयोपशम आदि भाव से जो अवधि ज्ञान उत्पन्न हो वह भाव अवधि अथवा जिस द्रव्य के पर्याय को भाव कहे, उस भाव के आश्रित अवधि को भाव अवधि कहते हैं ।

क्षेत्र परिमाण द्वार—अवधि ज्ञान का क्षेत्र जघन्य से बताते हैं—सूक्ष्म निगोद का जीव जो तीन समय का है, उसके शरीर की अवगाहना प्रमाण जघन्य क्षेत्र ।

उदा.—1000 योजन शरीरधारी मत्स्य अपने ही शरीर के ऊपर लगी निगाद में उत्पन्न हो, पहले समय में (प्राण छोड़ने के बाद) घन-शरीर (कडाह) प्रमाण आत्म प्रदेशों का संहरण कर प्रतर करे । दूसरे समय में प्रतर का संहरण कर सूचि (मात्र एक आकाश प्रदेश मोटाई और एक आत्म प्रदेश चौथाई) 1000 योजन लंबी करे । तीसरे समय में सूचि का भी संहरण कर अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण सूक्ष्म रूप कर निगोद में उत्पन्न हो उतना जघन्य क्षेत्र अवधि का जाने ।

अवधि ज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र—श्री अजितनाथ प्रभु के समय में पंद्रह कर्मभूमि में उत्कृष्ट से सबसे अधिक मनुष्य हुए । अग्नि का प्रारंभ मनुष्य ही करते हैं, अतः बादर अग्नि के जीव भी बहुत हुए । वे बादर और सूक्ष्म अग्नि के जीवों की श्रेणी करे तो वह श्रेणी संपूर्ण लोक में फैलकर अलोक में भी लोक जैसे असंख्य खंड जितनी लंबी हो जाय । उस श्रेणी को अवधिज्ञानी के शरीर को लगाकर चारों ओर फैलाया जाय तो उसी श्रेणी के चारों ओर असंख्य राजलोक प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श हो जाय, परम अवधि ज्ञानी उत्कृष्ट से इतने क्षेत्र को देखता है । अलोक में देखने योग्य वस्तु नहीं है, फिर भी उसकी इतनी शक्ति है, यदि वहां वस्तु होती तो अवश्य देख सकता ।

(40) अवधिज्ञान—क्षेत्र वृद्धि से काल वृद्धि व काल की वृद्धि से क्षेत्र की वृद्धि

	क्षेत्र से जाने		वह काल से कितना जाने ?
1.	अंगुल का असंख्यातवां भाग	1.	आवलिका का असंख्यातवां भाग
2.	अंगुल का संख्यातवां भाग	2.	आवलिका का संख्यातवां भाग
3.	एक अंगुल प्रमाण क्षेत्र	3.	कुछ न्यून एक आवलिका
4.	पृथक् अंगुल क्षेत्र	4.	एक आवलिका पूर्ण
5.	एक हाथ क्षेत्र	5.	अन्तर्मुहूर्त की बात
6.	एक कोश क्षेत्र	6.	कुछ न्यून एक दिन
7.	एक योजन क्षेत्र	7.	दिवस पृथक्त्व (1 से 9 दिन)
8.	25 योजन क्षेत्र	8.	कुछ न्यून एक पक्ष
9.	भरत क्षेत्र प्रमाण	9.	काल से आधा मास
10.	जंबूद्वीप प्रमाण	10.	एक मास
11.	ढाई द्वीप प्रमाण	11.	एक वर्ष
12.	तेरहवां रुचक द्वीप	12.	पृथक् वर्ष
13.	संख्य द्वीप	13.	संख्यात काल
14.	संख्य व असंख्य द्वीप	14.	असंख्य काल

संख्यात योजन परिणाम द्वीप व समुद्र असंख्य देखते हैं और असंख्य योजन परिमाण द्वीप-समुद्र संख्यात देखते हैं ।

(41) द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की वृद्धि में किसकी वृद्धि होती है व किसकी वृद्धि नहीं ?

काल वृद्धि	क्षेत्र वृद्धि	द्रव्य वृद्धि	पर्याय वृद्धि
1. द्रव्य वृद्धि	क्षेत्र-काल भजना	काल भजना	काल भजना
2. क्षेत्र वृद्धि	द्रव्य वृद्धि	क्षेत्र भजना	क्षेत्र भजना
3. भाव वृद्धि	भाव वृद्धि	पर्याय वृद्धि	द्रव्य वृद्धि

भावार्थ—जब काल आश्रित अवधि ज्ञान की वृद्धि होती है तब क्षेत्र, द्रव्य व पर्याय ये तीनों बढ़ते हैं और क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की भजना अर्थात् वृद्धि हो भी व न.भी हो ।
ऐसा क्यों ?

क्षेत्र अति सूक्ष्म है और काल स्थूल । इस कारण अधिक क्षेत्र बड़े तो काल बढ़ता है और थोड़ा क्षेत्र बड़े तो काल कुछ भी नहीं बढ़ता है ।

क्षेत्र की वृद्धि हो तो द्रव्य और पर्याय अवश्य पढ़ते हैं । ऐसा क्यों ? क्षेत्र से द्रव्य अति सूक्ष्म है । एक आकाश प्रदेश क्षेत्र में अनंत द्रव्य समा सकते हैं ।

द्रव्य से पर्याय अति सूक्ष्म है । ऐसा क्यों ?

एक द्रव्य में पीत-रक्त आदि अनंत पर्याय हैं, इस कारण क्षेत्र बढ़ने पर द्रव्य-पर्याय दोनों बढ़ते हैं । तथा द्रव्य व पर्याय बढ़ने पर क्षेत्र-काल की वृद्धि की भजना है ।

द्रव्य और पर्याय सूक्ष्म है और क्षेत्र-काल बड़े हैं, इस कारण बड़े भी और नहीं भी बढ़ें । द्रव्य की वृद्धि होने पर पर्याय अवश्य बढ़ता है और पर्याय के बढ़ने पर द्रव्य की वृद्धि वैकल्पिक है ।

अब काल से क्षेत्र सूक्ष्म है, वह कितने भाग में सूक्ष्म है ? वह कहते हैं ।

प्रथम तो काल सूक्ष्म है । एक चुटकी बजाते ही असंख्य समय बीत जाता है । इसकी अपेक्षा क्षेत्र असंख्य गुणा सूक्ष्म है । एक अंगुल मात्र क्षेत्र में जितने आकाश प्रदेश हैं, उन्हें प्रति समय एक-एक बाहर निकाला जाय तो असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल हो जाता है ।

क्षेत्र से द्रव्य अनेक गुणा सूक्ष्म है । एक-एक प्रदेश में अनंत द्रव्य हैं । द्रव्य से पर्याय अनंत गुणा सूक्ष्म है, क्योंकि एक-एक द्रव्य में अनंत पर्याय हैं ।

अवधि ज्ञान होने पर सबसे पहले कौन-सा द्रव्य देखते हैं ? वह कहते हैं ।

जिस पुरुष को अवधि ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सबसे पहले तैजस शरीर योग्य जो द्रव्य है और भाषा योग्य जो द्रव्य है, उन दोनों के बीच जो अयोग्य द्रव्य है । वह द्रव्य कैसा

है ? कुछ भारी और कुछ हल्का, उसे गुरुलघु कहते हैं और जो द्रव्य भारी भी नहीं और हल्का भी नहीं उसे अगुरुलघु कहते हैं । जघन्य अवधि ज्ञानी गुरुलघु और अगुरुलघु इन दोनों को देखता है । तैजस शरीर के समीप है वह गुरुलघु और भाषा द्रव्य के समीप है वह अगुरुलघु है ।

वर्गणाओं का स्वरूप

1. द्रव्य वर्गणा 2. क्षेत्र वर्गणा 3. काल वर्गणा 4. भाव वर्गणा 5. औदारिक अयोग्य वर्गणा 6. औदारिक योग्य वर्गणा 7. उभय अयोग्य वर्गणा 8. वैक्रिय योग्य वर्गणा 9. उभय अयोग्य वर्गणा 10. आहारक योग्य वर्गणा 11. उभय अयोग्य वर्गणा 12. तैजस योग्य वर्गणा 13. उभय अयोग्य वर्गणा 14. भाषा योग्य वर्गणा 15. उभय अयोग्य वर्गणा 16. आन प्राण योग्य वर्गणा 17. उभय अयोग्य वर्गणा 18. मनयोग्य वर्गणा 19. उभय अयोग्य वर्गणा 20. कर्म योग्य वर्गणा 21. ध्रुव वर्गणा 22. योग्य ध्रुव वर्गणा 23. अयोग्य ध्रुव वर्गणा 24. अध्रुव वर्गणा 25. शून्यतर वर्गणा 26. अशून्यतर वर्गणा 27. ध्रुवानंतर वर्गणा 28. तनु वर्गणा 29. मिश्रस्कंध 30. अचित महास्कंध ।

वर्गणा स्वरूप—

यह लोक समस्त अलोक तक पुद्गलों से भरा हुआ है । वे पुद्गल कौन-कौन से हैं ? पुद्गल की भिन्न-भिन्न वर्गणाएं हैं । एक समान द्रव्य (पुद्गल) के समूह को वर्गणा कहते हैं । वह वर्गणा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से चार प्रकार की होती है । कैसे ?

1. द्रव्य वर्गणा—एक-एक स्वतंत्र परमाणु जितने हैं, उनकी एक वर्गणा समझनी चाहिये । दो-दो परमाणु मिले हों, उनकी दूसरी वर्गणा समझनी चाहिये । इस प्रकार तीन-तीन परमाणुओं की तीसरी वर्गणा, चार-चार परमाणुओं की चोथी वर्गणा । इस प्रकार संख्य, असंख्य व अनंत परमाणुओं की भिन्न-भिन्न वर्गणा समझनी चाहिये । इस प्रकार द्रव्य वर्गणा अनंत होती है ।

2. क्षेत्र वर्गणा—परमाणु अथवा स्कंध एक आकाश प्रदेश में जितने रहे हों उन सब की एक वर्गणा होती है । इस प्रकार दो आकाश प्रदेश में रहे हों उनकी दूसरी वर्गणा । इस प्रकार असंख्य प्रदेश तक की समझें । इस प्रकार क्षेत्र आश्रित भिन्न-भिन्न वर्गणायें असंख्य हुई ।

3. काल वर्गणा—एक समय की स्थिति वाले एक परमाणु, दो परमाणु, तीन-चार परमाणु, संख्य, असंख्य व अनंत परमाणुओं की एक वर्गणा होती है, इस प्रकार दो समय की स्थिति वालों की दूसरी वर्गणा । इसी प्रकार असंख्य समय स्थिति तक की असंख्य वर्गणायें समझ लेनी चाहिए ।

4. भाव वर्गणा—परमाणु के श्याम, श्वेत, पीत आदि भिन्न-भिन्न वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से जो परमाणु अलग-अलग हों, उन सब की अलग-अलग वर्गणा समझनी चाहिये । ऐसी वर्गणायें अनंत होती हैं ।

5. औदारिक अयोग्य वर्गणा—कई पुद्गल स्कंध अल्प परमाणु और बादर परिणाम वाले होते हैं, वे औदारिक शरीर के अयोग्य हैं, उनकी वर्गणा औदारिक अयोग्य वर्गणा कहलाती है ।

6. औदारिक योग्य वर्गणा—औदारिक अयोग्य वर्गणा से अधिकतर पुद्गल स्कंधों की वर्गणा औदारिक शरीर परिणामन के योग्य होती है, उसे औदारिक योग्य वर्गणा कहते हैं ।

7. उभय अयोग्य वर्गणा—औदारिक अयोग्य वर्गणा से अधिक पुद्गलमय स्कंध सूक्ष्म परिणामी होने से औदारिक शरीर योग्य नहीं होती है और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा अल्प परमाणु वाली बादर परिणाम वाली होने से वैक्रिय शरीर के काम नहीं लगती है, अतः उभय अयोग्य वर्गणा है ।

इसी प्रकार कर्म योग्य वर्गणा तक तीन-तीन वर्गणा समझनी चाहिये एक अयोग्य, दूसरी योग्य और तीसरी उभय अयोग्य । इस प्रकार 20 वर्गणाएं होती हैं ।

21. ध्रुव वर्गणा—कर्म वर्गणा से अधिक पुद्गलमय एक से अनंत परमाणु की वृद्धि रूप अनंत परमाणु वाली ध्रुव वर्गणा है । यह वर्गणा चौदह राजलोक में सदैव होती है, इस कारण इसे ध्रुव वर्गणा कहते हैं । एक-एक परमाणु की वृद्धि रूप यह वर्गणा भी अनंत होती है ।

22. योग्य ध्रुव वर्गणा—औदारिक आदि वर्गणाएं जगत् में सदैव विद्यमान होती है, अतः उसका नाम योग्य ध्रुव वर्गणा है ।

23. अयोग्य ध्रुव वर्गणा—21वीं ध्रुव वर्गणा अति सूक्ष्म परिणाम वाली व बहुद्रव्य वाली होने से औदारिक आदि शरीर के योग्य नहीं होती है, अतः उसे अयोग्य ध्रुव वर्गणा कहते हैं ।

24. अध्रुव वर्गणा—ध्रुव वर्गणा से अधिक पुद्गलमय वाली एक अध्रुव वर्गणा है, यह पुद्गल द्रव्य चौदह राजलोक में कभी होता है, कभी नहीं होता है, अतः उसकी वर्गणा को अध्रुव वर्गणा कहते हैं यह भी एक-एक परमाणु की वृद्धि से अनंत समझनी चाहिये । यह भी सूक्ष्म और बहुद्रव्य वाली होने से औदारिक आदि शरीर के योग्य नहीं होती है ।

25. शून्यतर वर्गणा—अध्रुव वर्गणा से अधिक पुद्गल (परमाणु) मय शून्यतर वर्गणा है । प्रश्न-शून्यतर किसे कहते हैं ?

जवाब-एक परमाणु, दो परमाणु, तीन परमाणु इस प्रकार एक-एक परमाणु कर वर्गणा बढ़ती हुई जब अनंत परमाणु की वर्गणा आती है, उस वर्गणा की वृद्धि के बीच में एकोत्तर वृद्धि की हानी होती है और फिर पांच-सात परमाणु तक एकोत्तर वृद्धि से बढ़ती है और फिर बीच में एकोत्तर वृद्धि की हानि होती है-इस प्रकार एकोत्तर वृद्धि की अपेक्षा से बीच में शून्य होती है, इस कारण इसे 'शून्यतर वर्गणा' कहते हैं । यह वर्गणा भी अनंत है ।

26. अशून्यतर वर्गणा—शून्यतर वर्गणा से अधिक पुद्गल (परमाणु) वाली शून्यतर वर्गणा है । इस वर्गणा में एक-एक परमाणु की वृद्धि की अपेक्षा से बीच में शून्य नहीं पड़ता है, अतः इसे अशून्यतर वर्गणा कहते हैं । यह भी औदारिक आदि शरीर के योग्य नहीं होती है ।

27. ध्रुवानंतर वर्गणा—उससे अधिक पुद्गलमय चार प्रकार से ध्रुवानंतर वर्गणा है । यह जगत् में सदैव मिलती है इस कारण ध्रुव और प्रारंभ के बाद एक-एक की वृद्धि का अंतर नहीं पडता है, अतः अनंतर-इस प्रकार इसका ध्रुवानंतर नाम हुआ ।

इसके चार बड़े भेद हैं (1) एकोत्तर वृद्धि से अंतर पडे (2) एक बार एकोत्तर वृद्धि से अनंत तक बढे और फिर अंतर पडे । इस प्रकार चारों समझ लेनी चाहिये ।

28. तनु वर्गणा—ध्रुवानंतर से अधिक पुद्गलमय एकोत्तर वृद्धि से बढने वाली चार 'तनु वर्गणा' है । ये भी ध्रुवानंतर वर्गणा की तरह बीच में अंतर पडने से चार प्रकार की समझनी चाहिये । यह वर्गणा औदारिक आदि पांच शरीर के योग्य तो नहीं है किंतु पूर्व के पुद्गल (परमाणुओं) के घटने से व नए पुद्गलों के मिलने से घटती-बढती शरीर की योग्यता के अभिमुख बनी इसी कारण इसे तनु वर्गणा कहते है । इसे भी ध्रुवानंतर वर्गणा की तरह चार भेद वाली समझनी चाहिये ।

29. मिश्र स्कंध—उससे अधिक पुद्गलमय एक मिश्र स्कंध है । यह स्कंध अत्यंत सूक्ष्म है और कुछ बादरपरिणाम वाला है । दोनों परिणाम वाला होने से 'मिश्र स्कंध' कहलाता है ।

30. अचित्त महास्कंध—उससे अधिक पुद्गलमय अचित्त महास्कंध है । वह अनेक पुद्गलों के इकट्ठे होने से ढेर रूप होता है । यह सचित्त महास्कंध विस्रसा परिणाम से केवली संमुद्घात की तरह चौदह राजलोक में व्याप्त हो जाता है और चार समय में घुमकर पुनः अपने स्थान पर आ जाता है । इस प्रकार इसके कुल आठ समय समझने चाहिये । यह स्कंध कभी होता है और कभी नहीं भी होता है ।

प्रश्न—पुद्गल तो सभी अचित्त ही हैं, फिर इसका नाम 'अचित्त स्कंध' क्यों रखा ?

जवाब—केवली जब समुद्घात करते हैं तब जीव के प्रदेश के साथ मिश्र जो कर्म पुद्गल हैं, उसकी तरह जो सर्व लोक में व्याप्त होते हैं, उसे सचित्त कर्म पुद्गल कहते हैं । उसे टालने के लिए अचित्त शब्द कहा गया है ।

औदारिक आदि द्रव्य में गुरुलघु व अगुरुलघु—

(1) औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस ये चार द्रव्य तथा तैजस द्रव्य मे निकट जो द्रव्य है, वह सब द्रव्य बादर परिणामी होने से गुरुलघु हैं ।

(2) कर्मण, मनोद्रव्य, भाषा द्रव्य, आन प्राण द्रव्य और भाषा द्रव्य के समीप का द्रव्य ये सभी सूक्ष्म परिणाम वाले होने से 'अगुरुलघु' कहलाते हैं ।

जघन्य अवधि ज्ञानी ये गुरुलघु द्रव्य जानते व देखते हैं ।

(42) द्रव्य की वृद्धि होने पर क्षेत्र व काल की वृद्धि

द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से
मनो द्रव्य देखते हैं	लोक का संख्यातवां भाग	पत्यापम का संख्यातवां भाग
2 कर्म द्रव्य	" "	" "
3 ध्रुवानन्तर वर्गणा	चौदह राज लोक देखें	कुछ न्यून पत्यापम देखें
4 तैजस, कर्मण शरीर तैजस योग्य व भाषा योग्य वर्गणा देखे ।	असंख्य द्वीप व समुद्र देखें ।	असंख्य काल देखें ।

परमावधि ज्ञानी- परमावधि ज्ञानी उत्कृष्ट से कौन से सूक्ष्म द्रव्य को देखते हैं, उसे कहते हैं । परमावधि ज्ञानी क्षेत्र के एक प्रदेश में रहे परमाणु, द्वयुणक आदि द्रव्य को और कर्मण शरीर को देखता है । कर्मण शरीर नियमा असंख्य प्रदेश में अवगाहन करता है । उत्कृष्ट अवधि ज्ञानी, जगत् में जितने अगुरुलघु द्रव्य हैं, वे सब देखते हैं ।

यदि अवधि ज्ञानी तैजस शरीर को देखे तो काल से नौ भव तक देखता है । वे नौ भव असंख्य काल प्रमाण के समझने चाहिये ।

(43) परमावधि ज्ञानी के क्षेत्र व काल का ज्ञान

द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से	भाव से
सूक्ष्म-बादर सभी रूपी द्रव्य देखता है ।	सर्व लोक	असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल	एक-एक द्रव्य आश्रित संख्यात पर्याय देखे ।

तिर्यच आश्रित अवधि ज्ञानी- अब तिर्यच आश्रित अवधि ज्ञान कहते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यच अवधि ज्ञान से औदारिक, वैक्रिय, आहारक व तैजस से सर्व द्रव्य देखता है और उसके प्रमाण का क्षेत्र, काल और भाव स्वयं समझ लेना चाहिये । यह मनुष्य व तिर्यच संबंधी क्षयोपशम जन्य अवधि ज्ञान कहा है ।

(44) भव-प्रत्यय नारकी-देवता का अवधि ज्ञान-नारकी का अवधि क्षेत्र

विषय	रत्नप्रभा	शर्करा प्रभा	बालुका प्रभा	पंक प्रभा	धूम प्रभा	तम प्रभा	तमतम प्रभा
जघन्य	3 1/2 गाउ	3 गाउ	2 1/2 गाउ	2 गाउ	1 1/2 गाउ	1 गाउ	1/2 गाउ
उत्कृष्ट	4 गाउ	3 1/2 गाउ	3 गाउ	2 1/2 गाउ	2 गाउ	1 1/2 गाउ	1 गाउ

असुर जघन्य से 25 योजन व उत्कृष्ट से असंख्य द्वीप समुद्र ।

नव निकाय व्यंतर जघन्य से 25 योजन व उत्कृष्ट से संख्यात द्वीप ।

ज्योतिषी जघन्य से संख्य द्वीप व उत्कृष्ट से संख्यातर द्वीप ।

सौधर्म- ईशान	3-4 स्वर्ग	5-6 स्वर्ग	7-8 स्वर्ग	9-12 स्वर्ग	6 त्रैवेयक	3 त्रैवेयक	5 अनुत्तर
रत्नप्रभा नीचे का चरम अंत	दूसरी नरक के नीचे का चरम अंत	तीसरी नरक के नीचे का चरम अंत	चौथी नरक के नीचे का चरम अंत	पांचवीं नरक के नीचे का चरम अंत	छठी नरक के नीचे का चरम अंत	सातवीं नरक के नीचे का चरम अंत	कुछ न्यून समस्त लोक

सौधर्म देवलोक से नौ त्रैवेयक तक जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग देख सकते हैं ।

भव प्रत्यय अवधि की अपेक्षा से सभी विमानवासी उंचाई में अपने विमान की ध्वजा तक देख सकते हैं वे तीच्छे द्वीप-समूह देख सकते हैं । असंख्यात के असंख्य भेद हैं ।

(45) आयु आश्रित अवधि ज्ञान

1 अर्ध सागरोपम से कम आयुष्य वाले	उत्कृष्ट से संख्यात योजन प्रमाण
1 अर्ध सागरोपम की आयु वाले देवता	उत्कृष्ट से असंख्यात योजन प्रमाण
1 अर्ध सागरोपम से अधिक आयु वाले	उत्कृष्ट से असंख्यात योजन प्रमाण

(46)

	जघन्य अवधि	उत्कृष्ट अवधि	मध्यम अवधि	अभ्यंतर	बाह्य	देश अवधि	सर्व अवधि
देव-नरक	0	0	अस्ति	अस्ति	—	अस्ति	0
तिर्य्यच	अस्ति	0	अस्ति	0	अस्ति	अस्ति	0
मनुष्य	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति

(47)

	अनुगामी अवधि	अननुगामी अवधि	वर्धमान अवधि	हीय मान	प्रतिपाती	अप्रतिपाती	अवस्थित	अनवस्थित
देव-नरक	अस्ति	0	0	0	0	अस्ति	अस्ति	0
तिर्य्यच	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति
मनुष्य	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति	अस्ति

उत्कृष्ट अवधिज्ञान दो प्रकार का है—(1) प्रतिपाती और (2) अप्रतिपाती ।

जो उत्कृष्ट से चौदह राज लोक प्रमाण में व्याप्त हो किंतु अलोक के एक प्रदेश में भी व्याप्त होने में समर्थ न हो वह अवधि ज्ञान प्रतिपाती कहलाता है और जो अवधि ज्ञान अलोक के एक प्रदेश में भी व्याप्त हो वह अप्रतिपाती कहलाता है ।

3. संस्थान द्वार—जघन्य अवधि ज्ञान का संस्थान पानी के बिंदु समान गोल है और उत्कृष्ट अवधि ज्ञान वर्तुल आकार में होता है परंतु कुछ लंबे आकार का होता है ।

प्रश्न :- ऐसा क्यों ?

शरीर के चारों ओर अग्नि के जीवों की सूची घुमाने जितना अवधि ज्ञान का क्षेत्र कहा है । शरीर का आकार तो वर्तुल नहीं किंतु कुछ लंबा है, इस कारण अवधि ज्ञान का संस्थान वर्तुल व कुछ लंबा है ।

मध्यम अवधि ज्ञान का संस्थान विचित्र प्रकार का है । वह कोष्ठक से जाने ।

(48) नारकी आदि के अवधि का संस्थान

नारकी की अवधि	भवन-पति	मनुष्य तिर्यच	व्यंतर	ज्योतिष	12 देवलोक	9 ग्रैवेयक	5 अनुत्तर
नाव के आकार का 1 जिससे नदी का पानी तैरा जाय उस नाव के समान संस्थान	धान्य भरने का	असंख्य भेद वाले नाना प्रकार के संस्थान	पडह के समान जो बीच में मोटा और दोनों ओर समतल होता है ।	झालर जैसा संस्थान	मृदंग आकार एक ओर चौड़ा तथा दूसरी ओर संकरा	फूल की चंगेरी (टोकरी) के समान	छोटे बालक के सिर पर जो पहनावा रहता है उस आकार का ।

भवनपति व्यंतर का अवधि ज्ञान उंचाई में अधिक देवता (वैमानिक) को नीचे अधिक, नारकी व ज्योतिषी को तिच्छा अधिक, मनुष्य व तिर्यच को उंचाई में भी हो और निचाई में भी हो, थोड़ा भी हो व ज्यादा भी हो । इस कारण विचित्र कहे गए हैं ।

4. अनुगामी द्वार – अवधि ज्ञान दो प्रकार का है—1. अनुगामिक 2. अननुगामी ।

जिस पुरुष को अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ हो उस पुरुष के साथ ही अवधि ज्ञान चले परंतु अलग न हो । जैसे-हाथ में रहा दीपक जहां जाए वहां साथ ही चलता है, उसी प्रकार जो अवधि ज्ञान पुरुष के साथ ही चले वह अनुगामिक और जो अवधि ज्ञान पुरुष जिस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ हो, उसी क्षेत्र में रहे परन्तु पुरुष के साथ अन्य क्षेत्र में न जाए ।

जैसे-श्रृंखला से बंधा हुआ दीपक जहां है, वहीं रहता है । वैसे ही वह अवधि ज्ञान जिस क्षेत्र में उत्पन्न हुआ हो, वहीं पर प्रकाश करे, पुरुष के चलने पर साथ नहीं चलता हो और पुरुष घूमकर वापस उसी क्षेत्र में आए तब वह अवधि ज्ञान पुनः हो जाता है, वह

अननुगामिक अवधि ज्ञान कहलाता है । अब उसका स्वरूप लिखते हैं:- 1. अनुगामी, 2. अननुगामी, 3. मिश्र ।

मिश्र किसे कहते हैं ?

जो अवधि ज्ञान एक दिशा का तो उसी क्षेत्र में रहता हो और दूसरी दिशा का साथ चलता हो वह मिश्र अवधि ज्ञान कहलाता है । घूमकर उसी क्षेत्र में आए तो चारों ओर पुनः देखने लगता है । यह अवधि ज्ञान मनुष्य व तिर्यच को होता है ।

(49) अवस्थित द्वार

स्थिति	क्षेत्र आश्रित स्थिति	उपयोग आश्रित स्थिति	गुण आश्रित स्थिति	पर्याय आश्रित स्थिति	लब्धि आश्रित स्थिति
अवधि ज्ञान की पांचों प्रकार से	अनुत्तर विमान के देवता आश्रित 33 सागरोपम	एक द्रव्य में अन्तर्मुहूर्त से अधिक उपयोग नहीं रहता है ।	गुण में आठ समय से अधिक उपयोग नहीं रहता है ।	पर्याय में सात समय प्रमाण उपयोग रहता है ।	लब्धि आश्रित 66 सागरोपम से कुछ अधिक

6. चल द्वार – जो अवधि ज्ञान घटता भी हो और बढ़ता भी हो उसे चल अवधि ज्ञान कहते हैं । यह छ प्रकार से बढ़ता व छ प्रकार से घटता है ।

(50) हानि-वृद्धि का स्वरूप

संख्या	अनंत भाग	असंख्य भाग	संख्यात भाग	संख्यात गुण	असंख्य गुण	अनंत गुण
अधिक	असत् 100 कल्पना 99	100 98	100 90	100 10	100 2	100 1
हीन	असत् 99 कल्पना 100	98 100	90 100	10 100	2 100	1 100

(51) अवधि ज्ञान की हानि-वृद्धि के प्रकार

संख्या	क्षेत्र आश्रित हानि-वृद्धि	काल आश्रित हानि वृद्धि	द्रव्य आश्रित हानि-वृद्धि	पर्याय आश्रित हानि-वृद्धि
छह प्रकार से हानि	असंख्य भाग हानि-वृद्धि, असंख्य गुणा हानि-वृद्धि	असंख्य भाग हानि-वृद्धि, असंख्य गुणा हानि-वृद्धि	अनंत भाग हानि-वृद्धि अनंत गुणा हानि-वृद्धि	छ प्रकार से हानि-वृद्धि
छ प्रकार से वृद्धि	संख्या भाग हानि-वृद्धि संख्यात गुणा हानि-वृद्धि	संख्या भाग हानि-वृद्धि संख्यात गुणा हानि-वृद्धि	क्योंकि द्रव्य अधिक घटते-बढ़ते हैं ।	

7. तीव्र-मंद द्वार— फाडा अर्थात् कुछ अवधि ज्ञान स्पर्धक रूप क्षयोपशम होने से कुछ देखता है और बीच में कुछ नहीं देखता है और कुछ अंतर से आगे पुनः देखता है। स्पर्धक अर्थात् खिड़की आदि द्वारा दीपक की बाहर निकलती हुई प्रभा की तरह अवधि ज्ञान की प्रभा से जो नियत ज्ञान हो, ऐसे स्पर्धक एक जीव को संख्यात् यावत् असंख्य भी होते हैं। ये बड़े विचित्र होते हैं।

कोई पर्यंतवर्ती आत्म प्रदेशों में, कोई आगे के कोई पीछे, कोई नीचे के कोई ऊपर के और कोई मध्यवर्ती आत्मप्रदेशों में क्षयोपशम रूप प्रगट होते हैं। यद्यपि सभी आत्मप्रदेशों में क्षयोपशम एक रूप होता है, फिर भी औदारिक शरीर की अपेक्षा से आगे पीछे ऊपर-नीचे आदि विभाग समझने चाहिये, क्योंकि देशादि की अपेक्षा से क्षयोपशम की विचित्रता होती है।

एक जीव को अवधि ज्ञान के फाड़े संख्याता व असंख्याता भी हो सकते हैं किंतु जीव जब एक फाडा देखता है, तब सभी फाड़े देखता है, क्योंकि जीव का उपयोग एक ही होता है। एक समय में दो उपयोग नहीं होते हैं, इस कारण सर्व फाड़े में एक बार एक ही उपयोग समझना चाहिये।

ये फाड़े तीन प्रकार के हैं—(1) अनुगामिक (2) अननुगामिक और (3) मिश्र। तीनों का अर्थ ऊपर की तरह समझना चाहिये। वे फाड़े पुनः तीन भेद वाले हैं (1) कुछ प्रतिपाती हैं (2) कुछ अप्रतिपाती हैं और (3) कुछ मिश्र हैं।

जो अवधि ज्ञान उत्पन्न होकर फाडा रूप कुछ काल रह कर नष्ट हो जाता हो वह फाडा प्रतिपाती कहलाता है।

(2) जो नष्ट नहीं होता वह अप्रतिपाती कहलाता है और कुछ फाड़े प्रतिपाती और अप्रतिपाती हों, वे मिश्र कहलाते हैं।

यह अवधि मनुष्य, तिर्यच को होता है, किंतु देव, नारक को नहीं होता है।

अनुगामी अप्रतिपाती फाडारूप अवधिज्ञान तीव्र स्पष्ट परिणाम से उत्पन्न हो वह फाडा 'तीव्र' कहलाता है और अननुगामी प्रतिपाती फाडा रूप अवधि मंद परिणाम रूप से पैदा होने के कारण मंद कहलाता है। इति तीव्र-मंद द्वार।

8. प्रतिपाती द्वार—अवधि ज्ञान की एक समय में उत्पत्ति और विनाश कहते हैं। जो अवधि ज्ञान जीव को एक दिशा में उत्पन्न होता हो उसे 'बाह्य' अवधि ज्ञान कहते हैं अथवा जो जीव के चारों ओर से फाड़े-रूप अवधि होता है उसे आभ्यन्तर अवधि ज्ञान कहते हैं, उस बाह्य अवधि की उत्पत्ति और विनाश ये दोनों द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से एक समय में होते हैं।

दावानल के दृष्टान्त से द्रव्य आश्रित वह बाह्य अवधि एक समय में उत्पन्न भी होता है और नष्ट भी होता है। जैसे दावानल एक ओर शांत होता है और दूसरी ओर बढ़ता है, उसी प्रकार कुछ अवधि एक ओर नया उत्पन्न होता है और दूसरी ओर पूर्व का अवधि ज्ञान नष्ट हो जाता है, इस कारण कभी एक समय में दोनों बातें भी होती हैं।

कुछ अवधि ज्ञान जीव के शरीर की अपेक्षा से चारों ओर प्रकाश करता है, उस शरीर के बीच कहीं भी अंतर नहीं होता है, उसे आभ्यंतर अवधि कहते हैं। जैसे दीपक की कांति दीपक में भिन्न नहीं है और चारों ओर प्रकाश करती है उसी प्रकार जो अवधि दीप के प्रकाश के समान होता है उसे आभ्यंतर अवधि ज्ञान कहते हैं, उस अवधि ज्ञान का उत्पाद और विनाश एक समय में नहीं होता है, एक समय में एक ही बात होती है। जिस प्रकार दीपक की उत्पत्ति एक समय में और उसका विनाश अन्य समय में होता है, उसी प्रकार आभ्यंतर अवधि ज्ञान में एक समय में एक ही बात होती है।

अब अवधि ज्ञान से जब एक द्रव्य देखता है, तब कितने पर्याय देखता है, यह बात कहते हैं-जब अवधि ज्ञान से एक द्रव्य परमाणु देखता है, तब द्रव्य के संख्य व असंख्य पर्याय देखता है। जघन्य से चार पर्याय-रूप, रस, गंध और स्पर्श देखता है।

(52) 9-10-11 ज्ञान, दर्शन और विभंग द्वारा

ज्ञान 1	दर्शन 2	विभंग 3
जो अवधि ज्ञान से विशेष जाने उसे 'साकार ज्ञान' कहते हैं।	जो विशेष न जाने किन्तु सामान्य जानता हो उसे 'अनाकार दर्शन' कहते हैं।	सम्यग्दृष्टि का हो उसे ज्ञान कहते हैं और मिथ्या दृष्टि का हो उसे 'विभंग ज्ञान' कहते हैं।
स्वामी-सम्यग् दृष्टि-मिथ्यादृष्टि	सम्यग् दृष्टि	मिथ्यादृष्टि

भवनपति से लेकर नौ ग्रैवेयक तक के सभी देवताओं का अवधि ज्ञान और विभंग ज्ञान, क्षेत्र और काल की अपेक्षा से समान समझना चाहिये। द्रव्य व पर्याय की अपेक्षा से विशेष है। स्पष्ट ज्ञान के बिना विशेष नहीं जानता है। सम्यग्दृष्टि को स्पष्ट ज्ञान होता है। अनुत्तर विमानवासी देवता को अवधि ज्ञान होता है किन्तु विभंग ज्ञान नहीं।

पांच अनुत्तर विमान वासी देवता को जो अवधि ज्ञान होता है वह क्षेत्र-काल की अपेक्षा से असंख्य विषय वाला होने से असंख्याता होता है और द्रव्य-पर्याय विषय आश्रित वह ज्ञान अनंत कहा जाता है।

12 देश द्वार—अर्थात् नारकी, देवता व तीर्थकर अवधि ज्ञान से सभी दिशाओं को देखते हैं तथा शेष तिर्यच, मनुष्य देश से भी देखते हैं और सर्व से भी देखते हैं। नारकी, देव तथा तीर्थकर को अवधि ज्ञान निश्चय से होता है औरों को भजना है।

13 क्षेत्र की अपेक्षा से अवधि ज्ञान का संख्यात-असंख्यातपणा—जो अवधि ज्ञान जीव के शरीर से संबद्ध हुए दीपक की कांति तरह अलग न हो उसे संबंध अवधि ज्ञान कहते हैं और जो अवधि शरीर से अलग हो वह अवधि असंबद्ध कहलाता है। असंबद्ध अवधि ज्ञानी दूर से तो देखता है किन्तु निकट से नहीं देखता है अर्थात् जीव और अवधि ज्ञान के क्षेत्र के बीच अंतर पड़ता है।

अब जो संबद्ध अवधि ज्ञान है उसका क्षेत्र की अपेक्षा से संख्यात असंख्यात योजन प्रमाण विषय है, उसी प्रकार असंबद्ध अवधि ज्ञान हो उसका भी क्षेत्र की अपेक्षा से इतना ही विषय जानना चाहिये, परंतु उसके स्वामी और अवधि के क्षेत्र के बीच अंतर पडता है।

असंबद्ध अवधि 4	संख्य योजन	संख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन
अंतर-4	संख्यात योजन अंतर	असंख्येय योजन अंतर	संख्येय योजन	असंख्य योजन

इस असंबंध में अवधि के चार भंग हैं।

भंग संख्या	अंतर	प्रकाशित क्षेत्र
1	संख्यात योजन	संख्यात योजन
2	संख्यात योजन	असंख्यात योजन
3	असंख्य योजन	संख्यात योजन
4	असंख्य योजन	असंख्य योजन

संबंध अवधि-आत्मा से प्रकाशित क्षेत्र जुड़ा हुआ हो (1) कोई संख्यात योजन तक प्रकाशित करे (2) कोई असंख्य योजन तक (3) कोई संपूर्ण लोक को अर्थात् छ दिशाओं में लोकान्त तक और (4) अलोक में असंख्य लोक प्रमाण क्षेत्र में पहुंचने के सामर्थ्य वाला।

14 गति द्वार—गति आदि बीस द्वार में यथा संभव मतिज्ञान की तरह विचार करना चाहिये। अवधि लब्धि से अवधि ज्ञान होता है, अतः प्रसंग से शेष लब्धियों का स्वरूप कहते हैं—

28 लब्धियाँ

- 1. आमोसहि**—जिनके शरीर के स्पर्श से सभी रोग जाते हैं।
- 2. विपोसहि**—विट्-प्रसवण अर्थात् मल-मूत्र ही औषधि है।
- 3. खेलोसहि**—जिनका श्लेष्म औषधि रूप है।
- 4. जल्लोसहि**—जिनका मैल भी औषधि है।
- 5. सब्वोसहि**—शरीर के सभी अवयव औषध रूप हैं।
- 6. संभिन्नसोउ**—एक इंद्रिय से सभी इंद्रियों के विषय जान ले।
- 7. ओहि**—जिससे सभी रूपी द्रव्य के विषय जाने, वह अवधि ज्ञान।
- 8. उज्जुमइ**—ढाई अंगुल न्यून मनुष्य क्षेत्र में रहे संज्ञी प्राणियों के मनोगत भावों को जाने।
- 9. विउलमइ**—संपूर्ण मनुष्य क्षेत्र में रहे संज्ञी प्राणी के मनोगत भावों को जाने।
- 10. चारण**—विद्या से विद्या चारण, तप से जंघा चारण-आकाश में उड़े।
- 11. आसीविस**—शाप देने की शक्ति आशीविष लब्धि है।

12. केवली—केवलज्ञान, केवल लब्धि ।

13. गणधर—गणधरत्व को प्राप्त हो वह गणधर लब्धि ।

14. पुव्वधर—पूर्व का ज्ञान हो वह पूर्व लब्धि ।

15. अरिहंत—तीन लोक के पूजित बने, वह तीर्थंकर लब्धि ।

16. चक्कवट्ठी—चक्रवर्तीत्व को प्राप्त हो वह चक्रवर्ती लब्धि ।

17. बलदेव—बलदेवत्व को प्राप्त हो वह बलदेव लब्धि ।

18. वासुदेव—वासुदेवत्व को प्राप्त हो वह वासुदेव लब्धि ।

19. खीर-महु-सप्पिरासव—क्षीर-चक्रवर्ती का भोजन, मधु मिश्रित दूध तथा घृत जैसा मीठा वचन ।

20. कोठा बुद्धि—जैसे कोष्ठ में रहा बीज नष्ट नहीं होता है, वैसे ही सूत्र-अर्थ नष्ट न हो ।

21. पयाणुसारी—एक पद के पढ़ने से अनेक पद याद आ जाएं ।

22. बीय बुद्धि—एक पद के पढ़ने से अनेक तरह के अर्थ जान लें ।

23. तेयग—जिस तप विशेष से तेजोलेश्या उत्पन्न हो ।

24. आहारग—चौदह पूर्वधर जिस लब्धि से (शंका पडने पर) आहारक शरीर करे-वह आहारक लब्धि ।

25. सीयलेसाय—जिस तप विशेष से शीत लेश्या उत्पन्न हो ।

26. वेयव्वदेह—अनेक रूप करने की शक्ति ।

27. अक्खीण महाणसी—जब तक स्वयं भोजन न कर ले तब तक आहार कम ही न हो ।

28. पुलाय—चक्रवर्ती आदि के सैन्य को चूर्ण करने की शक्ति ।

अरिहंत, चक्री, वासुदेव, बलदेव, संभिन्नश्रोत, चारण, पूर्वधर, गणधर, पुलाक और आहारक-ये दस लब्धियां भव्य स्त्री को नहीं होती हैं तथा ये दस और केवली, ऋजुमति व विपुलमति ये तेरह लब्धियां अभव्य पुरुष को नहीं होती हैं । ये 13 और मधुक्षीराश्रव लब्धि-ये 14 अभव्य स्त्री को नहीं होती हैं, शेष 14 होती हैं ।

मनःपर्यवज्ञान के दो भेद—ऋजुमति और विपुलमति ।

केवलज्ञान का एक ही भेद है ।

इस प्रकार पांच ज्ञान का स्वरूप संक्षिप्त रूप से लिखा है, विशेष नंदी सूत्र से समझा लेना चाहिये ।

उपमा-प्रमाण असंख्यात के आठ माप

1. पत्योपम का स्वरूप—एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और तीन योजन से कुछ अधिक जिसकी परिधि है (यह योजन प्रमाणांगुल से समझना चाहिये। ऐसे कुएं को बादर पृथ्वी के शरीर तुल्य रोम खंड से इस प्रकार टूंस टूंस कर भर दें कि वह अग्नि से जले नहीं, जल से बहे नहीं और चक्रवर्ती के सैन्य के चलने पर भी जो दबे नहीं, उस कुएं में से प्रत्येक 100-100 वर्ष के बाद एक-एक खंड निकालने पर जब वह कुआँ पूरा खाली हो जाय, उतने काल को पत्योपम कहते हैं।

2. सागरोपम—दस कोटा कोटि कुएं खाली होने पर एक सागरोपम होता है।

3. सूचि-अंगुल—पत्योपम के जितने छेद हों उतने स्थान पर पत्योपम के समय लिखकर उन्हें परस्पर गुणाकार करें। जितने छेद आए वह सूचि अंगुल के प्रदेशों की गिनती है। उसके छेद 65536 / 16 हैं।

4. प्रतर अंगुल-पत्य

समय	छेद
16	4

16 16 16 16 सूचि अंगुल 65536 प्रदेश

सूचि अंगुल का वर्ग, वह प्रतर अंगुल 4294967296, छेद 32

6. लोकाकाश श्रेणि—पत्य के जितने छेद हों उसका असंख्यातवां भाग लें, उतने स्थान पर घन अंगुल के प्रदेश रखकर आपस में गुणाकार करें, जो छेद आए वे लोकाकाश-7922816251426433759354395036, छेद 96.

पत्य	छेद	असंख्य भाग	घन अंगुल	छेद	छेद	लोकाकाश श्रेणी
सम 16	4	2	28147,976,710,656	48	48	छेद 96

7. लोकप्रतर — लोक श्रेणि का वर्ग करें उसे लोक प्रतर कहते हैं। उसके छेद 192 हैं।

8. लोक घन — प्रतर के 192 छेद हैं। उसे श्रेणी छेद 96 से गुणाकार करने पर लोक का घन होता है। उसके छेद 288 हैं। ये सभी असत् कल्पना से है।

प्रकारांतर से श्रेणि करने का उपाय-जघन्य प्रतर असंख्यात को दूगुना करें, उसे पत्योपम की वर्गशलाका का भाग दें, जो बचे उसे घनांगुल की वर्गशलाका में मिला दें, उसे लोकाकाश की श्रेणि की वर्गशलाका कहते हैं। इसकी असत् कल्पना निम्नानुसार है :-

(53)

जघन्य प्रतर संख्या	दूगुना	पत्य की वर्गशलाका	भाग देने पर जो बचे	घनांगुल वर्गशलाका	जोड़ने पर	छठा वर्ग
1	2	2	1	5	6	79228165149643

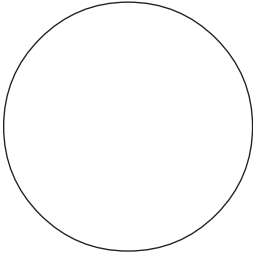
(54) संख्य-असंख्य अनंत का स्वरूप (अनुयोग द्वारा से)

संख्यात	0	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
असंख्यात	पस्ति	"	"	"
	युक्त	"	"	"
	असंख्य	"	"	"
अनंत	पस्ति	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
	युक्त	"	"	"
	अनंत	"	"	"

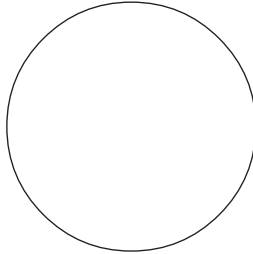
एक का वर्ग भी एक होता है और घन भी एक होता है। एक से जिस राशि का गुणाकार करें वह राशि ज्यों की त्यों रहती है और जिस राशि को एक से भाग दें, वह राशि भी ज्यों की त्यों रहती है। इस कारण से एक को गिनती में नहीं लिया है। इस कारण दो को जघन्य संख्याता कहते हैं। इससे आगे 3, 4, 5 यावत् उत्कृष्ट संख्यात में एक न्यून तक की समस्त संख्या को 'मध्यम संख्याता' कहा जाता है। अब उत्कृष्ट संख्याता कहते हैं—

सरसों 1, यव में 8 अंगुल में 64, हाथ में 1536, दंड में 6144 कोश में 12288000, सूचि योजन में 49152000, प्रतर योजन में 2415919104000000, घन योजन में 118747255799080000000000 ।

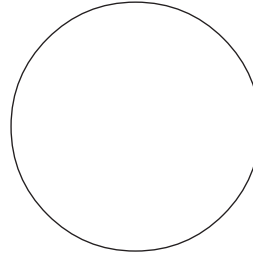
चार प्याले—



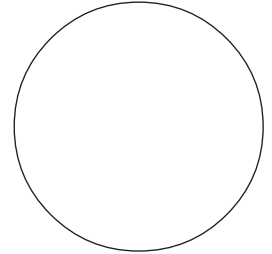
अनवस्थित प्याला



शलाका प्याला



प्रतिशलाका



महाशलाका

जंबू द्वीप प्रमाण लंबे-चौड़े-गोलाकार, एक लाख योजन के विष्कंभ वाले, एक हजार योजन गहरे, आठ योजन ऊंची दिवार व दो गाऊ ऊंची वेदिका सहित चार प्याले लें। उनके नाम (1) अनवस्थित (2) शलाका (3) प्रतिशलाका और (4) महाशलाका हैं। अनवस्थित प्याले का माप हर बार बदलता रहता है, जबकि अन्य प्यालों का माप वही रहता है।

प्याले की रचना-जंबू द्वीप के विष्कंभ समान एक लाख योजन का प्याला, उसका भूमि में अवगाहन 1000 योजन, उस प्याले के तीन कांड में प्रथम कांड 1000 योजन के अवगाहन का, दूसरा कांड आठ योजन की मोटाई का और तीसरा कांड 28748 योजन की शिखा का है। उसका मूल में विष्कंभ और परिधि जंबू द्वीप समान है। उसके ऊपर इस तरह शिखा करें कि अब उसके ऊपर सरसों का एक दाना भी न रहे।

1 संख्या	3 कांड	विष्कंभ	अवगाहन	धन योजन प्रमाण खंड
1.	प्रथम कांड भूमि में	एक लाख योजन मूल	1000 योजन	7905694150 योजन 1॥ कोस व 6 ॥ हाथ को एक हजार से गुणा करने पर 7905694150439 योजन 1 कोस 1625 धनुष प्रमाण घन योजन के खंड होते हैं ।
2.	दूसरा कांड भूमि से ऊपर वेदिका तक	एक लाख योजन मूल	8 योजन	7905694150 योजन 1॥ कोस 62 ॥ हाथ को एक हजार से गुणा करने पर 63245553203 योजन 2 कोस 125 धनुष-इतने घन योजन प्रमाण खंड होते हैं ।
3.	तीसरा कांड वेदिका से ऊपर शिखा तक	एक लाख योजन मूल	28748 योजन	2777711616 योजन परिधि

अब इन तीनों कांडों के घन योजन मिलाने पर चौदह अंक-87822593240410 होते हैं, ये सब प्याले के घन योजन होते हैं । एक घन योजन में 118747255799808000,000,000 सरसों से गुणा करने पर अड़तीस अंक आते हैं, उतने-1042869194452145522897584 1280000000000 सरसों एक प्याले में समझना चाहिये ।

सर्व प्रथम अनवस्थित प्याले को सरसों के दानों से इस प्रकार भर दें कि अब उसमें एक भी दाना अधिक न रह सके । तत्पश्चात् असत् कल्पना से उस प्याले को उठाकर उस प्याले में से कोई व्यक्ति एक दाना एक द्वीप में और एक दाना एक समुद्र में, इस प्रकार आगे आगे के द्वीप समुद्रों में डालता ही जाय । जिस द्वीप या समुद्र के पास वह प्याला खाली हो जाय, वहां उस द्वीप अथवा समुद्र के विस्तार वाला, एक हजार योजन गहराई वाला तथा वेदिका सहित प्रमाण वाले प्याले की कल्पना की जाए और उसे सरसों के दानों से एकदम शिखा सहित भर दिया जाए और उस समय अन्य एक दाना 'शलाका' नामक दूसरे प्याले में डाला जाए ।

तत्पश्चात् पुनः उस अनवस्थित प्याले को उठाकर उसमें से एक दाना एकद्वीप में और एक दाना एक समुद्र में इस प्रकार क्रमशः डालते ही जाएं । जब वह प्याला जिस द्वीप अथवा समुद्र के पास संपूर्ण खाली हो जाय, वहां उस द्वीप अथवा समुद्र प्रमाण, एक हजार गहराई वाला व वेदिका सहित प्रमाण वाला अन्य प्याला (अनवस्थित) बनाया जाय और उसे भी सरसों के दानों से इस प्रकार भर दिया जाए कि अब एक भी दाना उसमें न ठहर सके, उस समय एक दाना 'शलाका' नामक प्याले में डालना चाहिये ।

तत्पश्चात् पुनः उस अनवस्थित प्याले को उठाकर उसमें से एक-एक दाना क्रमशः

एक द्वीप एक समुद्र में डालते ही जायें और उसके खाली होने पर एक-एक दाना शलाका नामक प्याले में डालते जायें ।

इस प्रकार बार-बार करने पर जब 'शलाका' नाम का प्याला शिखा सहित संपूर्ण भर जाए तब उस द्वीप या समुद्र के विस्तार वाले अनवस्थित प्याले को सरसों के दाने से भरकर वैसे ही रख दें ।

उसके बाद शलाका नामक प्याले को उठाकर आगे बढ़ते हुए क्रमशः उसमें से एक-एक दाना एक-एक द्वीप-समुद्र में डालते जायें, जब वह शलाका प्याला संपूर्ण खाली हो जाय तब साक्षी रूप में एक दाना तीसरे 'प्रतिशलाका' प्याले में डालें ।

अब पुनः उस अनवस्थित प्याले को उठाकर उसमें से एक-एक दाना एक-एक द्वीप-समुद्र में डालते जायें और जब वह खाली हो जाय तब एक दाना 'शलाका' नामक प्याले में डालें ।

इस प्रकार बार-बार अनवस्थित प्याले को भर भरकर एक-एक दाने को आगे के द्वीप समुद्र में डालते जायें और जब जब संपूर्ण खाली हो जाय तब-तब साक्षी रूप एक-एक दाना शलाका प्याले में डालते जायें और जब शलाका प्याला भर जाय तब उसे उठाकर आगे के द्वीप समुद्र में एक-एक दाने को डालते जायें और जब वह शलाका प्याला खाली हो जाय तब साक्षी रूप एक दाना प्रतिशलाका प्याले में डालते जायें ।

इस प्रकार प्रतिशलाका प्याला जब भर जाय तब अनवस्थित और शलाका प्याले को वहीं रखकर प्रतिशलाका प्याले को उठाकर एक-एक दाना आगे के द्वीप समुद्र में डालते जायें और उसके खाली होने पर एक दाना चौथे महाशलाका प्याले में डालें । तत्पश्चात् पुनः शलाका प्याले को उठाकर एक-एक दाना आगे के द्वीप-समुद्र में डालते जायें, उसके खाली होने पर एक दाना तीसरे प्रतिशलाका प्याले में डालते जायें । उसके बाद अनवस्थित प्याले को उठाकर एक-एक दाना आगे के द्वीप समुद्र में डालते जायें, उसके खाली होने पर एक दाना शलाका प्याले में डालते जायें ।

इस प्रकार अनवस्थित प्याले से शलाका प्याले को भरना चाहिये । शलाका प्याले से प्रतिशलाका प्याले को भरना चाहिये और प्रतिशलाका प्याले से महाशलाका प्याले को भरना चाहिये । इस प्रकार जब चारों प्याले संपूर्ण भर जायें और अब एक भी दाना डालने का न रहे तब उन चारों प्यालों को भरा हुआ रखें ।

अब सरसों के दानों से भरे उन चारों प्यालों को किसी विशाल जगह पर खाली करें और उसके साथ ही द्वीप समुद्र में जितने दाने डाले गए हों, उन सबको भी इस ढेर में मिला दें । उस ढेर में से एक दाना कम कर देने पर दानों की जितनी संख्या हो उसे उत्कृष्ट संख्याता कहते हैं । उस उत्कृष्ट संख्यात में एक (दाना) जोड़ने पर 'जघन्य परित्त असंख्याता' होता है ।

इस जघन्य पस्ति असंख्य का अन्योन्य अभ्यास कर उसमें से दो-दो निकालें तब तक 'मध्यम पस्ति असंख्य' होता है। उसमें एक मिलने पर उत्कृष्ट पस्ति असंख्यात होता है, उसे एक और मिले तब 'जघन्य युक्त असंख्य' होता है।

अन्योन्य अभ्यास की पद्धति—जिस संख्या की राशि का अध्ययन करना हो, उस संख्या को उस संख्या से उतनी ही बार गुणाकार करने पर जो संख्या आए उसे राशि अध्ययन कहते हैं।

जैसे—5 का अन्योन्य अभ्यास करना है—

स्थापना—55555 — ऊपर की पंक्ति के अंकों को आपस में गुणा करें।

11111

स्थापना—	5	5	5	5	5
	1	1	1	1	1
	5	25	125	625	3125

अंतिम गुणाकार करने पर जो राशि आए उसे उत्पन्न कहते हैं।

इस प्रकार अन्योन्य अभ्यास की पद्धति समझनी चाहिये।

जघन्य युक्त असंख्य प्रमाण एक आवलिका का समय है। उसका परस्पर राशि अभ्यास कर उसमें से दो निकाल दें, उसे 'मध्यम युक्त असंख्यात' कहते हैं।

उसमें एक जोड़ने पर 'उत्कृष्ट युक्त असंख्यात' होता है। उत्कृष्ट युक्त असंख्यात में एक जोड़ने पर 'जघन्य असंख्यात असंख्यात' होता है। उसका अन्योन्य अभ्यास कर उसमें से दो निकालने पर 'मध्यम असंख्यात असंख्यात' होता है। उसमें एक जोड़ने पर 'उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात' होता है।

मतांतर

अन्य आचार्य 'उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात' का स्वरूप इस प्रकार कहते हैं—

जघन्य असंख्यात असंख्यात की राशि का वर्ग करें, फिर उस वर्गित राशि का पुनः वर्ग करें, फिर पुनः वर्ग राशि का वर्ग करें—

इस प्रकार तीन बार कर उसमें निम्नोक्त दस असंख्यात को जोड़ें—(1) लोकाकाश के प्रदेश (2) धर्मास्तिकाय के प्रदेश (3) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश (4) एक जीव के आत्म प्रदेश (5) सूक्ष्म-बादर अनंतकाय वनस्पति के औदारिक शरीर (6) अनंत काय के शरीर छोड़कर शेष पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय और त्रसकाय के शरीर (7) स्थिति बंध में कारणभूत अध्यवसाय (8) अनुभाग बंध के अध्यवसाय (9) योग छेद प्रति भाग (10) उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप काल के समय।

इन दस असंख्यात को जोड़ने पर जो संख्या आए उसे पुनः तीन बार वर्ग करने पर

जो संख्या आए उस संख्या में से एक संख्या कम करने पर 'उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात' होता है ।

मध्यम असंख्यात असंख्यात के पदार्थ

1. द्रव्य से—बादर पर्याप्त तेजस्काय से लेकर सभी निगोद के शरीर, ये सब मध्यम असंख्यात असंख्यात है ।

2. क्षेत्र से—सूक्ष्म अपर्याप्त जीव के तीसरे समय की अवगाहना जितने क्षेत्र में होती है, वहां से लेकर परम अवधि ज्ञान का क्षेत्र, मध्यम असंख्यात असंख्यात समझना चाहिये । (यह प्रदेश की अपेक्षा से समझना चाहिये ।)

3. काल से—सूक्ष्म उद्धार पत्योपम के समय से लेकर चार स्थावर, वनस्पति बिना की काय स्थिति के समय ये सब मध्यम असंख्य असंख्य है ।

4. भाव से—सूक्ष्म निगोद के जीव के योग स्थान से लेकर संज्ञी पर्याप्त के अनुभाग बंध के अध्यवसाय स्थान ये सब मध्यम असंख्यात असंख्यात है ।

उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात में जोड़ने पर जघन्य पस्ति अनंत होता है ।

उसका पूर्ववत् अन्योन्य अध्ययन कर उसमें से दो निकालने पर 'मध्यम अपस्ति अनंत' होता है और उसमें एक जोड़ने पर 'उत्कृष्ट पस्ति अनंत' होता है ।

उत्कृष्ट पस्ति अनंत में एक जोड़ने पर 'जघन्य युक्त अनंत' होता है, उतनी संख्या में अभव्य जीव हैं ।

उसका पूर्ववत् अभ्यास कर उसमें से दो निकालने पर 'मध्यम युक्त अनंत' होता है और उसमें एक जोड़ने पर 'उत्कृष्ट युक्त अनंत' होता है ।

उसमें एक जोड़ने पर 'जघन्य अनंत अनंत' होता है । उसके आगे सब 'मध्यम अनंत अनंत' है । 'उत्कृष्ट अनंत अनंत' नहीं है ।

अन्य आचार्यों का मत

'जघन्य अनंत अनंत' का पूर्व की तरह तीन बार वर्ग करें और उसमें निम्नोक्त छ अनंत जोड़ें—

(1) सर्व सिद्ध (2) सर्व सूक्ष्म बादर निगोद जीव (3) सभी वनस्पति जीव (4) तीनों काल के समय (5) सभी पुद्गल (6) सभी लोकालोकाकाश के प्रदेश ।

ये छह अनंत जोड़कर जो संख्या आए उसका तीन बार वर्ग करें । उसमें केवलज्ञान व केवल दर्शन के अनंत पर्याय जोड़ने पर जो संख्या आए, वह उत्कृष्ट अनंत अनंत है । इस प्रमाण वाली जगत् में कोई वस्तु नहीं है । यह बात किसी आचार्य के मत से कही है, परंतु सूत्र के अभिप्राय से तो उत्कृष्ट अनंत अनंत नहीं है । तत्त्व तो केवली जाने । ये बातें अनुयोग द्वार (सू. 146) वृत्ति के अनुसार लिखी गई हैं ।

मध्यम अनंत अनंत वाले पदार्थ

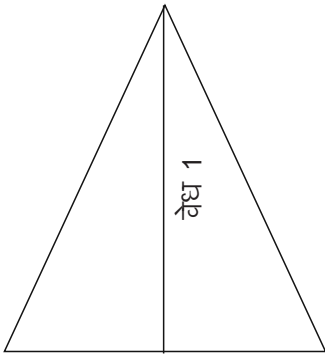
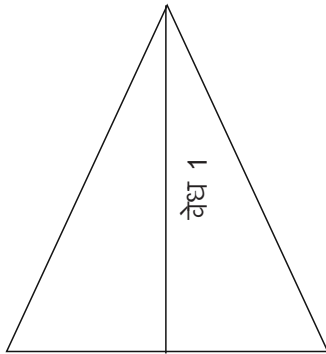
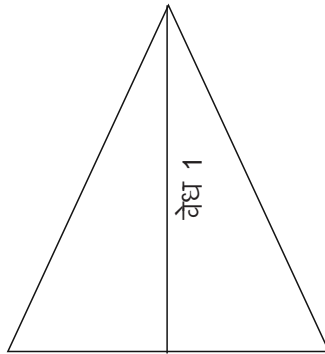
1. द्रव्य से—सम्यक्त्व से पतित से लेकर सभी जीव तथा दो प्रदेशी स्कंध से लेकर सभी पुद्गल मध्यम अनंत अनंत हैं ।

2. क्षेत्र से—आहारक शरीर के बिखेरने पर जितने स्कंध होते हैं, उन्हें 'मुक्केलगा' कहते हैं, वे अनंत स्कंध है । उन्होंने जितने क्षेत्र का स्पर्श किया हो, उससे लेकर आकाश के सभी प्रदेश मध्यम अनंत अनंत हैं ।

3. काल से—अर्द्ध पुद्गल परावर्त से लेकर तीनों काल के समय मध्यम अनंत अनंत हैं ।

4. भाव से—सूक्ष्म अपर्याप्त निगोद जीव के जघन्य अज्ञान के पर्याय से लेकर केवलज्ञान के पर्याय मध्यम अनंत अनंत हैं ।

(55) स्वरूप कोष्टक ♦

सूखा धान्य धान गैहूं आदि	बादर धान्य चना आदि	छोटे धान्य सरसों आदि
		
2 3 4	2 7 9	3 13 36
घन फल	घन फल	घन फल

(56) वर्ग के स्वरूप निरूपक कोष्टक

वर्ग	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
अंक	4	16	256
छेद	2	4	8
स्थापना	स्थापना	स्थापना	स्थापना
0	2, 1	8, 4, 2,	128, 64, 32, 16, 8, 4, 2

♦ जंबू द्वीप के ऊपर सरसों की शिखा चढ़े, उसकी आम्नाय गोम्मटसार के अनुसार—

दोहा :- धान तीन है सुकओ, बादरनीका जोड़ । नौ दस ग्यारह भाग, इह जो परिधि का होइ ॥1॥
वेधक कही ये पुंज को, तासो करि गुणकार । परिधि छठे भाग कृति, घन फल कह्यो निहार ॥2॥

लोकोत्तर गिनती-

चौपाई-

लोकोत्तर गिणती सिद्धांत, जासौ संख असंख अनंत ।
ताके भेद दोड़ मनमानि, छेद गिणतओ वरग प्रमानि ॥1॥
छेद राशि का आधा आधा, जब लग अंत में एक ही लाधा ।
राशि कुं आपही सौ गुणाकार, 'वरग' कहे इह बुद्धिविचार ॥2॥

दोहा-

धारा ही जानिये, वरगधार घनधार ।
होइ घनघनाधार इम, पंडित कहे विचार ॥

(57) तीनों धारा का प्रयोजन (गोम्मटसार से)

वर्ग शलाका	वर्ग धारा	छेद शलाका
1	4	2
2	16	4
3	256	8
4	65536	16
5	4294967296	32
6	18446744073709551616	64
7	39 अंक आते हैं	128
8	78 अंक आते हैं	256
संख्यात	संख्यात वर्ग जाने पर जघन्य पस्ति असंख्य आता है ।	संख्यात
"	" " " जघन्य युक्त " " "	"
असंख्यात	असंख्यात वर्ग जाने पर जघन्य असंख्य असंख्यात आते हैं	असंख्यात
असंख्यात	" " " सूक्ष्म अद्धा पत्योपम के समय होते हैं ।	असंख्यात
"	असंख्य वर्ग जाने पर सूचि अंगुल के प्रदेश	"
"	एक बार वर्ग करने पर प्रतर अंगुल के प्रदेश	"
"	असंख्य वर्ग करने पर जघन्य पस्ति अनंत होता है	"
"	" " " " जघन्य युक्त अनंत "	"
"	अनंत वर्ग " " " अनंत अनंत "	"
अनंत	" " जाने पर जीवास्तिकाय	अनंत
"	अनंत वर्ग जाने पर पुद्गलास्तिकाय	"
"	" " " अद्धाकाल	"
"	" " " सर्व आकाश श्रेणी के प्रदेश	"
"	1 बार वर्ग करने पर सर्व आकाश प्रतर के प्रदेश	"

"	अनंत वर्ग जाने पर धर्मास्तिकाय के पर्याय	"
"	" " " एक जीव के पर्याय	"
"	" जाने पर जघन्य अज्ञान के पर्याय	"
"	" " " " क्षायिक सम्यक्त्व के पर्याय	"
"	" " " " केवल ज्ञान के पर्याय	"
वर्ग शलाका	घन धारा	छेद शलाका
1	8	3
2	64	6
3	4096	12
4	16777216	24
5	281474976710656	48
6	79228162514264337593543950336 गर्भज मनुष्य	96
7	58 अंक	192
8	116 अंक	384
असंख्य	असंख्य वर्ग जाने पर घनांगुल के प्रदेश आते हैं	असंख्य
"	" " लोकाकाश श्रेणी के प्रदेश " "	"
"	1 बार वर्ग करने पर लोकाकाश प्रतर प्रदेश आते हैं	"
वर्ग शलाका	घनाघन धारा	छेद शलाका
1	512	9
2	262144	18
3	68711476136	36
4	22 अंक	72
5	41 अंक	144
6	82 अंक	288
7	164 अंक	576
8	227	1052
असंख्य	असंख्य वर्ग जाने पर लोकाकाश के प्रदेश आते हैं	असंख्य
"	" " " तेउकाय के सर्व जीव राशि	"
"	" " " तेउकाय की कायस्थिति के समय	"
"	एक बार वर्ग करने पर परमावधि ज्ञान का क्षेत्र आता है	"
"	असंख्य वर्ग जाने पर स्थिति बंध के अध्यवसाय	"

"	" " अनुभाग " " "	"
"	" " निगोद के औदारिक शरीर	"
"	" " निगोद की काय स्थिति	"

दोहा-

च्यारि आठ ओ पांच से, बारह आदि कहंत ।
धारा तीनो जाणिये, आगे वर्ग अनंत ॥१॥

चौपाई-

कृत धारा में वर्ग विचार, ताके धन लइये घनधार ।
घनाघन धारा में तस वृंद, इम भाषे सब ही जिन चंद ॥१॥
दोड़ तीन अरु नौ है छेद, आदि तिहुं धारा इम भेद ।
आगे दुगुण दुगुण सब ठाम, वरग कृति धन वृन्दो नाम ॥२॥
दूने कृति में तिगुने घणा, नौ गुण छेद घनाघन तणा ।
इक इक धारा तीन प्रकार, गुण पुनि भाग अयसि निहार ॥३॥
छेद जोग है इस गुणकार, तस विजोग है भागाहर ।
निज सम थल थापीजे रास, अन्नो अन्नता को अभ्यास ॥४॥

दोहा-

पहिले विरलन देय पुनि, तासौ है उत्पन्न ।
विरलन जाहि बिखेरीये, देय ऊपर जो दिन्न ॥१॥

चौपाई-

विरलन राशि करो गुणाकार, देय छेद सौ बुद्धि विचार ।
जो आवे सो छेद प्रमाण, उत्पन्न राशि इह विद्यमान ॥१॥

विरलन राशि स्थापना- 4 1 1 1 1
देय राशि स्थापना- 4 4 4 4 देय राशि के
 1 1 1 1

छेद 2 से देय राशि को गुणने पर लब्ध 8 छेद, इतने उत्पन्न राशि के 256 छेद होते हैं ।

दोहा -

अर्ध अर्ध जो छेद को, कीजे सो कृति रास ।
अपने छेद समान ही, वर्ग होय अभ्यास ॥१॥
राशि 16, छेद 4

चौथे स्थान पर उत्पन्न राशि 1844744073709551616

(58) इन्द्रिय स्वरूप कोष्टक (प्रज्ञापना पद 15)

	निवर्तन इन्द्रिय	अभ्यंतर इन्द्रिय-1	पांच इन्द्रियों का संस्थान कदंब पुष्प आदि का कहा गया है । उनकी मोटाई अंगुल के असंख्य भाग प्रमाण है ।
द्रव्य इन्द्रिय	आकार	बाह्य इन्द्रिय-2	8 इन्द्रियां-कान 2, आंखें-2, नासिका-2, जीभ-1, स्पर्श-1, इनका संस्थान नाना प्रकार का है ।
	उपकरण	बाह्य इन्द्रिय-1	खड्ग धारा समान, स्वच्छतर पुद्गल समूह रूप है जैसे- खड्गधारा के सारभूत पुद्गल काम करते हैं उसी प्रकार इन्द्रियों के सारभूत पुद्गल हैं, उनके व्याघात से अंधा-बहरा आदि होता है ।
		अभ्यंतर-2	अभ्यंतर उपकरण शक्ति रूप जाने ।
भाव इन्द्रिय	लब्धि-1		श्रोत्रेन्द्रिय आदि विषयक आत्मा के सर्व प्रदेशों में तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम ।
	उपयोग 2		स्व-स्व विषय में लब्धि रूप इन्द्रियों के अनुसार आत्मा के व्यापार को उपयोग इन्द्रिय कहते हैं (इति नन्दी वृत्तौ)

(59) इन्द्रिय कोष्टक (प्रज्ञापना पद 15)

इन्द्रिय	जघन्य आदि	श्रोत्रेन्द्रिय	चक्षु	घ्राण	रसनेन्द्रिय	स्पर्शन
संस्थान	0	कदंब पुष्प का	मसूर चंद्र	अतिमुक्त	क्षुरप्र	विविध संस्थान
स्थूलत्व	0	अंगुल असंख्य भाग	एवम्	एवम्	एवम्	एवम्
विस्तार	0	"	एवम्	एवम्	पृथक् अंगुल	शरीर प्रमाण
स्कंध	0	अनंत प्रदेश	एवम्	एवम्	एवम्	एवम्
अवगाहना एवम्	असंख्य प्रदेश	असंख्य प्रदेश	एवम्	एवम्	एवम्	एवम्
अल्प बहुत्व	अवगाहना	2 संख्येय गुणा	1 स्तोक 3 संख्य	3 असंख्य	4 संख्य स्वरूप	5 संख्य स्वरूप स्पृष्ट
प्रदेश	7 संख्येय	7 संख्येय	6 अनंत	8 संख्येय	9 असंख्येय	10 संख्येय

	कर्कश गुरु	2 अनंत	1 स्तोक	3 अनंत	4 अनंत	5 अनंत
	मृदु-लघु	9 अनंत गुणे	10 अनंत गुणे	8 अनंत गुणे	7 अनंत गुणे	6 अनंत गुणे
स्पृष्ट	0	स्पृष्ट	अस्पृष्ट	स्पृष्ट	स्पृष्ट	स्पृष्ट
प्रविष्ट	0	प्रविष्ट	अप्रविष्ट	प्रविष्ट	प्रविष्ट	प्रविष्ट
विजय	जघन्य	अंगुल असंख्य	एवम्	एवम्	एवम्	एवम्
	उत्कृष्ट	12 योजन	साधिक लाख योजन	9 योजन	9 योजन	9 योजन

(60) इन्द्रियों का उत्कृष्ट विषय

श्रोत्रेन्द्रिय	12 योजन	800 धनुष				
चक्षुरिन्द्रिय	1 लाख योजन	5908 धनुष	2954 धनुष			
घ्राणेन्द्रिय	9 योजन	400 धनुष	200 धनुष	100 धनुष		
रसनेन्द्रिय	9 योजन	512 धनुष	256 धनुष	128 धनुष	64 धनुष	
स्पर्शनेन्द्रिय	9 योजन	6400 धनुष	3200 धनुष	1600 धनुष	800 धनुष	400 धनुष
0	संज्ञी पंचेन्द्रिय	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	चउरिन्द्रिय	तेइन्द्रिय	बेइन्द्रिय	एकेन्द्रिय

(61) श्वासोच्छ्वास स्वरूप कोष्टक

आणमंति	ध्यान में जो ऊंचा श्वास लेते हैं उसे आणमंति कहते हैं ।
पाणमंति	ध्यान में जो नीचा श्वास लेते हैं उसे पाणमंति कहते हैं ।
उच्छ्वास	ध्यान बिना जो ऊंचा श्वास लेते हैं उसे उच्छ्वास कहते हैं ।
निःश्वास	ध्यान बिना जो नीचा श्वास लेते हैं उसे निःश्वास कहते हैं ।

(62) द्रव्यप्राण आदि

चार भाव प्राण	10 द्रव्य प्राण	भाव प्राण 4	10 द्रव्य प्राण
ज्ञान प्राण 1	ज्ञान प्राण से 5 इन्द्रिय प्राण उत्पत्ति 5	सुख प्राण 3	सुख प्राण से एक श्वासोच्छ्वास प्राण
वीर्य प्राण 2	वीर्य प्राण से मन, वचन और काय बल	जीवितव्य प्राण 4 कुल, 4 हुए	जीवितव्य प्राण से आयु प्राण-इस प्रकार कुल - 10

(63) आठ आत्मा (भगवती शतक 12, उद्देश 10, सू. 467)♦

	द्रव्यात्मा	कषायात्मा	योगात्मा	उपयोगात्मा	ज्ञानात्मा	दर्शनात्मा	चारित्रात्मा	वीर्यात्मा
1 द्रव्यात्मा	0	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा
2 कषायात्मा	भजना	0	भ.	भजना	भजना	भजना	भजना	भजना
3 योगात्मा	भ.	नि.	0	भजना	भजना	भ.	भ.	भजना
4 उपयोगात्मा	नियमा	नि.	नि.	0	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा
5 ज्ञानात्मा	भ.	भ.	भ.	भजना	0	भजना	भजना	भ.
6 दर्शनात्मा	नियमा	नि.	नि.	नि.	नियमा	0	नियमा	नि.
7 चारित्रात्मा	भ.	भ.	भ.	भजना	भजना	भजना	0	भ.
8 वीर्यात्मा	भ.	नि.	नि.	भजना	भजना	भजना	नियमा	0

(64) पांच देव (भगवती शतक 12, उद्देश 9, सू. 461-466)

पंच देव नाम	गुण	अगली नरक से	तिर्यच गति	मनुष्य गति	देव गति	स्थिति	रूप विकुर्वणा	मर कर कहां जाए ?	काय-स्थिति	अंतर	अल्प-बहुत्व	अवगा-हना
1 भव्य द्रव्य देव	देवता होने वाला तिर्य-च, मनुष्य	सातों नरक से आए	युग-लिक छोड़ शेष सभी आए	युग-लिक छोड़ शेष सभी में से आए	सर्वार्थ सिद्ध छोड़ शेष 25 देव-लोक के सभी देव	जघन्य अन्तमु. उत्कृष्ट तीन पल्योपम	जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट असं-ख्य	चार प्रकार के देवों में से एक में जाए ।	जघन्य अन्त. उत्कृष्ट तीन पल्यो-पम	जघन्य-अन्त. अधिक 10000 वर्ष उत्कृष्ट काल	चार असं-ख्यात गुणा	जघन्य अंगुल का असंख्या-तवांभाग उत्कृष्ट एक हजार योजन
2 नर देव	चक्र-वर्ती	पहली नरक से आए	नहीं	0	सभी देव में से आए	जघन्य 700 वर्ष उत्कृष्ट-चार लाख पूर्व	जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट असं-ख्य	भोग न तयारे तो नरक में	जघन्य 700 उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व	जघन्य पृथक् पल्यो. उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्त	सबसे थोड़े	जघन्य 7 धनुष उत्कृष्ट 500 धनुष

♦ अल्प बहुत्व-सव्वत्थोवाओ चस्तिओ, नाणायाओ, अणंत गुणाओ, कसायाओ, अणंत, जागायाओ वि., वीरियायाओ वि उवयोग दवियदंसणायाओ तिन्नि वि तुल्लाओ वि.” (—भगवती सू. 467)

3 धर्म देव	साधु	3 से 5 नरक में से	तेउ, वायु तथा युगलिक छोड़ कर	युग-लिक छोड़ शेष सभी	वैमानिक आदि चारों में	जघन्य अन्त० उत्कृष्ट-देशोन पूर्व कोटि वर्ष	"	वैमानिक तथा मोक्ष में	जघन्य 1 समय उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि वर्ष	"	3 संख्यात गुणा	जघन्य साधिक 1 हाथ उत्कृष्ट-500 धनुष
4 देव-धि देव	तीर्थ-कर	1 से 3 नरक में आए	0	0	वैमानिक में से	जघन्य 72 वर्ष उत्कृष्ट-84 लाख पूर्व	शक्ति है किंतु करते नहीं है	मोक्ष में	जघन्य 72 वर्ष उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व वर्ष	0	2 सं. ख्यात गुणा	जघन्य 7 हाथ उत्कृष्ट 500 धनुष
5 भाव देव	चार प्रकार के देवता	0	5 एके. व 3 विकले. छोड़कर शेष आते हैं।	सम्मु-च्छिम छोड़ शेष सभी	0	जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट-33 साग-रोपम	जघन्य 1, 2, उत्कृष्ट असं-ख्य	पृथ्वी अप, वन-स्पति गर्भज तिर्यच व मनुष्य	जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट 33 साग-रोपम	जघन्य अंत० उत्कृष्ट वनस्पति काल	5 असं.-ख्यात गुणा	जघन्य एक हाथ उत्कृष्ट 7 हाथ उत्तर वैक्रिय की 1 लाख योजन

(65) पुद्गल परावर्तन (भग. शतक 12, उद्देश 4, सू. 448)

पुद्गल परावर्तन 7	औदारिक 1	वैक्रिय 2	तैजस पुद्गल 3	कार्मण 4	मन पुद्गल 5	वचन पुद्गल 6	श्वासो. पुद्गल 7
सबसे कम काल किसका ?	3 अनंत	7 अनंत	2 अनंत	1 स्तोक	5 अनंत गुण	6 अनंत गुण	4 अनंत
किसके कम व किसके ज्यादा पुद्गल ?	5 अनंत गुणा	1 स्तोक	6 अनंत गुणा	7 अनंत	3 अनंत	2 अनंत	4 अनंत

(66) पर्याप्ति कोष्टक

प्रारंभिक काल						सर्व पर्याप्ति का समुच्चय काल	समाप्ति काल						
	2	3	4	5	6		स्वामी	1 स्वामी	2 असं.	3 विशेषाधिक	4 विशेष.	5 विशेष.	6 विशेष.
प्रथम समय	समय	समय	समय	समय		समय	संज्ञी पंचे.	आहार	शरीर	इन्द्रिय	श्वासो.	भाषा	मन
आहार	आहार	आहार	आहार	आहार	आहार	अन्त-मुहूर्त	विकलेन्द्रिय	"	" "				
	शरीर	शरीर	शरीर	शरीर		"	" "						
		इन्द्रिय	इन्द्रिय	इन्द्रिय		एकेन्द्रिय	" "						
			श्वासो.	श्वासो.	श्वासो.								
				भाषा	भाषा								
					मन								

सबसे कम काल किसका ?	3 अनंत	7 अनंत	2 अनंत	1 स्तोक	5 अनंत गुण	6 अनंत गु.	4 अनंत
किसके कम व किसके ज्यादा पुद्गल ?	5 अनंत गुणा	1 स्तोक	6 अनंत गुणा	7 अनंत	3 अनंत	2 अनंत	4 अनंत

निश्चय नय के मत से सभी पर्याप्तियों का प्रारंभ एक साथ होता है, जबकि व्यवहार नय के मत से एक समयांतर बाद प्रारंभ होता है। आहार पर्याप्ति को एक समय लगता है, जबकि अन्य सभी को पृच्छत अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

(67) पर्याप्ति अपर्याप्ति षट्कं

द्वार	भेद	पर्याप्ति षट् 6		अपर्याप्ति षट् 6	
0	0	प्रारंभ-सर्व पर्याप्ति एक साथ में	समाप्ति-अनुक्रम से पूर्ण करे	प्रारंभ-सर्व एक साथ में प्रारंभ	समाप्ति-अनुक्रम से पूर्ण करे
	लब्धि अपर्याप्त	0	0	4 साथ	3 पूर्ण करे
एकेन्द्रिय	पर्याप्त	4 साथ	4 अनुक्रमे पूर्ण करे	0	0
बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय	लब्धि अपर्याप्त	0	0	4 साथ	4 अनुक्रम से पूर्ण करे
	लब्धि पर्याप्त	5 साथ	3/4/5 अनुक्रमे पूर्ण करे	0	0
गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यच पंचेन्द्रिय	करण अपर्याप्त	6 साथ	" " "	0	0
	करण पर्याप्त	" " "	6 अनुक्रमे पूर्ण करे	0	0
नैरयिक देवता	करण अपर्याप्त	" " "	5 अनुक्रमे पूर्ण करे	0	0
	करण पर्याप्त	" " "	6 पूर्ण करे	0	0

(68) पर्याप्ति के सर्व काल का अल्पबहुत्व

आहार पर्याप्ति 1	शरीर पर्याप्ति 2	इन्द्रिय पर्याप्ति 1	श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति 4	भाषा पर्याप्ति 5	मन पर्याप्ति 6
1 स्तोक	2 असंख्य	3 विशेष अधिक	4 विशेष	0	0
" "	" "	" "	" "	0	0
" "	" "	" "	4 वि. काल करे	5 वि. काल करे	0
" "	" "	" "	" "	0	0

" "	" "	" "	4 वि.	5 विशेष	6 किञ्चित् न्यून
" "	" "	" "	" "	0	6 विशेष अधिक
" "	" "	" "	" "	0	6 अधूरी से किञ्चित् न्यून
" "	" "	" "	" "	" "	6 तुल्यम्

(69) पर्याप्ति स्वरूप कोष्ठक (प्रज्ञापना पद 28 में से)

6 पर्याप्ति	आहार	शरीर 2	इन्द्रिय 3	श्वासोच्छ्वास 4	भाषा 5	मन 6
अपर्याप्ति	अपर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्त	अपर्याप्त
आहारक	नियमात्	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी
अणाहारी	अणाहारी	अणाहारी	अणाहारी	अणाहारी	अणाहारी	अणाहारी

(70) आहार कोष्ठक (प्रज्ञापना पद 28)

द्वार	भेद	स्वामी	संख्या
तीन भेद	1 सचित्त	1 तिर्यच 2 मनुष्य	1
	2 अचित्त	1 देव, 2 नरक, 3 तिर्यच, 4 मनुष्य	2
	3 मिश्र	1 तिर्यच, 2 मनुष्य	3
तीन भेद	1 ओज	1 अपर्याप्त अवस्था में	4
	2 रोम	2 पर्याप्त अवस्था में	5
	3 कवल	बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय मनुष्य	6
दो भेद	आयोग निवृत्ति से	रोम आहारी, कवल आहारी	7
	अनाभोग निवृत्ति से	ओज आहारी, रोम आहारी	8
दो भेद	मनोज्ञ	देवता आदि	9
	अमनोज्ञ	नरक आदि	10

चौदह गुणस्थानक का स्वरूप

चौदह गुणस्थानकों के नाम (1) मिथ्यात्व गुणस्थान (2) सास्वादन गुणस्थान (3) मिश्र गुणस्थान (4) अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (5) देशविरति गुणस्थान (6) प्रमत्त संयत गुणस्थान (7) अप्रमत्त संयम गुणस्थान (8) अपूर्वकरण गुणस्थान (9) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान (10) सूक्ष्म संपराय गुणस्थान (11) उपशांत मोह गुणस्थान (12) क्षीणमोह गुणस्थान (13) सयोगी केवली गुणस्थान (14) अयोगी केवली गुणस्थान ।

गुणस्थानकों के लक्षण—

1. मिथ्यात्व गुणस्थान—जो कुदेव को मानता है, कुदेव अर्थात् जो विषयी हो, पुण्य प्रकृति का भोग करता हो, राग-द्वेष सहित हो, उन्हें देव मानना ।

□ जो **कुगुरु** को मानता है, कुगुरु अर्थात् चारित्र धर्म से रहित अन्यलिङ्गी तथा गुणों से भ्रष्ट, परिग्रह के लोभी, कदाग्रही तथा पांच महाव्रतों से रहित स्वलिङ्गी को गुरु मानना ।

□ जो **कुधर्म** को मानता है । जो यथार्थ, आत्म परिणतिमान्, केवली भाषित अनेकांत व स्याद्वाद रूप धर्म को सही रूप से नहीं मानता है और अपनी कल्पनानुसार श्रद्धा करता है । पूर्व पुरुषों के सिद्धांत को तोड़ता है । सूत्र-अर्थ को विपरीत कहता है, नय-प्रमाण को नहीं समझता है, एकांत वस्तु की प्ररूपणा करता है और जो कदाग्रह को नहीं छोड़ता है । जिस प्रकार धतूरा पीए हुए व्यक्ति को सफेद वस्तु भी पीली दिखाई देती है और ज्वर के जोर से भोजन की रुचि नहीं होती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जिसे सत् पदार्थ भी मिथ्या दिखाई देते हैं और उन्हें झूठा ही जानता है । ये सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं ।

2. सास्वादन गुणस्थान—खीर-खांड का भोजन करने के बाद वमन हो जाय तो पूर्व के स्वाद का थोड़ा अनुभव रहता है, उसी प्रकार उपशम सम्यक्त्व का वमन करते समय जिस स्वाद का अनुभव होता है, उसे सास्वादन गुणस्थान कहते हैं ।

3. मिश्र गुणस्थान—नारियल द्वीप में रहने वाले मनुष्य ने अन्न को कभी देखा ही नहीं, अतः उसे अन्न पर न राग होता है, न द्वेष । इस प्रकार जिस समय जैन धर्म पर राग भी न हो और द्वेष भी न हो उसे मिश्र गुण स्थान समझना चाहिये ।

4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अठारह दूषण से रहित देव, पंच महाव्रतधारी, शुद्ध धर्म प्ररूपक गुरु एवं केवली भाषित स्याद्वाद रूप धर्म को जो मानता है एवं प्रत्याख्यानीय कषाय के उदय से जो अविरत है, उसे चौथा गुणस्थान समझना चाहिये ।

5. देश विरति गुणस्थान—जो बारह व्रतों का पालन करता हो, ग्यारह प्रतिमाओं को धारण करता हो, सात व्यसन, बाईस अभक्ष्य व बत्तीस अनन्तकाय का त्याग करता हो, उभयकाल सामायिक-प्रतिक्रमण करता हो, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा तथा कल्याणक तिथियों में पौषध करता हो तथा श्रावक के इक्कीस गुणों का धारक हो, उसे पांचवां गुणस्थान समझना चाहिये ।

6. सर्व विरति गुणस्थान—जो सत्रह भेद वाले संयम का पालन करता हो, पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति का पालन करता हो, संतोषी हो, परहित के लिए सिद्धांत उपदेश देता हो, व्यवहार हेतु चौदह प्रकार के उपकरण रखता हो परंतु प्रमादी हो, उसे छद्वा गुणस्थान होता है।

7. अप्रमत्त गुणस्थान—संज्वलन कषाय की मंदता के कारण जिसका प्रमाद नष्ट हो गया हो, जो मौन हो, जो मोह के क्षय अथवा क्षय के लिए प्रधान ध्यान का आरंभ करता हो। मुख्यतया उसे धर्म ध्यान होता है और अंश मात्र से रूपातीत शुक्ल ध्यान भी होता हो, जो ध्यान में आरुढ होने से षड् आवश्यक कर्तव्य से रहित हो, उसे सातवां गुणस्थान होता है।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान—निष्कंप आसन वाला नासिका के अग्र भाग पर स्थिर नेत्र युगल वाला संकल्प-विकल्प रहित चित्त वाला तथा संसार के उच्छेद के लिए उत्साही योगीन्द्र शुक्ल ध्यान के लिए योग्य होता है।

9. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान—इस गुणस्थान के नौ भाग करके जो कर्म – प्रकृतियों का क्षय करता है, उसे नौवां गुणस्थान कहते हैं।

10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान—जहां सूक्ष्म लोभ संज्वलन रहा हो तथा अन्य मोह का क्षय अथवा उपशम किया हो, उसे दसवां गुणस्थान कहते हैं।

11. उपशांत मोह गुणस्थान—जहां मोह का सर्वथा उपशमन हो, उसे ग्यारहवां उपशांत मोह गुणस्थान कहते हैं।

12. क्षीणमोह गुणस्थान—जहां मोह का सर्वथा क्षय हुआ हो उसे बारहवां क्षीणमोह गुणस्थान कहते हैं।

13. सयोगी गुणस्थान—जहां घाति कर्मों का संपूर्ण क्षय हुआ हो, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, यथाख्यात चारित्र और अनंत वीर्य गुण पैदा हुए हों और जो योग सहित हो उसे तेरहवां सयोगी गुणस्थान कहते हैं।

14. अयोगी गुणस्थान—मन, वचन और काया के योगों का पांच ह्रस्व अक्षर के उच्चारण मात्र काल में निरोध कर आत्मा अयोगी बनता है, उसे अयोगी गुणस्थान कहते हैं।

गुण स्थान के 162 द्वार

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
1.	जीव भेद 14	14	7	1	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
2.	योग 15	13	13	10	13	11	13	11	9	9	9	9	9	7	0
3.	उपयोग 12	5	5	6	6	6	7	7	7	7	7	7	7	2	2

जीव भेद के दूसरे गुणस्थान में एकेन्द्रिय का एक अपर्याप्त का भेद कहा गया है, इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय में सास्वादन सम्यक्त्व है। सूत्र (आगम) में उसका निषेध किया गया है—इसका समाधान यह है कि एकेन्द्रिय में सास्वादन किसी काल में ही होता है, बहुलता से नहीं। इस कारण सूत्र (आगम) में उसकी विवक्षा नहीं की गई है और कर्मग्रंथ में किसी काल की विवक्षा करके कहा गया है। इस कारण कोई विरोध नहीं है। यह समाधान भगवती सूत्र की टीका में कहा गया है।

दूसरे गुणस्थान में अपर्याप्त का जो भेद है, वह करण अपर्याप्त की अपेक्षा से समझना चाहिये, लब्धि अपर्याप्त तो काल करते हैं (मरते हैं) और दूसरे गुणस्थान में अपर्याप्त काल नहीं करते हैं।

योग द्वार में पांचवें-छठे गुणस्थान में कर्मग्रंथानुसार औदारिक मिश्रयोग नहीं माना है, क्यों ?

उत्तर—वहां वैक्रिय आहारक की प्रधानता के कारण तीनों का मिश्र माना है अन्यथा 12 व 14 योग समझने चाहिए, परंतु गुणस्थान द्वार तो कर्मग्रंथ की अपेक्षा से होने के कारण कर्मग्रंथ की अपेक्षा से ही सर्वत्र उदाहरण समझने चाहिए।

उपयोग द्वारा में पहले-दूसरे गुणस्थान में 5 उपयोग कहे हैं—वे तीन अज्ञान व चक्षु अचक्षु दो दर्शन में पांच उपयोग समझने चाहिए।

दूसरे गुणस्थान में ज्ञान मलिन है, मिथ्यात्व के अभिमुख है, अवश्य मिथ्यात्व में जाएगा-अतः अज्ञान ही कहा गया है। अन्यथा तीन ज्ञान व तीन दर्शन समझने चाहिये। अवधि ज्ञान बिना अवधि दर्शन की विवक्षा नहीं की है। इस कारण वहां 5 उपयोग कहे हैं। अन्यथा तो प्रथम गुण स्थान में 3 अज्ञान व तीन दर्शन समझने चाहिए। **तीसरे गुणस्थान में ज्ञान अंश की विवक्षा करें तो तीन ज्ञान व तीन दर्शन हैं और अज्ञान अंश की विवक्षा करें तो तीन अज्ञान व तीन दर्शन समझने चाहिए।**

4	द्रव्य लेश्या	6	6	6	6	6	6	3	1	1	1	1	1	1	1	0
5	भाव लेश्या	6	6	6	6	3	3	3	1	1	1	1	1	1	1	0

भगवती की टीका में कहा है कि कृष्ण, नील और कापोत—इन तीन भाव लेश्याओं में वर्तमान जीव सम्यक्त्व नहीं है और तीन अप्रशस्त भावलेश्या में देश विरति व सर्वविरति नहीं होती है।

द्वार सं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
6	मूल हेतु 4	4	3	3	3	3	2	2	2	2	2	2	1	1	0
7	उत्तर हेतु 57	55	50	43	46	39	26	24	22	16	10	9	9	7	0
0	मिथ्या त्व 5	5	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
0	अवि-रति 12	12	12	12	12	11	0	0	0	0	0	0	0	0	0
0	कषाय 25	25	25	21	17	13	13	13	7	1	0	0	0	0	0
0	योग 15	13	13	10	13	11	13	11	9	9	9	9	9	7	0
8	अल्प बहुत्व गुणा 14	अनंत गुणा 14	असं. 10	असं. 11	असं. 12	असं. 9	सं. 8	सं. 7	वि. 35	वि. 35	वि. 33	स्तोक 1	सं. 2	सं. 6	अनंत गुणा 13
9	मूल भाव 5	3	3	3	5	5	5	5	5	5	5	5	4	3	2
10	उत्तर भाव 53	34	32	33	36	34	34	30	27	28	23	21	20	13	12
				32	35	35	33	31	28	29	22	20	19		
0	उपशम 2	0	0	0	1	1	1	1	1	2	2	2	0	0	0
	क्षायिक 9	0	10	11	12, 1	14, 1	1	1	1	1-2	1-2	2	2	9	9
0	क्षयोप-शम 18	10	10	11	12, 13	14, 13	14, 15	14, 15	13, 14	12, 13	12, 13	12, 13	12, 13	0	0

0	क्षयोप- शम 18	10	10	11	12, 13	14, 13	14, 15	14, 15	13, 14	12, 13	12, 13	12, 13	12, 13	0	0
0	औद- यिक 12	21	20	20, 19	19	17	15	12	10	10	4	3	3	3	2
0	परिणामी	3	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	1	1
11	समु- द्घात	5	5	2	5	5	6	1,5	1	1	1	1	0	1	0
12	ध्यान भेद 16	8	8	8	12	12	7	4	5	1	1	1	1	1	2
										प्रथम				दूसरा	
13	दंडक 24	24	22	16	16	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1
14	वेद स्त्री आदि	3	3	3	3	3	3	3	3	3	0	0	0	0	0
15	चारित्र 7	1	1	1	1	1	3	3	2	2	2	1	1	1	1
16	योनि- 84 लाख	84	56	26	26	18	14	14	14	14	14	14	14	14	14
17	कुल- 1975 0000, 000,0 00	197- 50	116	41	40	40, 39	12	12	12	12	12	12	12	12	12
18	आश्रव भेद 42	41	41	41	40	40 39	32, 27	0	0	0	7	1	1	1	0
19	संवर भेद 57	0	0	0	12	12	57	57	57	57	45	45	45	30	30

मूल भाव पांच हैं— (1) औपशमिक (2) क्षायिक (3) क्षायोपशमिक (4) औदयिक (5) पारिणामिक ।

उत्तर भेद 57 हैं— **औपशमिक के दो भेद** (1) उपशम सम्यक्त्व एवं (2) उपशम चारित्र ।

क्षायिक भाव के 9 भेद हैं— (1) केवल ज्ञान (2) केवल दर्शन (3) क्षायिक सम्यक्त्व (4) क्षायिक चारित्र (5) दानांतराय (6) लाभान्तराय (7) भोगान्तराय (8) उपभोगान्तराय (9) वीर्यांतराय ।

क्षायोपशमिक के 18 भेद हैं— (1) मति (2) श्रुत (3) अवधि (4) मनःपर्यव (5) मति अज्ञान (6) श्रुत अज्ञान (7) विभंग ज्ञान (8) चक्षु दर्शन (9) अचक्षु दर्शन (10) अवधि दर्शन (11) दान (12) लाभ (13) भोग (14) उपभोग (15) वीर्य (16) देश विरति (17) सर्व विरति और (18) क्षयोपशम सम्यक्त्व ।

औदयिक के 21 भेद हैं— (1) मनुष्य गति (2) देव गति (3) तिर्यच गति (4) नरक गति (5) क्रोध (6) मान (7) माया (8) लोभ (9) पुरुष वेद (10) स्त्री वेद (11) नपुंसक वेद (12) कृष्ण लेश्या (13) नील लेश्या (14) कापोत लेश्या (15) तेजो लेश्या (16) पद्म लेश्या (17) शुक्ल लेश्या (18) मिथ्यात्व (19) अज्ञान (20) अविरति और (21) असिद्धत्व ।

पारिणामिक के 3 भेद हैं— (1) जीवत्व (2) भव्यत्व (3) अभव्यत्व ।

नौवें गुणस्थान में जो उपशम और क्षायिक चारित्र कहा गया है— वह क्षपक श्रेणि व उपशम श्रेणि में अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षय व उपशम की अपेक्षा से है, अन्यथा तो वहां चारित्र क्षयोपशम भाव का है ।

तेरहवें व चौदहवें गुण स्थान में एक जीवत्व पारिणामिक भाव समझना चाहिये ।

♦ **सातवें गुणस्थान में जो 5 समुद्घात कहे गए हैं, उसकी यह अपेक्षा है— सातवें गुणस्थान में (1) वेदनीय (2) कषाय (3) वैक्रिय और (4) आहारक समुद्घात तो करता नहीं है परंतु वैक्रिय, आहारक शरीर बिना समुद्घात नहीं होता है अतः 5 समुद्घात कहे हैं । एक ही हो तो मारणान्तिक समुद्घात समझना चाहिये ।**

♦ छठे गुणस्थान में आर्तध्यान के पहले पद को छोड़कर सात पद कहे गए हैं ।

♦ छठे गुणस्थान में आश्रव के 32 भेद कहे हैं— (1) पारिग्रहिकी क्रिया (2) मिथ्यादर्शन प्रत्यया (3) अप्रत्याख्यान क्रिया (4) सामंतोपनिपातिकी क्रिया (5) ईर्यापथिकी क्रिया (6) प्राणातिपात (7) मृषावाद (8) अदत्तादान (9) मैथुन और (10) परिग्रह- इन दस को छोड़कर) ।

♦ **आश्रव के 27 भेदों में उपरोक्त 32 में से 5 इन्द्रियां कम करनी चाहिये ।**

♦ संवर के सभी भेद अपनी बुद्धि के अनुसार सर्व गुणस्थानों में समझने चाहिये ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
20	ध्रुवबंधी 47	47	46	39	39	35	31	31	31, 20	29, 18	18	14	0	0	0
21	अध्रुवबंधी 73	70	55	35	38	32	32	28	27, 4	4,3	3	1	1	1	0
22	ध्रुव उदयी 27	27	26	26	26	26	26	26	26	26	26	26	26	12	0
23	अध्रुव उदयी 97	90	85	74	78	62	55	50	46	40	34	33	31, 29	30	12, 9
24	ध्रुव सत्ता 130	130	130	130	130	130	130	130, 125	130, 92	130, 91	130	130	90	74	74, 7
25	अध्रुवसत्ता 28	28	27	27	28	28	28	28	28, 23	28, 21	28, 21	28	21	21	21 5
26	सर्वघाती 20	20	19	12	12	8	4	4	4,2 4	2	2	0	0	0	0
27	देशघाती 25	25	24	23	23	23	23	21	21	17	12	0	0	0	0
28	अघाती 75	72	58	39	42	36	36	34	33	3	3	1	1	1	0

ध्रुव बंधी 47 – ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, कषाय 16, भय 1, जुगुप्सा 1, मिथ्यात्व 1, तैजस 1, कार्मण 1, वर्ण 1, गंध 1, रस 1, स्पर्श 1, निर्माण 1, अगुरुलघु 1, उपघात 1, अंतराय 5 ।

जिस गुणस्थान तक इन प्रकृतियों का बंध बतलाया गया है, वहां तक इनका अवश्य बंध होने से इन्हें **ध्रुवबंधी** कहा जाता है ।

♦ दूसरे गुणस्थान में एक मिथ्यात्व प्रकृति दूर होती है ।

♦ तीसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी चार, निद्रानिद्रा प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि इन सात प्रकृतियों का उच्छेद होता है।

♦ चौथे गुणस्थान में तीसरे की तरह सात प्रकृतियों का विच्छेद होता है ।

♦ पांचवें गुणस्थान में अप्रत्याख्यान की चार प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ छठे गुणस्थान में प्रत्याख्यान की चार प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ सातवें गुणस्थान व आठवें के प्रथम भाग में छठे की तरह उच्छेद होता है ।

♦ आठवें गुणस्थान के दूसरे भाग में निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ आठवें के तीसरे भाग में तैजस, कर्मण, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, निर्माण, अगुरुलघु एवं उपघात ये नौ प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ आठवें के चौथे भाग में भय व जुगुप्सा दो प्रकृतियां दूर होती हैं । इस प्रकार 18 प्रकृतियों का बंध होता है ।

♦ नौवें व दसवें गुणस्थान में चार संज्वलन कषाय दूर होते हैं और वहां 14 प्रकृति (5 ज्ञानावरणीय, 4 दर्शनावरणीय व 5 अंतराय) का बंध होता है ।

आगे के गुणस्थानों में बंध नहीं हैं ।

अध्रुव बंधी 73 प्रकृति – हास्य 1, रति 1, शोक 1, अरति 1, वेद 3, आयु 4, गति 4, जाति 5, औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर तथा तीन अंगोपांग, संघयण 6, संस्थान 4, आनुपूर्वी 4, विहायोगति 2, पराघात 1, उच्छ्वास 1, आतप 1, उद्योत 1, तीर्थकर 1, त्रस दशक, स्थावर दशक और गोत्र 2 ।

मिथ्यात्व आदि बंध के कारण विद्यमान होने पर भी इन प्रकृतियों का बंध होता भी है और नहीं भी होता है, इस कारण इन्हें **अध्रुवबंधी** कहते हैं ।

♦ **प्रथम गुणस्थान** में आहारक, आहारक अंगोपांग व तीर्थकर नाम कर्म ये तीन प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **दूसरे गुणस्थान** में नपुंसक वेद, नरक त्रिक, चार जाति, (पंचेन्द्रिय बिना) अंतिम संघयण, अंतिम संस्थान, आतप नामकर्म, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण व अपर्याप्त नाम कर्म आदि 15 प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **तीसरे गुणस्थान** में स्त्री वेद, तीन आयुष्य, तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, मध्य के चार संघयण व मध्य के चार संस्थान, उद्योत, अशुभ विहायोगति, दुर्भग नाम कर्म, दुःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र आदि बीस प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **चौथे गुणस्थान** में मनुष्य आयुष्य, देव आयुष्य और तीर्थकर नाम कर्म ये तीन प्रकृतियां बढ़ती हैं ।

♦ **पांचवें व छठे गुणस्थान** में मनुष्यत्रिक, औदारिक, औदारिक अंगोपांग व पहला संघयण ये छह प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **आठवें गुणस्थान** के पहले भाग में देवायु दूर होती है और 27 का बंध होता है, जबकि दूसरे भाग में सिर्फ शातावेदनीय पुरुषवेद, यश नाम व ऊंच गोत्र इन चार का ही बंध होता है, शेष 23 प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **नौवें गुणस्थान** के पहले भाग में चार प्रकृतियों का बंध होता है । दूसरे भाग में पुरुषवेद को छोड़ तीन का बंध होता है ।

♦ **दसवें गुणस्थान** में तीन का बंध होता है ।

♦ **ग्यारहवें-बारहवें व तेरहवें गुणस्थान** में सिर्फ शाता वेदनीय का बंध होता है ।

♦ **चौदहवें गुणस्थान** में अबंध (बंध का अभाव) समझना चाहिये ।

ध्रुवोदयी 27 प्रकृतियां – पांच ज्ञानावरणीय, चक्षु आदि चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, तैजस, कर्मण, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, निर्माण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और पांच अंतराय ये 27 प्रकृतियां ध्रुवोदयी हैं । जिस गुणस्थान तक इन प्रकृतियों का उदय कहा गया है, वहां तक इनका निरंतर उदय होने से इन्हें ध्रुवोदयी कहा गया है ।

दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय दूर होती है-इस प्रकार 12वें गुणस्थान तक 26 का उदय है ।

तेरहवें गुणस्थान में पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय व पांच अंतराय ये चौदह प्रकृतियां दूर होती हैं ।

चौदहवें गुणस्थान में कोई ध्रुवोदयी प्रकृति नहीं है ।

अध्रुवोदयी 95 प्रकृतियां – पांच निद्रा, दो वेदनीय, मिथ्यात्व बिना मोहनीय की 27 प्रकृतियां, चार आयुष्य, चार गति, पांच जाति, तीन शरीर, तीन अंगोपांग, छह संघयण, छह संस्थान, चार आनुपूर्वी, दो विहायोगति, एक पराघात, एक उच्छ्वास, आतप, उद्योत, तीर्थकर नाम कर्म, उपघात, स्थिर व शुभ विना त्रसादि आठ, अस्थिर तथा अशुभ बिना आठ स्थावर और दो गोत्र, ये 95 प्रकृतियां अध्रुवोदयी हैं ।

इन प्रकृतियों का कभी उदय होता है और कभी नहीं होता है, इस कारण इन्हें अध्रुवोदयी कहा गया है ।

♦ **पहले गुणस्थान** में सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थकर नाम कर्म ये पांच प्रकृतियां नहीं होती हैं ।

♦ **दूसरे गुणस्थान** में नरकानुपूर्वी, आतप, सूक्ष्म नाम कर्म, साधारण और अपर्याप्त नाम कर्म ये पांच प्रकृतियां नहीं होती हैं ।

♦ **तीसरे गुणस्थान** में चार अनंतानुबंधी, तीन आनुपूर्वी, चार जाति और स्थावर नामकर्म ये बारह प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ **चौथे गुणस्थान** में चार आनुपूर्वी व सम्यक्त्व मोहनीय ये पांच बढ़ती है और मिश्र मोहनीय की एक प्रकृति घटती है।

♦ **पांचवें गुणस्थान** में चार अप्रत्याख्यानीय, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, दुर्भग, अनादेय अपयश, तिर्यचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी ये सत्रह दूर होती हैं ।

♦ **छठे गुणस्थान** में चार प्रत्याख्यानीय, तिर्यच आयु, तिर्यच गति, उद्योत और नीच गोत्र ये आठ दूर होती हैं और आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग ये दो बढ़ती हैं ।

♦ **सातवें गुणस्थान** में तीन निद्रा, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये पांच दूर होती हैं ।

♦ **आठवें गुणस्थान** में सम्यक्त्व मोहनीय और अंतिम तीन संघयण ये चार दूर होती हैं ।

♦ **नौवें गुणस्थान** में हास्य, रति, शोक, अरति, भय व जुगुप्सा ये छह दूर होती हैं ।

♦ **दसवें गुणस्थान** में तीन वेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया ये छह दूर होती हैं ।

♦ **ग्यारहवें गुणस्थान** में एक संज्वलन लोभ दूर होता है ।

♦ **बारहवें गुणस्थान** में दो संघयण दूर होते हैं और द्विचरम समय में दो निद्रा दूर होती हैं ।

♦ **तेरहवें गुणस्थान** में तीर्थकर नाम कर्म की एक प्रकृति बढ़ती है ।

♦ **चौदहवें गुणस्थान** में 18 प्रकृतियां दूर होती हैं और शाता अथवा अशाता वेदनीय, मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थकर, मनुष्य आयु एवं उच्च गोत्र ये 12 प्रकृतियां रहती हैं । अंतिम समय में वेदनीय और उच्च गोत्र ये दो दूर होती हैं ।

ध्रुवसत्ता – 130 प्रकृतियां – पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, 26 मोहनीय (सम्यक्त्व मोहनीय व मिश्र मोहनीय को छोड़कर) तिर्यच गति, पांच जाति, वैक्रिय, आहारक को छोड़ तीन शरीर, औदारिक अंगोपांग, पांच बंधन (औदारिक बंधन, तैजस बंधन, कार्मण बंधन, औदारिक तैजस कार्मण बंधन और तैजस कार्मण बंधन) पांच संघातन, छह संघयण, छह संस्थान, 20 वर्णादि, तिर्यचानुपूर्वी, दो विहायोगति, सात प्रत्येक प्रकृति (तीर्थकर नाम कर्म को छोड़कर) दस त्रसादि, दस स्थावर आदि नीच गोत्र और पांच अंतराय इन 130 प्रकृतियों की ध्रुवसत्ता होती है ।

जिस गुणस्थानक तक इन प्रकृतियों की सत्ता कही गई है, वहां तक इन प्रकृतियों की सत्ता अवश्य होने से इन्हें ध्रुवसत्ता कहते हैं ।

♦ **सातवें गुण स्थान तक 130 की सत्ता होती है ।**

♦ उपशम श्रेणि की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थानक तक 130 की सत्ता होती है।

♦ **क्षपक श्रेणि में आठवें गुणस्थान में चार अनंतानुबंधी व मिथ्यात्व इन पांच की सत्ता दूर होती है ।**

♦ निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि, मोहनीय की उन्नीस (संज्वलन माया व लोभ

बिना) चार जाति (पंचेन्द्रिय को छोड़कर) तिर्यचानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन 33 की सत्ता नौवें गुणस्थान के नौ भाग में दूर होती है— (1) पहले भाग में आठवें गुणस्थानक की तरह ।

(2) दूसरे भाग में तिर्यच द्विक, चार जाति, थीणद्धित्रिक, उद्योत, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण ये 14 दूर होती हैं ।

(3) तीसरे भाग में चार प्रत्याख्यानीय व चार अप्रत्याख्यानीय की आठ प्रकृतियों की सत्ता नष्ट होती हैं ।

(4) चौथे भाग में नपुंसक वेद की सत्ता नष्ट होती हैं ।

(5) पांचवें भाग में स्त्री वेद, छठे भाग में हास्यादि षट्क, सातवें भाग में पुरुषवेद, आठवें भाग में संज्वलन क्रोध व नौवें भाग में संज्वलन मान की सत्ता नष्ट होती है ।

♦ **दसवें गुणस्थान** में संज्वलन माया की सत्ता नष्ट होती है ।

♦ **बारहवें गुणस्थान** में संज्वलन लोभ की सत्ता नष्ट होती है ।

♦ **तेरहवें गुणस्थान** में निद्रा, प्रचला, पांच ज्ञानावरणीय चार दर्शनावरणीय और पांच अंतराय इन 16 की सत्ता नष्ट होती हैं ।

♦ **चौदहवें गुणस्थान** में तेरहवें की तरह 74 की सत्ता होती हैं और चरम समय में त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, सुभग पंचेन्द्रिय तथा शाता अथवा अशाता इन सात की सत्ता रहती हैं । मुक्ति में जाने पर सभी प्रकृतियों का उच्छेद हो जाता है ।

अध्रुवसत्ता की 28 प्रकृतियां — सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, चार आयुष्य, तिर्यच बिना तीन गति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, पांच बंधन, पांच संघातन, तीन आनुपूर्वी (तिर्यच आनुपूर्वी को छोड़कर) तीर्थकर नाम कर्म और उच्च गोत्र इन 28 की अध्रुवसत्ता कही गई हैं ।

जिन प्रकृतियों की सत्ता सदा नहीं रहती हैं, उन्हें अध्रुवसत्ता कहते हैं ।

♦ **दूसरे व तीसरे गुणस्थानक में तीर्थकर नाम कर्म की सत्ता नहीं होती है ।**

♦ चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक तक तीर्थकर नाम कर्म सहित 28 की अध्रुव सत्ता हैं ।

♦ **क्षपक श्रेणि की अपेक्षा आठवें गुणस्थान में सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मनुष्यायु को छोड़ तीन आयुष्य, इन पांच को छोड़ 23 की अध्रुव सत्ता हैं ।**

♦ नौवें गुणस्थान में नरक गति व नरकापूर्वी को छोड़ 21 की अध्रुवसत्ता है ।

♦ **दसवें, बारहवें, तेरहवें व चौदहवें गुणस्थानक में भी 21 की अध्रुवसत्ता है । चौदहवें गुणस्थानक के अंतिम समय में मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र व तीर्थकर नाम कर्म इन पांच की सत्ता समझनी चाहिये ।**

सर्वघाती की 20 प्रकृतियां – केवल ज्ञानावरणीय, केवल दर्शनावरणीय, पांच निद्रा व चार संज्वलन कषाय को छोड़कर बारह कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय ये 20 सर्वघाती प्रकृतियां हैं। आत्मा के मूल गुण का सर्वथा हनन करने के कारण इन्हें सर्वघाती कहा जाता है।

- ♦ दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व मोहनीय प्रकृति दूर होती है।
- ♦ तीसरे व चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चार व तीन निद्राएं दूर होती हैं।
- ♦ पांचवें गुणस्थान में अप्रत्याख्यानीय की चार प्रकृतियां दूर होती हैं।
- ♦ छठे, सातवें व आठवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानीय की चार प्रकृतियां दूर होती हैं।
- ♦ आगे दो रहती हैं। (1) केवल ज्ञानावरणीय (2) केवल दर्शनावरणीय-यह द्वार बंध अपेक्षा से है।

देशघाती की 25 प्रकृतियां – मति आदि चार ज्ञानावरणीय, केवल दर्शन बिना तीन दर्शनावरणीय, चार संज्वलन, हास्यषट्क, तीन वेद और पांच पांच अंतराय ये 25 देशघाती प्रकृतियां हैं।

जो प्रकृतियां आत्मा के आंशिक गुण का हनन करती हैं वे देशघाती कहलाती है।

- ♦ दूसरे गुणस्थानक में नपुंसकवेद दूर होता है।
- ♦ तीसरे से छठे गुणस्थानक तक स्त्रीवेद दूर होता है।
- ♦ सातवें गुणस्थानक में अरति व शोक प्रकृति दूर होती है।
- ♦ आठवें व नौवें गुणस्थानक में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा ये चार प्रकृतियां दूर होती हैं।
- ♦ दसवें गुणस्थानक में चार संज्वलन व पुरुषवेद ये पांच प्रकृतियां दूर होती हैं। इसके आगे बंध नहीं है।

अघाती की 75 प्रकृतियां – दो वेदनीय, चार आयुष्य, नामकर्म की 67 तथा दो गोत्र की 75 प्रकृतियां अघाती कहलाती हैं।

- ♦ आत्मा के ज्ञानादि मूल गुणों का हनन नहीं करने के कारण इन्हें अघाती कहते हैं।
- ♦ पहले गुणस्थानक में आहारक द्विक व तीर्थकर नाम कर्म इन तीन का बंध नहीं होता है।
- ♦ दूसरे गुणस्थानक में सेवार्त संघयण, हुंडक संस्थान, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आतप, विकलेन्द्रिय त्रिक एवं नरक त्रिक इन 14 का बंध नहीं होता है।

- ♦ तीसरे गुणस्थानक में दुर्भग, अनादेय, मध्य के चार संघयण, मध्य के चार संस्थान,

अप्रशस्त विहायोगति, तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, नरक बिना तीन आयुष्य उद्योत और नीच गोत्र इन 19 का बंध दूर हो जाता है ।

♦ **चौथे गुणस्थानक** में मनुष्य आयुष्य, देव आयुष्य और तीर्थकर नाम कर्म इन तीन का बंध बढ़ता है ।

♦ **पांचवें व छठे गुणस्थानक** में पहला संघयण, औदारिक शरीर एवं औदारिक अंगोपांग, मनुष्य गति, आयुष्य और मनुष्यानुपूर्वी ये छह प्रकृतियाँ दूर हो जाती हैं ।

♦ **सातवें गुणस्थानक** में अशातावेदनीय, अस्थिर, अशुभ व अपयश नाम कर्म ये चार दूर होती हैं और आहारक शरीर व अंगोपांग ये दो जुड़ती हैं ।

♦ **आठवें गुणस्थानक** में देवायु दूर होता है ।

♦ **नौवें-दसवें गुणस्थानक** में तीस प्रकृतियां दूर होती हैं और सिर्फ साता वेदनीय, यश एवं उच्चगोत्र रहता है ।

♦ **ग्यारहवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थान** में एक मात्र शाता का बंध होता है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
29	पुण्य भेद 42	39	38	34	37	31	31	33	32	3	3	1	1	1	0
30	पाप प्रकृति 82	82	67	44	44	40	36	30	28	23	14	0	0	0	0
31	परावर्तिनी 91	89	74	47	49	39	35	31	31	8	3	1	1	1	0
32	अपरावर्तिनी 29	28	27	27	28	28	28	28	28	28	14	14	0	0	0
33	क्षेत्र विपाकी 4	4	3	0	4	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
34	भव विपाकी 4	4	4	4	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
35	जीव विपाकी 78	75	72	64	64	55	49	46	45	39	32	32, 30	32, 30	17	11
36	पुद्गल विपाकी 36	34	32	32	32	30	30	31	26	26	26	26	24	24	10

पुण्य प्रकृति के 42 भेद – शाता वेदनीय, नरक बिना तीन आयुष्य, मनुष्य गति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, पांच शरीर, तीन अंगोपांग, पहला संघयण शुभ वर्ण आदि चार, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, शुभ विहायोगति, उपघात को छोड़ 7 प्रत्येक प्रकृति, त्रसदशक और उच्च गोत्र ये 42 पुण्य प्रकृतियां हैं ।

जो कर्म प्रकृति सुख व शुभ फल देती है उसे पुण्य प्रकृति कहते हैं ।

♦ **पहले गुणस्थानक** में आहारक द्विक और तीर्थकर नाम कर्म इन तीन का बंध होता है ।

- ♦ दूसरे गुणस्थानक में आतप नाम कर्म का बंध दूर होता है ।
- ♦ तीसरे गुणस्थानक में तीन आयुष्य व उद्योत का बंध दूर होता है ।
- ♦ चौथे गुणस्थानक में मनुष्य और देवायु तथा तीर्थकर नाम कर्म का बंध जुड़ता है ।
- ♦ पांचवें-छठे गुणस्थानक में मनुष्यत्रिक, प्रथम संघयण, औदारिक शरीर व औदारिक अंगोपांग इन छह का बंध नहीं होता है ।

- ♦ सातवें गुणस्थानक में आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग का बंध जुड़ता है ।
- ♦ आठवें गुणस्थानक में देवायु का बंध दूर होता है ।
- ♦ नौवें-दसवें गुणस्थानक में 29 प्रकृतियां दूर होती हैं और सिर्फ शातावेदनीय, यश नाम कर्म व उच्च गोत्र का बंध होता है ।
- ♦ ग्यारहवें-बारहवें व तेरहवें गुणस्थानक में सिर्फ शाता वेदनीय का ही बंध होता है ।
- ♦ चौदहवें गुणस्थान में बंध का व्यवच्छेद हो जाता है ।

पाप प्रकृति के 82 भेद—पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, अशाता वेदनीय, मोहनीय की 26, नरक आयुष्य, नरकगति, तिर्यच गति, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, पांच संघयण, पांच संस्थान, अशुभ वर्ण आदि चार, नरकानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, अशुभ विहायोगति, उपघात, स्थावर दशक, नीच गोत्र और पांच अंतराय ये पाप प्रकृति के 82 भेद हैं।

जिस कर्म प्रकृति के उदय से दुःख आता है और जो आत्मा के आनंदरस का शोषण करती है, उसे पाप प्रकृति कहते हैं ।

दूसरे गुणस्थानक में मिध्यात्व, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, नपुंसक वेद, चार जाति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त व नरकत्रिक-ये 15 प्रकृतियां दूर होती हैं ।

तीसरे-चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चार, स्त्यानर्द्धि त्रिक, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, मध्य के चार संघयण, मध्य के चार संस्थान, अशुभ विहायोगति, स्त्री वेद, नीच गोत्र, तिर्यच गति और तिर्यचानुपूर्वी ये 23 प्रकृतियां दूर होती हैं ।

- ♦ पांचवें गुणस्थानक में चार अप्रत्याख्यानीय कषाय दूर होते हैं ।
- ♦ छठे गुणस्थानक में चार प्रत्याख्यानीय कषाय दूर होते हैं ।
- ♦ सातवें गुणस्थानक में अस्थिर, अशुभ, अशाता, अपयश, अरति और शोक ये छह प्रकृतियां दूर होती हैं ।
- ♦ आठवें गुणस्थानक में निद्रा व प्रचला ये दो प्रकृतियां दूर होती हैं ।
- ♦ नौवें गुणस्थानक में वर्ण चतुष्क व उपघात ये पांच प्रकृतियां दूर होती हैं ।
- ♦ दसवें गुणस्थानक में हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, संज्वलन चतुष्क और पुरुषवेद ये नौ प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ ग्यारहवें गुणस्थानक में ज्ञानावरणीय की पांच, दर्शनावरणीय की चार व अंतराय की पांच ये 14 प्रकृतियां दूर होती हैं।

आगे के गुणस्थानकों में बंध नहीं हैं।

परावर्तिनी 91 प्रकृतियां – पांच निद्रा, दो वेदनीय, 16 कषाय, हास्य, रति, शोक, अरति, तीन वेद, चार आयुष्य, चार गति, पांच जाति, औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर एवं तीन अंगोपांग, छह संघयण, छह संस्थान, चार आनुपूर्वी दो विहायोगति, आतप, उद्योत, त्रस दशक, स्थावर दशक व दो गोत्र - ये 91 प्रकृतियां परावर्तिनी हैं।

जो कर्म प्रकृति अन्य प्रकृति के बंध व उदय का निवारण कर अपना बंध व उदय दिखाती हो, उसे परावर्तिनी कर्म प्रकृति कहते हैं। “पंच संग्रह” के बंधव्य द्वार में कहा है—

□ विणिवारिय जा गच्छड़, बंध उदयं च अण्ण पगईए ।

सा हु परियत्तमाणी अणिवारेति अपरियत्ताए ॥

♦ पहले गुणस्थानक में आहारक द्विक ये दो दूर होती हैं।

♦ दूसरे गुणस्थानक में नरक त्रिक, पंचेन्द्रिय बिना चार जाति, सेवार्त संघयण, हुंडक संस्थान, नपुंसक वेद, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त और आतप ये 15 प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ तीसरे गुणस्थानक में चार अनंतानुबंधी, स्त्यानद्धि त्रिक, तिर्यचत्रिक, देव आयुष्य, मनुष्य आयुष्य, स्त्री वेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, मध्य के चार संघयण, मध्य के चार संस्थान, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र और उद्योत ये 27 प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ चौथे गुणस्थानक में देव आयुष्य व मनुष्य आयुष्य ये दो जुड़ती हैं।

♦ पांचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानीय चार कषाय, प्रथम संघयण, औदारिक द्विक और मनुष्य त्रिक ये 10 प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ छठे गुणस्थानक में प्रत्याख्यानीय चार कषाय दूर होते हैं।

♦ सातवें गुणस्थानक में अस्थिर, अशुभ, अशाता, अपयश, अरति व शोक ये छह प्रकृतियां दूर होती हैं और औदारिक द्विक-ये दो जुड़ती हैं।

♦ आठवें गुणस्थानक में देवायु दूर होती हैं।

♦ नौवें गुणस्थानक में 22 प्रकृति दूर होती हैं और संज्वलन चतुष्क, पुरुषवेद, शाता वेदनीय, यशनाम कर्म व उच्च गोत्र ये आठ रहती हैं।

♦ दसवें गुणस्थान में 5 प्रकृतियां दूर होती हैं और सिर्फ शाता वेदनीय, यश नाम कर्म व उच्च गोत्र रहती हैं।

♦ ग्यारहवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थान में सिर्फ शातावेदनीय का ही बंध होता है।

□ विनिवार्य या गच्छति, बन्धमुदयं वान्य प्रकृतेः । सा खलु परावर्तमाना, अनिवारयन्ती अपरावर्तमाना ॥

अपरावर्तिनी 29 प्रकृतियां – पांच ज्ञानावरणीय, चार चक्षु आदि दर्शनावरणीय, भय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व, तैजस, कर्मण, वर्ण आदि चार, पराघात, उच्छ्वास, अगुरुवधु, तीर्थकर नाम कर्म, निर्माण, उपपात और पांच अंतराय ये 29 अपरावर्तिनी प्रकृतियां हैं।

जो कर्म प्रकृति अन्य के बंध, उदय का निवारण किए बिना अपना बंध, उदय दिखलाती हो उसे अपरावर्तिनी प्रकृति कहते हैं।

♦ पहले गुणस्थान में तीर्थकर नाम कर्म दूर होता है।

♦ दूसरे व तीसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व दूर होता है।

♦ चौथे से आठवें गुणस्थानक में तीर्थकर नाम कर्म जुड़ता है।

♦ नौवें व दसवें गुणस्थानक में 14 प्रकृतियां दूर होती हैं और पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय व पांच अंतराय रूप 14 प्रकृतियां रहती हैं।

इसके आगे बंध नहीं है।

उदय अधिकार

क्षेत्र विपाकी 4 प्रकृतियां – चार आनुपूर्वी कर्म प्रकृतियां क्षेत्र विपाकी हैं।

भव विपाकी 4 प्रकृतियां – चार आयुष्य भव विपाकी है। जिस भव में उदय में आई हो वहीं पर रस देती हो, भवांतर मे नहीं, उसे भवविपाकी कहते हैं।

जीव विपाकी 78 प्रकृतियां – पांच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, 28 मोहनीय, चार गति, पांच जाति, दो विहायोगति, उच्छ्वास, तीर्थकर नाम कर्म, त्रस, बादर, पर्याप्त और सुभग आदि चार स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और दुर्भग आदि चार, दो गोत्र पांच अंतराय ये 78 प्रकृतियां जीव विपाकी कहलाती हैं।

जिस कर्म प्रकृति का रस (फल) जीव को होता हो किंतु शरीर आदि पुद्गल को नहीं, उसे जीव विपाकी कहते हैं।

♦ पहले गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और तीर्थकर नाम कर्म ये तीन प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ दूसरे गुणस्थानक में सूक्ष्म नाम कर्म अपर्याप्त व मिथ्यात्व मोहनीय ये तीन प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ तीसरे गुणस्थानक में चार अनंतानुबंधी, एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और स्थावर ये नौ दूर होती हैं और मिश्र मोहनीय जुड़ती हैं।

♦ चौथे गुणस्थानक में मिश्र मोहनीय दूर होती है और सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है।

♦ पांचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानीय चार कषाय, दो गति, दुर्भग, अनादेय, अपयश ये नौ प्रकृतियां दूर होती हैं।

♦ छठे गुणस्थानक में प्रत्याख्यानीय चार कषाय, तिर्यचगति और नीचगोत्र आदि छह प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ सातवें गुणस्थानक में तीन निद्राएं (प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानर्द्धि) दूर होती हैं ।

♦ आठवें गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति दूर होती है ।

♦ नौवें गुणस्थानक में हास्यादि षट्क प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ दसवें गुणस्थानक में तीन वेद तथा लोभ को छोड़ तीन संज्वलन कषाय दूर होते हैं ।

♦ ग्यारहवें गुणस्थानक में संज्वलन लोभ दूर होता है ।

♦ बारहवें गुणस्थानक में ग्यारहवें गुणस्थानक की तरह 32 प्रकृतियां रहती हैं परन्तु बारहवें के द्विचरम समय में दो निद्राएं दूर होती हैं ।

♦ तेरहवें गुणस्थान में पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पांच अंतराय की 14 प्रकृतियां दूर होती हैं और तीर्थकर नाम कर्म की प्रकृति जुड़ती है ।

♦ चौदहवें गुणस्थानक में शाता या अशाता वेदनीय, दो विहायोगति, सुस्वर, दुःस्वर और उच्छ्वास ये छह प्रकृतियां दूर होती हैं और शाता या अशाता, मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थकर नाम कर्म व उच्च गोत्र ये 11 प्रकृतियां रहती हैं ।

पुद्गल विपाकी 36 प्रकृतियां – पांच शरीर, तीन अंगोपांग, छह संघयण, छह संस्थान, वर्ण आदि चार, पराघात, आतप, उद्योत, अगुरु लघु, निर्माण, उपघात, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, शुभ, अस्थिर और अशुभ ये 36 प्रकृतियां पुद्गल विपाकी हैं ।

ये कर्म प्रकृतियां पुद्गल को रस (फल) देती हैं, किंतु जीव को नहीं, इस कारण पुद्गल विपाकी कहलाती हैं ।

♦ पहले गुणस्थानक में आहारक द्विक दूर होती है ।

♦ दूसरे-तीसरे-चौथे गुणस्थानक में आतप व साधारण ये दो प्रकृतियां दूर होती हैं ।

♦ पांचवें गुणस्थानक में वैक्रिय द्विक दूर होती है ।

♦ छठे गुणस्थानक में आहारक द्विक दूर होती है ।

♦ सातवें गुणस्थानक में आहारक द्विक दो दूर होती हैं ।

♦ आठवें गुणस्थानक में अंतिम तीन संघयण दूर होता है ।

♦ बारहवें व तेरहवें गुणस्थानक में दूसरा व तीसरा संघयण दूर होता है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
37	ज्ञानावरणीय के बंध स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0	0	0
38	ज्ञानावरणीय के उदय स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0
39	ज्ञानावरणीय के सत्ता स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0
40	दर्शनावरणीय के बंध स्थान 3	9	9	6	6	6	6	6	6,4	4	4	0	0	0	0
41	दर्शनवरणीय के उदय स्थान 2	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	5,4	0	0
42	दर्शनवरणीय के सत्ता स्थान 3	9	9	9	9	9	9	9	9,6	9,6	9,6	9,6	6,4	0	0
43	वेदनीय के बंध स्थान 1	शाता/अथवा अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	0
44	वेदनीय के उदय स्थान 1	शाता/अथवा अशाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता/अ-शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता	शाता
45	वेदनीय के सत्ता स्थान 2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
46	मोहनीय के बंध स्थान 10	22	21	17	17	13	9	9	9	5,4,3,2,1	0	0	0	0	0
47	मोहनीय के उदय स्थान 1	7,8,9,10	7,8,9	7,8,9	6,7,8	5,6,7,8	4,5,6,7	4,5,6,7	4,5,6	2,1,1,1	1	0	0	0	0

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
48	मोहनीय के सत्ता स्थान 15	28 27 26	28	28 27 24	28 24 23 22 21	28 24 23 22 21	28 24 23 22 21	28 24 23 22 21	28 24 21 1 12/ 11/ 5/ 4/ 3/ 2/1	28/ 24/ 21/ 13/ 12/ 11/ 5/ 4/ 3/ 2/1	28 24 21 1	28	0	0	0
49	आयु के बंध स्थान 1	1	1	0	1	1	1	1	0	0	0	0	0	0	0
50	आयु के उदय स्थान 1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
51	आयु के सत्ता स्थान 1	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1 या 2	1	1	1

ज्ञानावरणीय – कर्म का पांच प्रकृति का बंध स्थान एक है । उदय व सत्ता स्थान भी एक है ।

दर्शनावरणीय – पहले व दूसरे गुणस्थान में 9 का बंध स्थान है ।

तीसरे गुणस्थानक से आठवें गुणस्थानक के पहले भाग में छह का बंध स्थान है । छह के बंध में तीन निद्राएं (निद्रा निद्रा, प्रचला-प्रचला व स्त्यानर्द्धि) दूर होती हैं ।

♦ आठवें गुणस्थानक के दूसरे भाग से लेकर दसवें गुणस्थानक तक निद्रा व प्रचला दूर होने से चार का बंध स्थान है ।

इस प्रकार दर्शनावरणीय के 9, 6 व 4 ये तीन बंध स्थान है ।

♦ चार के उदय स्थान में चक्षु आदि चार समझने चाहिये और पांच के उदयस्थान में जिस गुणस्थान में जिस निद्रा का उदय हो, उसे जोड़ना चाहिये ।

♦ पहले गुणस्थानक से ग्यारहवें गुणस्थानक तक नौ का एक सत्ता स्थान है ।

♦ उपशम श्रेणि व क्षपक श्रेणि की अपेक्षा से नौवें गुणस्थानक के प्रथम भाग तक 9 की सत्ता होती है । नौवें के दूसरे भाग से लेकर बारहवें के चरम दो समय तक स्त्यानर्धित्रिक का क्षय होने से 6 की सत्ता होती हैं । बारहवें के चरम समय में निद्रा द्विक का क्षय होने से चार की सत्ता समझनी चाहिये ।

वेदनीय—शाता व अशाता का परस्पर विपर्यय होने से बंध स्थान एक ही समझना चाहिये ।

शाता व अशाता का समकाल में एक साथ उदय नहीं होने से एक ही उदय स्थान समझना चाहिये ।

♦ वेदनीय के सत्ता स्थान पर शाता और अशाता दो हैं । यदि शाता का क्षय हुआ हो तो अशाता की सत्ता व अशाता का क्षय हुआ हो तो शाता की सत्ता समझनी चाहिए ।

मोहनीय — मोहनीय के 10 बंध स्थान हैं ।

(1) 22 का बंध स्थान—सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, दो वेद तथा हास्य युगल अथवा अरति युगल इस प्रकार छह कम होने पर 22 का बंध होता है ।

(2) 21 का बंध स्थान—मिथ्यात्व दूर होने पर 21 का बंध होता है ।

(3) 17 का बंध स्थान—अनंतानुबंधी चार कषाय दूर होने पर 17 का बंध होता है ।

(4) 13 का बंध स्थान—अप्रत्याख्यानीय चार कषाय दूर होने पर 1 का बंध होता है ।

(5) 9 का बंध स्थान—प्रत्याख्यानीय चार कषाय दूर होने पर 1 का बंध होता है ।

(6) 5 का बंध स्थान—हास्य, रति, भय व जुगुप्सा दूर होने पर 5 का बंध होता है ।

नौवें के पहले भाग में 5 का बंध होता है । दूसरे भाग में पुरुषवेद दूर होने से 4 का बंध होता है । तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध दूर होने से 3 का बंध, चौथे भाग में संज्वलन मान दूर होने से 2 का बंध व पांचवें भाग में माया दूर होने से 1 का बंध होता है ।

मोहनीय के उदय स्थान—पश्चानुपूर्वी से—दसवें गुणस्थान में एक संज्वलन लोभ का उदय होता है ।

नौवें गुणस्थान में एक के उदय में क्रोध अथवा मान अथवा माया अथवा लोभ का उदय व दो के उदय में एक कषाय व एक वेद समझना चाहिए ।

♦ आठवें गुणस्थान में हास्य व रति जुड़ने से चार का उदय होता है, भय जुड़ने से पांच का जुगुप्सा जुड़ने पर छह का उदय होता है ।

♦ सातवें व छठे गुणस्थान में किसी एक प्रत्याख्यानीय कषाय का उदय जुड़ने पर सात का उदय होता है ।

पांचवें गुणस्थानक अनंतानुबंधी चार कषाय में से एक जुड़ने पर आठ का उदय होता है ।

♦ चौथे व तीसरे गुणस्थानक अनंतानुबंधी चार कषाय में से एक जुड़ने पर नौ का उदय है ।

♦ मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिथ्यात्व जुड़ने से 10 का उदय होता है । इस प्रकार मोहनीय के नौ उदय स्थान हैं ।

पूर्वानुपूर्वी से उदय स्थान – मिथ्यात्व गुणस्थान में चार अन्य उदय स्थान हैं ।

(1) 7 का उदयस्थान – मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानीय कषाय में से एक कषाय, प्रत्याख्यानीय कषाय में से एक कषाय, संज्वलन कषाय में से एक कषाय । ऐसा क्यों ? इसका कारण यह है कि एक चतुष्क के क्रोध आदि का वेदन करने पर सभी क्रोध का वेदन करते हैं, इसी प्रकार मान आदि का भी । तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति अथवा शोक अरति इन दो युगल में से एक युगल ।

(2) 8 का उदय स्थान – आठ के उदय में भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनंतानुबंधी चार में से एक कषाय एवं पूर्वोक्त सात हैं ।

(3) 9 का उदय स्थान – नौ के उदय में अनंतानुबंधी एक कषाय, भय और पूर्वोक्त सात अथवा अनंतानुबंधी एक कषाय, जुगुप्सा तथा पूर्वोक्त सात अथवा भय जुगुप्सा और पूर्वोक्त सात हैं ।

(4) 10 का उदय स्थान – दस के उदय स्थान में अनंतानुबंधी एक कषाय, भय तथा जुगुप्सा और पूर्वोक्त सात हैं ।

दूसरे गुणस्थान में सात के उदय में चार चतुष्क कषाय में से स्वजातीय एक-एक अर्थात् चार कषाय, हास्य - रति और शोक - अरति में से एक युगल तथा कोई भी एक वेद ये सात समझने चाहिये ।

आठ के उदय में भय अथवा जुगुप्सा जुड़ती हैं ।

नौ के उदय में भय और जुगुप्सा दोनों जुड़ती हैं ।

इसी प्रकार तीसरे गुणस्थानक में समझना चाहिये ।

♦ चौथे गुणस्थानक में छह का उदय उपशम समकिती अथवा क्षायिक समकिती को होता है । छह के उदय में अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन कषाय में स्वजातीय एक-एक कषाय, तीन वेद में से एक वेद और हास्य - रति व शोक - अरति के युगल में से एक युगल समझना चाहिये ।

♦ सात के उदय में भय अथवा जुगुप्सा अथवा समकित मोहनीय जुड़ता है ।

♦ आठ के उदय में समकित मोहनीय, भय अथवा समकित मोहनीय, जुगुप्सा अथवा भय और जुगुप्सा ये दो जुड़ते हैं ।

♦ नौ के उदय में समकित मोहनीय, भय और जुगुप्सा ये तीनों जुड़ते हैं ।

♦ पांचवें गुणस्थान में पांच का उदय, प्रत्याख्यानीय एक कषाय, संज्वलन एक कषाय, एक वेद और हास्य - रति व शोक अरति के दो युगल समझने चाहिये ।

♦ छह के उदय में भय अथवा जुगुप्सा अथवा समकित मोहनीय जुड़ता हैं ।

♦ सात के उदय में भय-जुगुप्सा अथवा भय-समकित मोहनीय अथवा समकित मोहनीय-जुगुप्सा ये दो जुड़ते हैं ।

♦ आठ के उदय में भय, जुगुप्सा और समकित मोहनीय ये तीनों जुड़ते हैं ।

♦ छठे गुणस्थानक में चार के उदय में संज्वलन एक कषाय, एक वेद और हास्य-रति व शोक-अरति में से एक युगल समझना चाहिये । क्षायिक व उपशम समकिती को चार का उदय होता है ।

♦ पूर्व की तरह भय, जुगुप्सा और समकित मोहनीय को जोड़ने से 5, 6 और 7 का उदय होता है ।

♦ सातवें गुणस्थानक में छठे की तरह होता है ।

♦ आठवें-नौवें का पहले लिखा जा चुका है ।

मोहनीय के 15 सत्ता स्थान—मोहनीय की सर्व सत्ता 28 हैं। समकित मोहनीय रहित 27 हैं । मिश्र मोहनीय रहित 26 है 26 की सत्ता अभव्य को होती हैं ।

अनंतानुबंधी चार का क्षय होने पर 24 की सत्ता होती हैं । मिथ्यात्व का क्षय होने पर 23 की सत्ता, मिश्र मोहनीय का क्षय होने पर 22 की सत्ता, समकित मोहनीय का क्षय होने पर 21 की सत्ता, अप्रत्याख्यानीयप्रत्याख्यानीय कषाय का क्षय होने पर 13 की सत्ता, नपुंसक का क्षय होने पर 12 की सत्ता, स्त्रीवेद का क्षय होने पर 11 की सत्ता, हास्यादि छह का क्षय होने पर 5 की सत्ता, पुरुषवेद का क्षय होने पर 4 की सत्ता, संज्वलन क्रोध का क्षय होने पर 3 की सत्ता, संज्वलन मान का क्षय होने पर 2 की सत्ता, संज्वलन माया का क्षय होने पर 1 की सत्ता- इस प्रकार मोहनीय कर्म के 15 सत्ता स्थान हैं।

आयुष्य कर्म — जब तक परभव के आयुष्य का बंध नहीं किया हो तब तक जिस आयु का उदय हो उसी की सत्ता समझनी चाहिये । परभव का आयुष्य बांधने पर दो की सत्ता होती हैं । नरकायु का बंध किया होने पर ग्यारहवां गुणस्थानक पा सकते हैं, इस कारण ग्यारहवें गुणस्थानक तक एक अथवा दो की सत्ता कही गई हैं ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
52	नाम कर्म के बंध स्थान 8	23, 25, 26, 28, 29, 30	28, 29, 30	28, 29	29, 28, 30	28, 29	28, 29	28, 29, 30, 31	28, 29, 30, 31	1	1	0	0	0	0
53	नाम कर्म के उदय स्थान- 12 (21/24, 25/26, 27/28, 29, 30, 31) 20, 8, 9	21/ 24, 25/ 26, 29/ 30	29, 30 31	21/ 25, 26, 27, 28/ 29, 30/ 31	25/ 27, 28, 29, 30	25, 27, 28, 29, 30	29, 30	30	30	30	30	30	20, 26, 28, 30,	21, 27, 29, 31	8,9
54	नाम कर्म के सत्ता स्थान 12	92/ 89, 88/ 86, 80/ 78	92, 88	92, 88	93, 92, 89, 88	93, 92, 89, 88	93, 92, 89, 88	93, 92, 89, 88	93, 92, 89, 88	93, 89, 80, 76	92, 88, 79, 75	93, 92, 79, 88	93, 92, 89, 88	80, 79, 76, 75	80, 79, 76, 75 9/8
55	गोत्र कर्म का बंध स्थान 1	उच्च अथ- वा नीच	उच्च नीच	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	0	0	0	0
56	गोत्र कर्म का उदय स्थान 1	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च या नीच	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च
57	गोत्र का सत्ता स्थान 2	उच्च या नीच	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"	11 22

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
58	अंतराय का बंध स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0	0	0
59	अंतराय का उदय स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0
60	अंतराय का सत्ता स्थान 1	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0	0

नाम कर्म के 8 बंध स्थान—

तिर्यच गति योग्य 5 बंध स्थान— 23/25/26/29/30 एकेन्द्रिय गति प्रायोग्य 23, 25 और 26 के तीन बंध स्थान हैं। 23 का बंध स्थान तिर्यच गति, तिर्यच आनुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्मण, हुंडक संस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म अथवा बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक अथवा साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण ये 23 प्रकृतियां एकेन्द्रिय अपर्याप्त में आने वाले मिथ्यात्वी बांधते हैं।

इसी में पराघात और उच्छ्वास जोड़ने पर ये 25 प्रकृतियां एकेन्द्रिय पर्याप्ता में जाने वाला मिथ्यात्वी बांधता है, परंतु इनमें इतना विशेष है कि स्थिर या अस्थिर, शुभ या अशुभ और यश या अपयश इनमें से कोई तीन बांधते हैं।

26 के बंध में—23 में से प्रथम तेरह और पराघात, उच्छ्वास, आतप अथवा उद्योत, बादर, स्थावर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर अथवा अस्थिर, शुभ अथवा अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश अथवा यश और निर्माण, ये 26 प्रकृतियां एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त में जाने वाला मिथ्यात्वी बांधता है।

बेइन्द्रिय योग 25, 29 और 30 के बंध स्थान—

25 का बंध स्थान—तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, बेइन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस, कार्मण, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, औदारिक अंगोपांग, वर्ण आदि चार, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अपयश और निर्माण। अपर्याप्त बेइन्द्रिय में जाने वाला मिथ्यात्वी इन 25 का बंध करता है।

जो मिथ्यात्वी बेइन्द्रिय पर्याप्त में जाने वाला हो वह 29 का बंध करता है। उपरोक्त 25 में अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त व स्थिर अथवा अस्थिर, शुभ अथवा अशुभ, यश अथवा अपयश का बंध करता है तथा अन्य पराघात, उच्छ्वास, अशुभ विहायोगति और दुःस्वर इन चार का बंध करता है।

तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय में भी इसी प्रकार बंध होता है, सिर्फ जाति बदलने की होती है।

तिर्यच पंचेन्द्रिय के 25, 29 और 30 के तीन बंध स्थान—

पच्चीस का बंध बेइन्द्रिय की तरह समझना चाहिये, सिर्फ जाति में बेइन्द्रिय के स्थान पर पंचेन्द्रिय समझना चाहिये।

29 का बंध—तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-द्विक, तैजस, कर्मण, छहसंघयण में से एक संघयण, छह संस्थान में से एक संस्थान, वर्ण आदि चार, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, शुभविहायोगति व अशुभ विहायोगति में से एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर या अस्थिर, शुभ या अशुभ, सुभग या दुर्भग, सुस्वर अथवा दुःस्वर, आदेय या अनादेय, यश अथवा अपयश और निर्माण। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच में जाने वाला मिथ्यात्वी 29 का बंध करता है।

यदि सास्वादन गुणस्थानक में 29 का बंध हो तो हुंडक संस्थान व सेवार्त संघयण को छोड़कर पांच में से एक संघयण व संस्थान का बंध समझना चाहिये।

30 के बंध में उद्योत का बंध जोड़ना चाहिये। तिर्यच पंचेन्द्रिय पर्याप्त में जाने वाला मिथ्यात्वी 30 का बंध करता है।

मनुष्य के 25, 29 व 30 के तीन बंध स्थान — 25 का बंध बेइन्द्रिय की तरह समझना चाहिये। सिर्फ मनुष्य गति, मनुष्य आनुपूर्वी और पंचेन्द्रिय जाति में परिवर्तन समझना चाहिये। मनुष्य अपर्याप्त में जाने वाला मिथ्यात्वी 25 का बंध करता है।

29 का बंध — 29 का बंध तीन प्रकार से होता है — (1) मिथ्यात्व गुणस्थान आश्रित (2) सास्वादन गुणस्थान आश्रित और (3) मिश्र अविरति गुणस्थान आश्रित। मिथ्यात्व व सास्वादन गुणस्थान में 29 का बंध बेइन्द्रिय की तरह समझना चाहिये।

मिश्र अविरति गुणस्थान आश्रित 29 का बंध-मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक द्विक, तैजस कर्मण, समचतुरस्र संस्थान, वज्ररूषभनाराच संघयण, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर या अस्थिर, शुभ या अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश या अपयश और निर्माण।

इसी में तीर्थकर नाम कर्म जोड़ने पर 30 का बंध समझना चाहिये।

देव गति योग्य 28, 29, 30 और 31 के चार बंध स्थान—

28 का बंध—देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियद्विक, तैजस, कर्मण, प्रथम संस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, शुभ विहायोगति, त्रस, बादर, प्रत्येक, पर्याप्त, स्थिर या अस्थिर, शुभ या अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश या अपयश और निर्माण।

इन 28 का बंध पहले से छठे गुणस्थानक तक है।

नाम कर्म के 28 के बंध स्थान का एक भाग 7वें गुणस्थान में तथा वैसा ही 1 भंग 8वें गुणस्थान में प्राप्त होता है। यहां देव प्रायोग्य बंध होता है।

उपरोक्त 28 में जिन नाम का प्रक्षेप करने पर 29 का बंध चौथे से आठवें गुणस्थानक तक प्राप्त होता है।

7वें तथा 18वें गुणस्थान में उपरोक्त 28 बंध स्थान में आहारक द्विक का प्रक्षेप कर 30 के बंध स्थान का 1-1 भंग 7वें व 8वें गुणस्थान में प्राप्त होता है। उपरोक्त 30 के बंधस्थान में जिन नाम का प्रक्षेप करने पर 31 का बंध स्थान भी 7वें व 8वें गुणस्थान में प्राप्त होता है, जिनका 1-

1 भंग है। यश नाम की 1 प्रकृति का बंध स्थान 8वें गुणस्थान के 7वें भाग में तथा 9वें तथा 10वें गुणस्थान में प्राप्त होता है, तीनों गुणस्थान में 1-1 भंग है।

नाम कर्म के 20, 21, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 8 और 9 के कुल बारह उदय स्थान—

एकेन्द्रिय योग्य उदय स्थान—एकेन्द्रिय के 21, 24, 25, 26 और 27 ये पांच उदय स्थान हैं। 21 का उदय स्थान-तैजस, कर्मण, अगुरुलघु, अस्थिर, स्थिर, शुभ, अशुभ, वर्ण आदि चार और निर्माण ये बारह ध्रुवोदयी तथा तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त या अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय, यश अथवा अपयश इत्यादि।

एकेन्द्रिय जब विग्रहगति में होते हैं तब 21 का उदय होता है शरीर बनाने पर 24 का उदय होता है।

24 का उदय—पूर्वोक्त 21 में से तिर्यचानुपूर्वी कम करें और औदारिक शरीर, हुंडक, संस्थान, उपघात और प्रत्येक अथवा साधारण जोड़ने पर 24 का उदय होता है। एकेन्द्रिय को 24 का उदय शरीर पर्याप्ति पूरी करने के बाद होता है।

25 का उदय—बादर वायुकाय को वैक्रिय शरीर करते समय शरीर पर्याप्ति पूरी होती है वहां पराघात का प्रक्षेप करने पर तथा औदारिक के स्थान पर वैक्रिय डालने पर 25 का उदय होता है।

26 का उदय—25 में उच्छ्वास जोड़ने पर 26 का उदय होता है अथवा शरीर पर्याप्ति पूरी होने पर यदि उच्छ्वास का उदय न हो तो उच्छ्वास निकाल कर आतप अथवा उद्योत में से एक लेने पर 26 का उदय होता है।

27 का उदय—26 में जो उच्छ्वास हैं, उन 26 में आतप अथवा उद्योत एक डालने पर 27 का उदय होता है।

बेइन्द्रिय के छह उदय स्थान—बेइन्द्रिय के 21, 26, 28, 29, 30 व 31 ये छह उदय स्थान हैं।

21 का उदय—नाम कर्म की ध्रुवोदयी 12 तथा तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, बेइन्द्रिय जाति, त्रस, नाम, बादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त, दुर्भग, अनादेय तथा यश अथवा अपयश ये सब मिलाने पर 21 होती हैं। बेइन्द्रिय जब वक्रगति करता है, तब 21 का उदय होता है।

26 का उदय—उपरोक्त 26 में से तिर्यचानुपूर्वी हटाकर औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, उपघात और प्रत्येक इन छह का प्रक्षेप करने पर 26 का उदय होता है।

28 का उदय—26 में अशुभविहायोगति और पराघात का प्रक्षेप करने पर 28 का उदय होता है।

29 का उदय—28 में उच्छ्वास डालने पर 29 का उदय (यदि उच्छ्वास का उदय न हुआ हो और शरीर पर्याप्ति हुई हो तो उद्योत का प्रक्षेप करें।)

30 का उदय—उच्छ्वास वाली 29 में दुःस्वर व सुस्वर डालने पर 30 का उदय होता है। श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूरी हुई हो किंतु स्वर का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत का प्रक्षेप करता है।

31 का उदय—29 में सुस्वर व उद्योत अथवा दुःस्वर व उद्योत का प्रक्षेप करने पर 31 का उदय होता है ।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय के उपरोक्त छह उदय स्थान हैं, केवल बेइन्द्रिय के स्थान पर तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय की जाति रखनी चाहिए ।

तिर्यच पंचेन्द्रिय के 21, 26, 28, 29, 30 और 31 आदि छह उदय स्थान—

21 का उदय—नाम कर्म की 12 ध्रुवोदयी तथा तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त या अपर्याप्त, सुभग या दुर्भग, आदेय या अनादेय तथा यश अथवा अपयश ये 9 जोड़ने पर 21 का उदय होता है । तिर्यच विग्रह गति में हो तब 21 का उदय होता है ।

26 का उदय—21 के उदय में से तिर्यचानुपूर्वी हटाकर औदारिक द्विक, छह संस्थान में से एक संस्थान, छह संघयण में से एक संघयण, उपघात व प्रत्येक इन छह का प्रक्षेप करने पर 26 का उदय होता है ।

28 का उदय—शरीर पर्याप्ति होने पर 26 में पराघात, प्रशस्त या अप्रशस्त विहायोगति का प्रक्षेप करने पर 28 का उदय होता है।

29 का उदय—28 में उच्छ्वास का प्रक्षेप करने पर 29 का उदय अथवा शरीर पर्याप्ति पूर्ण हुई हो किंतु उच्छ्वास का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत डालने पर 29 का उदय होता है ।

30 का उदय—29 में स्वर डालने पर 30 का उदय होता है । अथवा 29 में स्वर डालने पर 30 का उदय होता है।

31 का उदय—30 के उदय में उद्योत का प्रक्षेप करने पर 31 का उदय होता है ।

तिर्यच पंचेन्द्रिय द्वारा वैक्रिय शरीर करने पर 25, 27, 28, 29 व 30 के 5 उदय स्थान—

25 का उदय—पंचेन्द्रिय तिर्यच को जो 21 गई उसमें से तिर्यचानुपूर्वी निकालने पर 20 रहती है, उसमें वैक्रिय द्विक, प्रथम संस्थान, उपघात व प्रत्येक — इन 5 का प्रक्षेप करने पर 25 का उदय होता है ।

27 का उदय—शरीर पर्याप्ति पूरी होने पर प्रशस्त विहायोगति व पराघात का प्रक्षेप करने पर 27 का उदय होता है ।

28 का उदय—27 में उच्छ्वास जोड़ने पर 28 का उदय होता है अथवा शरीर पर्याप्ति पूरी की हो किंतु उच्छ्वास का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत डालने पर 28 का उदय होता है ।

29 का उदय—भाषा पर्याप्ति पूरी होने पर उच्छ्वास सहित 28 व सुस्वर डालने पर 29 का उदय होता है अथवा उच्छ्वास की पर्याप्ति पूरी हुई हो किंतु स्वर का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत डालने पर 29 का उदय होता है ।

30 का उदय—29 के उदय में उद्योत डालने पर 30 का उदय होता है ।

सामान्य मनुष्य के 21, 26, 28, 29 और 30 के पांच उदय स्थान—

21, 26 व 28 का उदय तिर्यच पंचेन्द्रिय के समान समझना चाहिये केवल तिर्यच गति व तिर्यचानुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति व मनुष्यानुपूर्वी समझना चाहिए ।

29 का उदय—28 के उदय में उद्योत का प्रक्षेप करने पर 29 का उदय होता है ।

30 का उदय—28 में उच्छ्वास तथा सुस्वर अथवा दुःस्वर ये दो डालने पर 30 का उदय होता है । 28 में उद्योत मिलने पर 29 का उदय स्थान प्राप्त होता है, उद्योत का उदय वैक्रिय अथवा आहारक शरीरधारी मनुष्य का है । यहां उद्योत का उदय आहारक शरीर व वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से है, एकेन्द्रियादि की अपेक्षा से नहीं ।

वैक्रिय शरीर बनाने पर मनुष्य के 25, 27, 28, 29 व 30 के पांच उदय स्थान—

25 का उदय—मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय द्विक, प्रथम संस्थान, उपघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग, अथवा दुर्भग, आदेय अथवा अनादेय, यश अथवा अपयश—ये 13 तथा ध्रुवोदयी 12 जोड़ने पर 25 का उदय होता है ।

देश विरति तथा संयत जब वैक्रिय शरीर करता है, तब उसकी सर्व प्रकृति प्रशस्त समझनी चाहिये ।

27 का उदय—शरीर पर्याप्ति पूरी होने पर पराघात व प्रशस्त विहायोगति का प्रक्षेप करने पर 27 का उदय होता है ।

28 का उदय—27 में उच्छ्वास डालने पर 28 का उदय होता है अथवा संयत को उत्तर वैक्रिय शरीर करते समय, शरीर पर्याप्ति करते समय उच्छ्वास का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत डालने पर 28 का उदय होता है ।

29 का उदय—भाषा पर्याप्ति पूरी करने पर उच्छ्वास व सुस्वर को 27 में जोड़ने पर 29 का उदय होता है । संयत को यदि स्वर का उदय न हो तो उद्योत डालने पर 29 का उदय होता है ।

30 का उदय—29 में उद्योत का प्रक्षेप करने पर 30 का उदय होता है ।

आहारक शरीर बनाते समय साधु को 25, 27, 28, 29 व 30 के पांच उदय स्थान—

25 का उदय—मनुष्य गति की जो प्रकृतियां 21 कहीं हैं उसमें से आनुपूर्वी निकालकर आहारक द्विक, प्रथम संस्थान, उपघात व प्रत्येक इन 5 का प्रक्षेप करने पर 25 का उदय होता है परंतु यहां दुर्भग, अनादेय व अयश नहीं होता है, यहां तीनों प्रशस्त समझनी चाहिये ।

27 का उदय—शरीर पर्याप्ति पूरी होने पर 25 के उदय में पराघात व प्रशस्त विहायोगति ये दो डालने पर 27 का उदय होता है ।

28 का उदय—27 में उच्छ्वास का प्रक्षेप करने पर 28 का उदय होता है अथवा उच्छ्वास का उदय न हो तो उद्योत डालने पर 28 का उदय होता है । भाषा पर्याप्ति हुई हो तो उच्छ्वास सहित 28 का उदय होता है ।

29 का उदय—28 में सुस्वर सहित 29 का उदय होता है अथवा उच्छ्वास पर्याप्ति हुई हो और स्वर का उदय न हो तो उद्योत डालने पर 29 का उदय होता है ।

30 का उदय—स्वर सहित 29 के उदय में उद्योत डालने पर 30 का उदय होता है ।

केवली के 20, 21, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 9 और 8 के दस उदय स्थान—

20 का उदय—मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय और यश ये आठ तथा नामकर्म की 12 ध्रुवोदयी । इन 20 का उदय सामान्य केवली के समुद्घात करते समय तीसरे चौथे व पांचवें समय में सिर्फ कार्मणकाय योग में रहते समय होता है ।

21 का उदय—तीर्थकर नामकर्म का प्रक्षेप करने पर 21 का उदय होता है ।

26 का उदय—20 में औदारिक द्विक, छह संस्थान में से एक संस्थान, प्रथम संघयण, उपघात और प्रत्येक इन छह का प्रक्षेप करने पर 26 का उदय होता है । इन 26 का उदय सामान्य केवली को केवली समुद्घात के दूसरे, छठे व सातवें समय में औदारिक मिश्र योग में वर्तते समय होता है ।

27 का उदय—26 में तीर्थकर नाम का प्रक्षेप करने पर 27 का उदय होता है । तीर्थकर केवली, केवली समुद्घात के समय औदारिक मिश्र योग में होते हैं तब यह भंग होता है ।

30 का उदय—26 में पराधात, उच्छ्वास, प्रशस्त या अप्रशस्त विहायोगति, सुस्वर या दुःस्वर इन बारका प्रक्षेप करने पर 30 का उदय होता है । इन 30 का उदय सामान्य केवली को केवली समुद्घात के पहले व आठवें समय में औदारिक काय योग में रहते समय होता है ।

31 का उदय—30 में तीर्थकर नामकर्म का प्रक्षेप करने पर 31 का उदय होता है । इन 31 का उदय सायोगी केवली तीर्थकर को औदारिक काययोग में रहते समय होता है ।

सायोगी केवली जब वचन योग का निरोध करते हैं तब 30 का उदय होता है, उच्छ्वास का निरोध करते हैं तब 29 का उदय होता है । यहां सामान्य केवली को पुनः 30 का उदय कहा है । उसमें से वचन योग का निरोध करने पर 29 का उदय तथा उच्छ्वास का निरोध करे 42, 28 का निरोध होता है ।

9 का उदय—मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश व तीर्थकर नाम कर्म । तीर्थकर को 14वें गुणस्थानक के चरम समय में 9 का उदय होता है ।

8 का उदय—सामान्य केवली को तीर्थकर नाम कर्म सिवाय आठ का उदय (14वें चरम समय में) होता है ।

देवता के 21, 25, 27, 29 व 30 के छह उदय स्थान—

21 का उदय—देव गति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग या दुर्भग आदेय या अनादेय, यश या अपयश ये नौ तथा 12 ध्रुवोदयी का उदय विग्रह गति में होता है ।

25 का उदय—अपर्याप्त अवस्था में शरीर बनाते समय 21 में से देवानुपूर्वी निकालने पर और वैक्रिय द्विक, उपघात, प्रत्येक और समचतुरस्र संस्थान का प्रक्षेप करने पर 25 का उदय होता है ।

27 का उदय—शरीर पर्याप्ति पूरी करने पर पराधात व प्रशस्त विहायोगति का प्रक्षेप करने पर 27 का उदय होता है ।

28 का उदय—27 में उच्छ्वास जोड़ने पर 28 का उदय होता है, यदि उच्छ्वास का उदय न हो तो उद्योत डालने पर 28 का उदय होता है ।

29 का उदय—भाषा पर्याप्ति पूरी होने पर 28 में स्वर का प्रक्षेप करने पर 29 का उदय होता है । यदि स्वर का उदय नहीं हुआ हो तो उद्योत डालने पर 29 का उदय होता है ।

देवता को दुःस्वर का उदय नहीं होता । उत्तर वैक्रिय करते समय देवता को उद्योत का लाभ होता है । 28 में स्वर सहित 29 व उद्योत जोड़ने पर 30 का उदय होता है ।

नारकी को 21, 25, 27, 28 व 29 के पांच उदय स्थान—

21 का उदय—नरक गति, नरकानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय व अपयश आदि नौ तथा 12 ध्रुवोदयी जोड़ने पर 21 का उदय होता है।

25 का उदय—अपर्याप्त अवस्था में शरीर बनाते समय नरकानुपूर्वी निकालने पर और वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, हुंडक संस्थान, उपघात व प्रत्येक—इन पांच में 20 प्रक्षेप करने पर 25 का उदय होता है।

27 का उदय—25 में पराघात व अप्रशस्त विहायोगति का प्रक्षेप करने पर 27 का उदय होता है।

28 का उदय—28 में उच्छ्वास डालने पर 28 का उदय होता है।

29 का उदय—भाषा पर्याप्ति पूरी होने पर 28 में दुःस्वर जोड़ने पर 29 का उदय होता है।

यह उदय अधिकार गहन है अतः भूल हो तो संप्रति सूत्र से शुद्ध कर लें।

नाम कर्म के 93, 92, 89, 88, 86, 80, 79, 78, 76, 75, 9 व 8 ये बारह सत्ता स्थान हैं।

सर्व सत्ता 93 हैं—तीर्थकर नाम कर्म दूर होने पर 92 की सत्ता होती है।

93 में से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन व आहारक बंधन ये चार दूर करने पर 89 की सत्ता होती है।

89 में से तीर्थकर नाम कर्म दूर करने पर 88 की सत्ता होती है।

88 में से नरक गति व नरकानुपूर्वी दूर होने पर 86 की सत्ता होती है।

86 में से देव गति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, वैक्रिय संघानत और वैक्रिय बंधन दूर होने पर 80 की सत्ता होती हैं।

नरक गति योग्य 80 में 1 नरक गति 2 नरकानुपूर्वी 3-6 वैक्रिय चतुष्क डालने पर 86 की सत्ता होती है। अथवा 80 में 1 देवगति 2 देवानुपूर्वी 3-6 वैक्रिय चतुष्क ये छह डालने पर देवगति योग्य 86 की सत्ता समझनी चाहिये।

80 में से मनुष्य गति तथा 2 मनुष्यानुपूर्वी ये दो दूर होने पर 78 की सत्ता होती है।

ये पूर्वोक्त 7 स्थान संसारी जीव को नहीं होते, क्षपक—श्रेणी में यह सत्ता समझनी चाहिये।

93 में से 1-2 नरक द्विक 3-4 तीर्थच द्विक 5-8 एकेन्द्रिय आदि चार जाति, 9 स्थावर 10 आतप 11 उद्योत 12 सूक्ष्म व 13 साधारण ये 13 दूर होने पर क्षपक श्रेणी में 80 की सत्ता होती है। तीर्थकर नाम कर्म दूर होने पर 79 की सत्ता होती है।

89 में से ये ही 13 दूर होने पर 76 की सत्ता रहती है।

88 में से 13 दूर होने पर क्षपक को 75 की सत्ता होती है।

अयोगी गुणस्थानक में अंतिम समय में तीर्थकर को 1 मनुष्य गति 2 पंचेन्द्रिय 3 त्रस 4 बादर 5 पर्याप्त 6 सुभग 7 आदेय 8 यश और 9 तीर्थकर—इन नौ की सत्ता होती है और सामान्य केवली को तीर्थकर नाम कर्म बिना 8 की सत्ता होती है।

61	ज्ञानावरणीय भंग	15	15	15	15	15	15	15	15	15	15	1	1	0	0
												दूसरा	दूसरा		

ज्ञानावरणीय के दो भंग, बंध 5 का, उदय 5 का, सत्ता 5, 1 बंध नहीं, उदय 5, सत्ता 5

62	दर्शनावरणीय के भंग 11	1, 2,2	1,2	3,4	3,4	3,4	3,4	3,4	3,4	5, 5,6	5, 6,7	8,9 6,7	10 11	000 0	000 0
	अंक संख्या	1	2	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	0
	बंध	9	9	9	9	6	6	4	4	4	0	0	0	0	0
	उदय	4	5	4	5	4	5	4	5	4	5	5	4	4	0
	सत्ता	9	9	9	9	9	9	9	9	6	6	9	6	4	0

ऊपर के कोष्ठक में दर्शनावरणीय के 11 भंग हैं ।

63	वेदनीय के भंग गुणस्थान ऊपर 8	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	3,4	3, 4,	3,4	3,4	3,4	3,4	3,4	5, 6, 7,8
----	------------------------------	-----------	-----------	-----------	-----------	-----------	-----------	-----	-------	-----	-----	-----	-----	-----	-----------

अंक	भंग रचना अंक	1	2	3	4	5	6	7	8
0	बंध	अशाता	अशाता	शाता	शाता	0	0	0	0
0	उदय	अशाता	शाता	अशाता	शाता	अशाता	शाता	अशाता	शाता
0	सत्ता	अशाता शाता						"	"

निम्नोक्त कोष्ठक वेदनीय के बंध उदय और सत्ता के संबंध का है । अयोगी 14वें गुणस्थान के द्विचरम समय में 5वां और छठा भंग उपलब्ध होता है एवं 7वां भंग चरम समय का क्रमशः शाता और अशाता के क्षय से उपलब्ध होता है ।

देवता का कोष्ठक-5

अंक	1	2	3	4	5
बंध	0	म.	ति	0	0
उदय	दे	दे	दे	दे	दे
सत्ता	दे	दे.म.	दे.ति.	दे.म.	दे.ति.

मनुष्य का कोष्ठक-9

अंक	6	7	8	9	10	11	12	13	14
बंध	0	दे	म	ति	न	0	0	0	
उदय	म	म	म	म	म	म	म	म	म
सत्ता	म	म.दे.	म.म.	म.ति.	म.न.	म.दे.	म.म.	म.ति.	म.न.

तिर्यच कोष्ठक-9

अंक	15	16	17	18	19	20	21	22	23
बंध	0	दे	म	ति	न	0	0	0	
उदय	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.	ति.
सत्ता	ति.	ति.दे.	ति.म.	ति.ति.	ति.न.	ति.दे.	ति.म.	ति.ति.	ति.न.

नरक कोष्ठक-5

अंक	24	25	26	27	28
बंध	0	म.	ति	0	0
उदय	न	न	न	न	न
सत्ता	न	न.म.	न.ति.	न.म.	न.ति.

64	आयु के भंग 28	1,2,3,4,5,6, 7,8,9,11, 12,13,14, 15,16,17, 18,20,21, 22,23,24, 25,26,27,28 कुल 26 भंग । 10 व 19 नहीं है ।	2,3,7, 8,9,10 16,17, 18,19, 25,26 ये 12 नहीं हैं, शेष 16 हैं ।	3,8,9, 10,17 18, 19,26 ये आठ नहीं हैं शेष बीस हैं ।	7,11, 12,13 14,15, 16,20, 21,22 23-ये बारह हैं ।	6,7 11, 12, 13 14, ये छ हैं ।	6,7 11, 12, 13 14, ये छ भंग हैं ।	6 11 ये हैं	6 11 ये हैं	6 11 ये हैं	6 11 ये हैं	6 1 ये हैं	6 1 ही हैं	6 1 हैं
----	---------------	---	--	---	--	-------------------------------	-----------------------------------	-------------	-------------	-------------	-------------	------------	------------	---------

गोत्र के 7 भंग-

(1) तेउकाय-वायुकाय में । (2) मिथ्यात्व-सास्वादन में (3) मिथ्यात्व-सास्वादन में (4) 1, 2, 3, 4, व 5वें गुणस्थानक में (5) 1 से 10 गुणस्थानकों में (6) उपशम से अयोगी द्विचरम में (7) अयोगी के अंतिम समय में ।

अंक संख्या	1	2	3	4	5	6	7
बंध	नीच	नीच	नीच	उच्च	उच्च	0	0
उदय	नीच	नीच	उच्च	उच्च	उच्च	उच्च	
सत्ता	नीच	नीच, उच्च	नीच, उच्च	नीच, उच्च	नीच, उच्च	नीच, उच्च	उच्च

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
65	गोत्र के भंग	1,2 3,4 5	2, 3 4,5	4,5	4,5	5	5	5	5	5	5	6	6	6	6,7
66	अंतरा भंग	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	अंत 1	अंत 1	0	0
67	एक जीव द्वारा राज लोक का स्पर्श	14	12	8	8	6	देशो- न,7	देशो- न,7	देशो- न,7	देशो- न,7	देशो- न,7	देशो- न,7	देशो- न,7	14	देशो- न,7

दूसरे गुणस्थानक वाले को 12 राजलोक का स्पर्श कैसे ?

स्वयंभूरमण समुद्र के पश्चिम दिशा में उत्पन्न सास्वादन गुणस्थान वाला मत्स्य मरकर सातवीं नरक की पृथ्वी में अथवा धनोदधि में समश्रेणि जाकर पीछे तिरछा पूर्व दिशा में साढ़े तीन रज्जु जाए और उसके बाद कोने में ढाई रज्जु जाए - इस प्रकार घनोदधि व पृथ्वी में 12 रज्जु होते हैं । पंचसंग्रह (द्वितीय बंधक द्वार गाथा 32) में कहा है-

**छट्ठाए नेरइउ सासण भावेण एइ तिरिमणुलोए ।
लोगंतनिक्खुडेसु जंतते (तिन्ने) सासण गुणट्ठा (त्था) ॥**

इस गाथा में 12 रज्जू का स्पर्श हो वैसे सोच लेना । मैंने पंचसंग्रह का अर्थ नहीं देखा है, अपने विचार से लिखा है, विचार से लिखना यथायोग्य हो भी और न भी हो । अतः पंडित पुरुष शुद्ध विचार कर जैसा हो वैसा लिख दें । मेरे लिखने का कोई प्रयोजन न समझें ।

तीसरे-चौथे गुणस्थान वाला 8 रज्जू का स्पर्श करता है, उसकी उक्ति पंचसंग्रह के दूसरे बंधक द्वार की 13वीं गाथा से समझ लें-

गाथा-

**सहसारांतिय देवा णारयणेहेण जंति तइय भुवं ।
निज्जंति अच्चुयं जा अच्चुय देवेण इयरसुरा ॥**

बारहवें देवलोक का मिश्र या चौथे गुणस्थान वाला जीव चौथी नरक-पृथ्वी तक जाता है । तीन रज्जू नीचे के और पांच रज्जू 12वें देवलोक के हैं, अतः आठ रज्जू हुए । तीसरी नरक तथा चौथी के नरकावास तक, इस प्रकार तीन रज्जू होते हैं । आगे पंचसंग्रह के अनुसार अर्थ लिख दें । मेरी समझ में जितना आया है, उतना लिखा है ।

श्रावक 12वें देवलोक के कोण में त्रस नाडी के भीतर उत्पन्न हो, उस अपेक्षा से सात रज्जू । पंचसंग्रह से शंका दूर कर लेनी चाहिये ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
68	संज्ञी असंज्ञी द्वार	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	0	0
69	शाश्वत गुण स्थान	शा.	अशा.	अशा.	शा.	शा.	शा.	शा.	अशा.	अशा.	अशा.	अशा.	अशा.	शा.	अशा.

□ सहस्रारान्तिक देवा नारक-स्नेहेन यान्ति तृतीय भुवम् ।
नीयन्तेऽच्युतं यावत् अच्युतदेवेनेतरसुराः ।

सातवां गुणस्थान जैन धर्म में कहीं भी अशाश्वत नहीं कहा है और यदि कोइ कहता है तो वह उसकी भूल है ।

पंचसंग्रह (द्वितीय बंधक द्वार — गाथा 6) में कहा है—

मिच्छा अविश्यदेसा पमत्त अपमत्तया सजोगी य ।

सव्वद्धं इस वचनात् से अशाश्वत नहीं है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
70	जघन्य स्थिति द्वार	अन्तर्मु.	1 समय	अन्त.	अन्त.	अन्त.	अन्त.	1 समय	1 समय	1 समय	1 समय	1 समय	अन्त.	अन्त-मु.	अन्त.
71	उत्कृष्ट स्थिति	अभव्य की अनादि अपर्यवसित	6 आव-लिका	अन्त.	साधि-क 33	देशोन पूर्व करोड़	अन्त.	अन्त.	अन्त.	अन्त.	अन्त.	अन्त.	अन्त.	देशोन पूर्व करोड़	अन्त.
		भव्य की			साग-	वर्ष								वर्ष	
		अनादि			रोपम										
		सपर्यवसित													
		सम्यक्त्व													
		वसित की													
		अन्तर्मुहूर्त													
		न्यून अर्धपु-													
		द्गल परा-													
		वर्त काल													

यहां छठे गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही है, उसका कारण प्रमत्त गुणस्थानक में जीव अन्तर्मुहूर्त ही रहता है और भगवती में प्रमत्त संपत्ति के काल का जो प्रश्न किया है, वह गुणस्थान आश्रित नहीं हैं, वहां तो प्रमत्त के सर्वकाल को संग्रहित कर देशोन करोड़ पूर्व कहा हैं, किंतु छठे गुणस्थान की स्थिति नहीं कही हैं । छठे गुणस्थान की स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त ही कही गई है ।

पंचसंग्रह में कहा है—

समया अंतमुहू पमत्त अपत्तयं भयंति मुणी ।

देसूणा पुव्व कोडीओ (देसूण पुव्व कोडिं) अण्णोणं चिड्ढेहिं (चिड्ढंति) भयंता ॥०

□ मिथ्याविरतदेशा प्रमत्ताप्रमत्तकौ सयोगी च । सर्वाद्धम् ।

○ समयादन्तर्मुहूर्त प्रमत्ततामप्रमत्ततां भजन्ति मुनयः । देशोनपूर्व कोटि मन्योन्यं तिष्ठन्ति भजमानाः ।

अर्थ – एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त तक प्रमत्त-अप्रमत्तता में रहता है । परस्पर दोनों ही गुणस्थानक में मुनि कुछ न्यून पूर्व करोड वर्ष तक रहता है, किंतु अकेले छठे अथवा अकेले सातवें में पूर्व करोड वर्ष तक नहीं रहता है । यह गाथा का अर्थ है ।

शंका हो तो भगवती की टीका में जो कहा है, वह देख लें । मूल पाठ में जो देशोन पूर्व करोड वर्ष कहा है वह प्रमत्त के सर्वकाल को लेकर कहा है, परंतु छठे गुणस्थान आश्रित स्थिती भगवती में नहीं कही है, तथा सातवें गुणस्थानक की स्थिति जघन्य से एक समय की कही है और भगवती में सर्व अप्रमत्त काल के आश्रित जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्व करोड वर्ष कही है ।

इसका समाधान चूर्णिकार ने इस प्रकार किया है—

सातवें से लेकर उपशांत मोह तक सभी गुणस्थान अप्रमत्त कहलाते हैं, उन सब का जघन्य काल इकट्ठा करें तो जघन्य अप्रमत्त का काल होता है, इस अपेक्षा से जघन्य स्थिति है किंतु सातवें की अपेक्षा से नहीं है ।

टीकाकार के मत से अप्रमत्त गुणस्थान वाला अन्तर्मुहूर्त के पहले काल नहीं करता है, इस कारण अन्तर्मुहूर्त की स्थिति कहा है । आगे ते **“तत्त्वं केवली विदन्ति”** सूत्राशय गंभीर है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
72	प्रमाण द्वार	अनंत	पत्यो-पम के असं. भाग में												
73	लोक का दर्शन द्वार	सर्व लोक												सर्व लोक	दूसरे की तरह
74	मार्गणा द्वार गुण स्थानक आए	2, 3, 4, 5,6	4,5 6	1,4, 5,6	1,3, 5,6 7,8 1 10 11	1,4, 6	7	1,4, 5,6 8	7,9, 8	10, 8	11, 9	10	10	12	13

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
75	गुण स्थान में जाए	3, 4, 5,7	1	1,4,	1,2, 3,5 7	1,2, 3,4 7	1,2 3,4 5,7	4,6, 8	7,9, 4	8, 10, 4	9, 11, 12, 4	10 4	13	14	मोक्ष में

पहले गुणस्थान की गति मार्गणा में 3, 4, 5, 7 यह गति तो सादि मिथ्यात्वी के आश्रित है और जिस जीव ने पहली बार ही मिथ्यात्व छोड़ा है, उसकी गति 4,5 व 7 में होती है और में नहीं ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
76	परीषद् द्वार 22	0	0	0	0	0	22	22	22	22	14	14	14	11	11
77	आत्म द्वार 8	ज्ञान-चारित्र को छोड 6	ज्ञान-चारित्र को छोड 6	चारित्र को छोड 7	7	7	8	8	8	8	8	7	8	7	6

दूसरे व तीसरे गुणस्थान में ज्ञान-अज्ञान की चर्चा उपयोग द्वार से समझ लें ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
78	आहारी 1	आहारी है	है	है	है								है	है	नहीं है
79	आणा-हारी	है	है	नहीं	है	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	है	है
80	शरीर द्वार	4	4	3	4	4	5	5	3	3	3	3	3	3	3
81	नियंठा द्वार 26	0	0	0	0	0	4	3	1	1	1	1नि	1नि	1 स्ना	1 स्ना

सातवें गुणस्थानक में अलब्धोपजीवी होने से लब्धि का उपयोग नहीं करते हैं ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
82	संयत द्वार	0	0	0	0	0	3	3	2	2	2	1	1	1	1
83	सम्य- क्त्व द्वार	0	सा- स्वा दन	0	4	4	4	4	2	2	2	2	1	1	1
84	वेद द्वार 3	3	3	3	3	3	3	3	3	3 तथा नहीं	उप- क्षी	उप- शम	क्षय	क्षय	क्षय
85	संज्ञा द्वार	4	4	4	4	4	4 तथा नो संज्ञा	नो	नो	नो	नो	नो	नो	नो	नो
86	चार- गति में जाए	4 3	नरक छोड	0	म. देव	देव	देव	देव	देव	देव	देव	देव	0	0	मोक्ष
87	सन्नि- पातके 6 भंग	1 त्रिक, छठा	1 त्रिक, छठा	1 त्रिक, छठा	तीन	3	3	3	3	3	3	4	2	1	1
88	भाषक अभा- षक 2	2	2	1भा	2	1	1	1	1	1	1	1	1	2	1 अभा- षक
89	प्रथम अप्रथम	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	प्रथ	प्रथ	प्रथम
90	चरम- अचरम	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	चरम	चरम	चरम

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
91	भव्य अभव्य	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	
92	आयु बंध करे	4	3	0	2	1	1	0	0	0	0	0	0	0	0
93	परिणाम की हानि- वृद्धि षट्- स्थान	6	6	6	6	6	6	6	6	तुल्य	तुल्य	तुल्य	तुल्य	तुल्य	0

चारभंग – (1) बंधी, बंधति, बंधिस्सति (कर्म का बंध हुआ था, कर्म का बंध होता है, कर्म का बंध होगा) (2) बंधी न बंधति बंधिस्सति (कर्म का बंध हुआ था, बंध नहीं होता है, कर्म का बंध होगा) (3) बंधी न बंधति न बंधिस्सति (कर्म का बंध था, कर्म का बंध होता है, कर्म का बंध नहीं होगा) । (4) बंधी न बंधति न बंधिस्सति (कर्म का बंध था, कर्म का बंध होता है, कर्म का बंध नहीं होगा) ये चार भंग सभी कर्म आश्रित सभी गुण स्थान में समझ लें ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
94	5 कर्म आश्रित चारभंग	1,2,	1,2,	1, 2,	1,2,	1,2,	1,2,	1,2,	1,2,	1,2,	1,2,	3	4	4	4
95	वेदनीय आश्रित	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	4
96	मोहनीय आश्रित	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	1,2	3,4	3	4	4	4
97	आयु आश्रित भंग	1, 2, 3,4	1, 2, 3,4	3,4	1, 2, 3,4	1, 3,4	1, 3,4	1, 3,4	3,4	3,4	3,4	3,4	4	4	4

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
98	स्वलिंग अन्य लिंग, गृही लिंग	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3
99	छ संघयण	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	1	1	1
100	छ संस्थान	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6
101	ईरिया वहिय 8 भंग	3, 7,8	3, 7,	3, 7,	3,7	3,7	3,7	3,7	3,7	3,7	3,7	1,5	2	2	4
102	सराग वीतराग 2	सराग	स.	स.	स.	स.	स.	स.	स.	स.	स.	सराग उप- शांत	वी.	वी.	वी.
103	दृष्टि द्वार 3	मि	स	मिश्र	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स
104	पर्याप्त- अपर्याप्त 2	2	2	1	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
105	प्रत्याख्यानीय अप्रत्या- ख्यानीय	अप्र.	अप्र.	अप्र.	अप्र.	अप्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.	प्र.
106	सूक्ष्म बादर 2	2	बादर	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
107	त्रस- स्थावर	त्र.स्था.	त्र.स्था.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.	त्र.
108	कौनसी गति में ?	4	4	4	4	म.ति.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.	मनु.
109	परत-अपरत संसारि	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1

प्रथम गुणस्थान में परत (अल्प) संसार हो जाता है, मेघकुमार के हाथी के भव की तरह समझना चाहिये ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
110	गुण स्थान में काल करे	काल करता	काल करता	नहीं करता	करता	करता	करता	करता	करता	करता	करता	करता	नहीं	नहीं	करता
111	पर भव साथ में जाता है	जाता है	जाता है	नहीं	जाता है	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
112	इन्द्रिय द्वार	1,2 3,4,5	1,2 3,4,5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	0
113	देव लोक में गति	21	12	0	12	12	21	26	0	0	0	0	0	0	0
114	अवगाहना द्वार	जघन्य अंगुल का असंख्यात वां भाग, उत्कृष्ट-साधिक हजार योजना	0	0	0	0	जघन्य-न्य-1 हाथ उत्कृष्ट 500 धनुष		जघन्य 2 हाथ, उत्कृष्ट 500						
115	द्रव्य प्रमाण संख्या द्वार	अनंत	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य	पृथक हजार करोड								
116	काल स्थिति	सर्वाद्धा	जघन्य 1		सर्वाद्धा	सर्वाद्धा	सर्वाद्धा		जघन्य 1				7,8 समय	सर्वाद्धा	अन्तर्मु.7
117	गुणस्थान में निरंतर आते हैं	पल्लोपम का असंख्यात वां भाग जितने			आव-लिका का असंख्य भाग जितने		समय		समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त						

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
118	एक जीव आश्रित अंतर	जघन्य एवं उत्कृष्ट, साधिक 66 साग-रोपम	जघन्य एवं उत्कृष्ट, देशोन अर्द्ध पुद्गल												
119	अनेक जीव आश्रित अंतर	नहीं	जघन्य ¹ समय उत्कृ. पत्य का असंख्य भाग		नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	उप-शम श्रेणी में पृथक वर्ष, क्षपक में 6 मास			पृथक वर्ष	6 मास	नहीं	6 मास
120	चढ़े-उतरे	चढ़े	उतरे	2	2	2	2	2	2	2	2	उतरे	चढ़े	चढ़े	चढ़े
121	उतार-चढ़ाव की गति	दूहर गति	पाणी नीधी	इलका उल्लं-धिका	4	3	3				4	पानी की उल्ल.	इल-का	इल-का	0
122	सिद्धजीव कितने गुण. का स्पर्श करते हैं ?	नियमा	भजना	भज-ना	निय-मा	भ.	नि.	नि.	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.	नि.	नि.
123	सामान्य से गुण स्थान का स्पर्श	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	12	13	14
124	अवश्य स्पर्श करें	1	3	3	2	3	4	3	5	6	7	8	8	9	10
125	स्पर्श में भजना	10	8	8	9	8	7	8	6	5	4	3	4	4	4

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
126	कितने भव करें ?	अनंत	अनंत	अनंत	असं.	असं.	7,8	7,8	3	3	3	2	1	1	1
127	विरह द्वार	नहीं	जघन्य 1 समय, उत्कृ. अन्त .		नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	जघ-न्य 1 समय, उत्कृ. पृथक वर्ष या 6 मास			जघ-न्य 1 समय, उत्कृ. पृथक वर्ष	जघ-न्य 1 समय, उत्कृ. पृथक वर्ष	नहीं	जघ-न्य 1 समय, उत्कृ. पृथक वर्ष
128	तीन वीर्य	बाल	बाल	बाल	बाल	बाल	पंडित	पंडित	पंडित	पंडित	पंडित	पंडित	पंडित	पंडित	0
129	समोहिया असमोहिया 2	2	2	अस-मो	2	2	2	1	1	1	1	1	1	2	2
130	विग्रह गति 1, ऋजु गति 2	2	2	0	2	2	2	2	2	2	2	2	0	0	ऋजु
131	तीर्थ, अतीर्थ में	अतीर्थ			2	तीर्थ	2	2	2	2	2	ती.	2	2	2
132	लिंग-स्त्री आदि तीन	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3
133	दस प्राण	4,6,7 8,9,10	4,6,7 8,9,10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	5	1
134	छह दिशाओं का आहार	3,4 5,6	3, 4 5,6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	0

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
135	ओजरोम कवल आहार	3	3	2	3	2	2	2	2	2	2	2	2	2	0
136	सचित्त, अचित्त, मिश्र आहार 3								अचि- त 1	अचि- त	अति- त	1	1	1	0
137	समव- सरण 4	3	3	2	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
138	कर्म की जघन्य स्थिति बांधे	आयु जघन्य	0	0	0	0	0	0	0	मोह- नीय	5 कर्म	वेद- नीय	"	0 "	
139	आठ कर्म का मध्यम बंध	8	8	7	8	8	8	7	7	6	0	0	0	0	0
140	आठ कर्म का उत्कृष्ट बंध	8	0	0	0	0	0	आयु	0	0	0	0	0	0	0
141	मूल उदय	7,8	7,8	8	7,8	7,8	7,8	6	6	6	6,5	5	5,2	2	0
142	मूल कर्म का बंध	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	7	7	4	4
143	मूल उदीरणा	7 8	7 8	8	7 8	7 8	7 8	6	6	6	6 5	5	5 2	2	0
144	मूल सत्ता	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	7	4	4

तीसरे गुण स्थानक में आठ कर्म की उदीरणा कैसे होती है ?

तीसरे गुणस्थान में आठ कर्म उदीरणा तब होती है जब एक आवलिका प्रमाण प्रकृति का उदय काल रहा हो और जब आवलिका में प्रवेश करे तब उदीरणा नहीं होती है और तीसरा गुणस्थान आवलिका प्रमाण आयुष्य शेष रहने पर ही आता है, अतः तीसरे गुणस्थान में आठ कर्म की उदीरणा घट सकती है ।

इसी प्रकार दसवें गुणस्थान में मोह की उदीरणा दूर होने पर आवलिका में प्रवेश करता है ।

बंध

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
145	120 उत्तर प्रकृति का बंध	117	101	74	77	67	63	59, 58	58, 56, 26	22 28	17	1	1	1	-

1. पहले गुणस्थानक में आहारक द्विक व तीर्थकर नाम कर्म ये प्रकृतियां दूर होती हैं ।

2. दूसरे गुणस्थान में 1. मिथ्यात्व 2. हुंडक संस्थान 3. नपुंसक वेद 4. सेवार्त संघयण 5. एकेन्द्रिय 6. स्थावर 7. आतप 8. सूक्ष्म 9. साधारण 10. अपर्याप्त 11-13. विकल त्रिक 14-15. नरक त्रिक-ये 16. प्रकृतियां दूर होती हैं ।

3. तीसरे गुणस्थान में 1-4. अनंतानुबंधी चार, 5-7. थीणद्वि त्रिक 8. दुर्भग 9. दुःस्वर 10. अनादेय 11-14. मध्य के चार संस्थान, 15-18. मध्य के चार संघयूण 19. दुर्गमन 20. स्त्रीवेद 21. नीच गोत्र 22-24. तिर्यच त्रिक 25. उद्योत 26. मनुष्य आयु 27. देवायु-ये 28. प्रकृतियां दूर होती हैं ।

4. चौथे गुणस्थान में मनुष्य आयु व देवायु व तीर्थकर नाम कर्म ये तीन प्रकृतियां जुडती हैं ।

5. पांचवें गुणस्थानक में 1-4. अप्रत्यास्थान कषाय 5. प्रथम संघयण 6-7. औदारिक द्विक 8-10. मनुष्य त्रिक-ये 10. प्रकृतियां दूर होती हैं ।

6. छठे गुणस्थानक में प्रत्याख्यानीय चार कषाय दूर होते हैं ।

7. सातवें गुणस्थानक में 1. अस्थिर 2. अशुभ 3. अशाता 4. अयश 5. अरति व 6. शोक-ये छह प्रकृतियां दूर होती हैं और आहारक द्विक-ये दो जुडती हैं। यदि आयुष घटे तो 58 प्रकृति का बंध आठवें के प्रथम भाग में होता है और दूसरे भाग में दो निद्रा घटने पर 56 का और आठवें के तीसरे भागमें-1. तीर्थकर 2. निर्माण 3. शुभ विहायोगति 4. पंचेन्द्रिय 5. तैजस 6. कर्मण 7-8. आहारक द्विक 9. समचतुरस्र संस्थान 10-11. वैक्रिय द्विक 12-15. वर्ण चतुष्क 16. अगुरूलघु 17. उपघात 18. पराघात 19. उच्यास 20. त्रस 21. बादर 22. पर्याप्त 23. प्रत्येक 24. स्थिर 25. शुभ 26. सुभग 27. सुस्वर 28. आदेय 29. इन 30. का बंध दूर होता है ।

9. नौवें के प्रथम भाग में हास्य, रति, भय व जुगुप्सा ये चार प्रकृतियां दूर होती हैं और दूसरे भाग में पुरुष वेद व संज्वलन त्रिक ये चार प्रकृतियां दूर होती हैं ।

दसवें गुणस्थानक में संज्वलन लोभ दूर होता है ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में ज्ञानावरणीय पांच, 5-9 दर्शनावरणीय की चार, 10-14 पांच अंतराय 15 यश और 16 उच्च गोत्र ये 16 प्रकृतियां दूर होती हैं ।

आगे 11, 12 व 13वें गुणस्थानक में केवल शाता वेदनीय का बंध होता है ।

चौदहवें गुणस्थानक में बंध नहीं हैं ।

उदय

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
146	122 उत्तर प्रकृति का उदय	117	111	100	104	87	81	76	72	66	60	59	57, 55	42	12

पहले गुणस्थानक में 1-2. आहारक द्विक 3. तीर्थकर 4. मिश्र मोहनीय और 5. सम्यक्त्व मोहनीय ये पांच प्रकृति दूर होती हैं ।

दूसरे गुणस्थानक में 1. मिथ्यात्व 2. आतप 3. सूक्ष्म 4. अपर्याप्त 5. साधारण और 6. नरकानुपूर्वी-ये 7. प्रकृतियां दूर होती हैं ।

तीसरे गुणस्थानक में 1-4. अनंतानुबंधी चार, 5-8. एकेन्द्रिय आदि चार, 9. स्थावर 10-12. तीन आनुपूर्वी-ये 12. दूर होती हैं ।

चौथे गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय दूर होती है और चार आनुपूर्वी तथा 5 सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती हैं ।

पांचवें गुणस्थानक में 1-4. अप्रत्याख्यानीय चार, 5-6. वैक्रिय द्विक, 7-9. नरक त्रिक 10-12. देवत्रिक 13. मनुष्यानुपूर्वी 14. तिर्यचानुपूर्वी 15. दुर्भग 16. अनादेय 17. अयश ये सत्रह प्रकृतियां दूर होती हैं ।

छठे गुणस्थानक में 1-4 प्रत्याख्यानीय चार 5 तिर्यच आयु 6 तिर्यच गति 7 उद्योत 8 नीचे गोत्र ये आठ प्रकृतियां दूर होती हैं और आहारक द्विक जुड़ती हैं ।

सातवें गुणस्थानक में 1-3 थीणद्वि त्रिक व 4-5 आहारक द्विक ये पांच दूर होती हैं ।

आठवें गुणस्थानक में 1 सम्यक्त्व मोहनीय 2-4 अंतिम तीन संघयण ये चार प्रकृतियां दूर होती हैं ।

नौवें गुणस्थानक में 1. हास्य 2. रति 3. शोक 4. अरति 5. भय 6. जुगुप्सा ये छह दूर होती हैं ।

दसवें गुणस्थानक में 1-3. तीन वेद, 4. संज्वलन क्रोध 5. संज्वलन मान, 6. संज्वलन माया ये छह दूर होती हैं ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में संज्वलन लोभ दूर होता है ।

बारहवें गुणस्थानक में दो संधायण व द्विचरम समय में निद्रा व प्रचला दो निद्राएं दूर होती हैं ।

तेरहवें गुणस्थानक में पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पांच अंतराय-ये 14 प्रकृतियां दूर होती हैं और तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती हैं ।

चौदहवें गुणस्थानक में 1. शाता या अशाता 2. वज्रक्रूषभ नाराच 3. निर्माण 4. स्थिर 5. अस्थिर 6. शुभ 7. अशुभ 8. सुस्वर 9. दुःस्वर 10. प्रशस्त गति 11. अप्रशस्त गति 12-13. औदारिक द्विक 14. तैजस 15. कर्मण 16-21. छह संस्थान 22-25. वर्ण चतुष्क 26. अगुरुलघु 27. पराघात 28. उच्छ्वास 29. प्रत्येक ये 30. प्रकृतियां दूर होती हैं ।

चौदहवें गुणस्थानक में 1. शाता अथवा अशाता 2. मनुष्य गति 3. पंचेन्द्रिय 4. सुभग 5. त्रस 6. बादर 7. पर्याप्त 8. आदेय 9. यश 10. तीर्थकर 11. मनुष्य आयु 12. उच्चगोत्र इन 12 का उदय होता है ।

उदीरणा

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
147	122 उत्तर प्रकृति की उदीरणा	117	111	100	104	87	81	73	69	63	57	56	54, 52	39	0

पहले से छठे गुणस्थानक में उदय की तरह उदीरणा होती है । सातवें से तेरहवें गुणस्थान में दो वेदनीय (शाता-अशाता) और मनुष्य आयु-ये तीन दूर होती हैं । शेष सर्वत्र उदय की तरह उदीरणा समझनी चाहिये ।

चौदहवें गुणस्थानक में उदीरणा नहीं है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
148	उत्तर प्रकृति की सत्ता 148														
149	गुणस्थान के आकर्ष कितनी बार ?	ज.1 उ. बहू ज.2 उ.अ	ज.उ. 1 आ- श्रित ज.2 उ.5 बार	ज.1 उ. बहु त ज.2 उ.अ			ज.1 उ. सं बार		ज.1 उ.4 ज.2 उ.9			न.1 उ.4 ज.2 उ.5 बार	1 बार	1 बार	1 बार

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
150	कर्म निर्जरा	0	अ. गुणी												
151	हीय मान 1, वर्धमान 2 अ 0	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3		वर्ध 0	वर्ध अव स्थि	वर्ध- मान
152	स्थानक	असं- ख्य लोक प्रमाण								अंत. सम प्रमा- ण		1	1	1	1
153	श्रेणी- उपशम एवं क्षपक	0	0	0	0	0	0	0	2	2	2	1 उप शम	1 क्षप क	1	1
154	कल्प 5	0	0	0	0	0	5	5	4	4	4	4	4	4	4
155	च्यवकर कितने दंडक में जाए	24	21	0	16	1	1	1	1	1	1	1	0	0	मोक्ष
156	छ पर्याप्ति	4,66		6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	1,6
157	12 अणुव्रत	0	0	0	0	12	0	0	0	0	0	0	0	0	0
158	5 महाव्रत	0	0	0	0	0	5	5	5	5	5	5	5	5	5
159	सम्यक्त्व सामायिक, श्रुत, देश विरति, सर्व विरति	0 0 0 0	0 0 0 0	0 0 0 0	0 0 2 2	1 1 1 2	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3	1 1 1 3

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
160	मोह नीय के बंध भंग 21	22के बंध में 6 भंग	21 के बंध में 4 भंग	17 के बंध में 2 भंग	17 के बंध में 2 भंग	13 के बंध में 2 भंग	9 के बंध में 2 भंग	9 के बंध में 2 भंग	5 के बंध में 1 भंग, 4 के बंध में 1 भंग 3 के बंध में 1,2 भंग 1 के बंध में 9 भंग	0	0	0	0	0	0

22 का बंध स्थान पीछे लिखा है ।

भंग स्वरूप—हास्य-रति, अथवा शोक-अरति ये दो भंग पुरुषवेद के साथ, स्त्रीवेद के साथ व नपुंसक वेद के साथ करने से 22 के उदय में छह भंग होते हैं ।

21 के बंध में चार भंग होते हैं—(1) अरति-शोक पुरुषवेद (2) हास्य रति पुरुषवेद ये दो भंग पुरुषवेद के स्थान पर स्त्रीवेद रखने से होते हैं ।

नपुंसक वेद का बंध सास्वादन में नहीं होता है ।

17 के बंध में दो भंग होते हैं—हास्य-रति पुरुषवेद और अरति, शोक—पुरुषवेद ये दो भंग होते हैं, स्त्री का बंध नहीं होता है ।

तेरह के बंध में भी ये ही दो भंग समझने चाहिये ।

छठे गुणस्थानक में 9 के बंध में ये ही दो भंग होते हैं और 9वें गुणस्थानक में 5 के बंध में एक भंग, चार के बंध में 1 भंग, तीन के बंध में एक भंग, दो के बंध में 1 भंग व 1 के बंध में 1 भंग है ।

यद्यापि सातवें—आठवें गुणस्थानक में अरति—शोक का बंध नहीं है, तथापि भंग की अपेक्षा से 'सप्तप्ति सूत्र' में बंध कहा है ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
161	मोह के उदय भंग 995	24, 72,72 72,24	24, 48 24	24 48 24	24 72 72,24	24 72 72,24	24 72 72,24	24 48 24	12 4	1	0	0	0	0	0

उदय भंग रचना

पहले गुणस्थान में 22 के बंध में 7, 8, 9, 10 ये चार उदय स्थान हैं। इनका स्वरूप पीछे उदय स्थान में लिखा है। वहां से समझ लें। यहां 7 के उदय में 24 भंग बताते हैं— (1) हास्य, रति, पुरुष वेद (2) अरति, शोक व पुरुष वेद—यही दो भंग स्त्री वेद व नपुंसक वेद कुल छह भंग होते हैं।

यही छह भंग क्रोध, मान, माया और लोभ कुल 24 भंग होते हैं।

आठ के उदय से तीन चौबीसी (72) भंग बताते हैं—

(1) अप्रत्याख्यान (2) प्रत्याख्यान (3) मिथ्यात्व (4) संज्वलन (5) एक वेद (6) हास्य (7) रति अथवा अरति—इनमें भय डालने पर आठ के उदय में एक चौबीसी होती है, इस प्रकार भय निकाल कर जुगुप्सा डालने पर चौबीसी होती है, जुगुप्सा निकाल कर अनंतानुबंधी से तीसरी चौबीसी—इस प्रकार आठ के उदय में 72 भंग होते हैं।

नौ के उदय में तीन चौबीसी बतलाते हैं।

(1) सात में भय - जुगुप्सा डालने पर 9 होता है। इस 9 के उदय में भय, जुगुप्सा के साथ पीछे कहे छह विकल्प क्रोध, मान, माया और लोभ से एक चौबीसी अथवा जुगुप्सा निकाल कर भय, अनंतानुबंधी से 9 के उदय में दूसरी चौबीसी, इस प्रकार 72 भंग होते हैं।

सात में भय, जुगुप्सा व एक अनंतानुबंधी डालने पर दस के उदय में एक चौबीसी, पुरुष वेद आदि हैं।

21 के बंध में 7, 8, व 9 ये तीन उदय स्थान हैं।

7 के उदय में 1 अनंतानुबंधी, 1 अप्रत्याख्यान, 1 प्रत्याख्यान और एक संज्वलन ये चार, कोई एक वेद, हास्य-रति, एवं शोक—अरति—इन दोनों में से कोई एक—इस प्रकार कुल 7 होते हैं।

वे ही पछे के छह विकल्प क्रोध, मान, माया और लोभ मिलकर एक चौबीसी होती हैं।

सात में भय डालने पर आठ का उदय होता है। भय के साथ एक चौबीसी और भय निकालकर जुगुप्सा डालने पर एक चौबीसी इस प्रकार 48 भंग होते हैं।

सात में भय व जुगुप्सा एक साथ डालने पर 9 का उदय होता है—9 के उदय में एक चौबीसी होती है—इसे सास्वादन गुणस्थान में समझाना चाहिये।

प्रथम 17 के बंध में मिश्र गुणस्थान में तीन उदय स्थान हैं। वहां चार चौबीसी बताते हैं—

1 अप्रत्याख्यान, 2 प्रत्याख्यान, 3 संज्वलन क्रोध आदि, 4 कोई एक वेद, 5-6 कोई एक युगल (हास्य रति अथवा शोक अरति) तथा मिश्र मोहनीय—इस प्रकार 7 का उदय। पीछे के छह विकल्प क्रोध, मान, माया और लोभ के साथ करने पर $6 \times 4 = 24$ अर्थात् एक चौबीसी होती हैं।

7 में भय डालने पर आठ का उदय - पूर्ववत् एक चौबीसी।

भय निकालकर जुगुप्सा डालने पर आठ के उदय में दूसरी चौबीसी होती है ।

7 से उदय में एक साथ भय—जुगुप्सा डालने पर 9 के उदय में पूर्व की तरह एक चौबीसी होती है । इस प्रकार मिश्र गुणस्थान में चार चौबीसी होती हैं ।

अविरति (चौथे गुणस्थानक में) को 6, 7, 8 व 9 ये चार उदय स्थान हैं । उपशम व क्षायिक समकिती को 1 अप्रत्याख्यान 2 प्रत्याख्यान 3 संज्वलन, 4 कोई एक वेद, 5-6 कोई एक युगल-इन छह के उदय में एक चौबीसी होती है । इन छह में भय डालने पर सात के उदय में एक चौबीसी होती है, भय निकालकर जुगुप्सा से 7 के उदय में दूसरी चौबीसी, जुगुप्सा निकाल कर वेदक सम्यक्त्व के उदय में सात के उदय तीसरी चौबीसी होती है ।

1 अप्रत्याख्यान 2 प्रत्याख्यान 3 संज्वलन 4 एक वेद 5 एक युगल—इन छह में भय—जुगुप्सा डालने पर आठ के उदय में एक चौबीसी होती है, जुगुप्सा निकाल कर भय व वेदक सम्यक्त्व से आठ के उदय में दूसरी चौबीसी होती है । भय निकालकर जुगुप्सा व वेदक सम्यक्त्व से आठ के उदय में तीसरी चौबीसी होती है ।

1 अप्रत्याख्यान 2 प्रत्याख्यान 3 संज्वलन 4 वेद 5-6 युगल 7 भय 8 जुगुप्सा व 9 वेदक सम्यक्त्व इन 9 के उदय में एक चौबीसी होती है ।

13 के उदय में 5, 6, 7, 8 ये चार उदय स्थान होते हैं ।

5 का उदय-1 प्रत्याख्यान 2 संज्वलन 3 कोई एक वेद 4-5 एक युगल ।

इन पांच के उदय में पीछे की तरह एक चौबीसी होती है ।

इन 5 के उदय में भय डालने पर 6 के उदय में एक चौबीसी होती है । भय निकालकर जुगुप्सा डालने पर 6 के उदय में पूर्ववत् एक चौबीसी होती है ।

जुगुप्सा निकालकर वेदक सम्यक्त्व से तीसरी चौबीसी होती है ।

1 प्रत्याख्यान 2 संज्वलन 3 कोई एक वेद 4-5 कोई एक युगल 6 भय तथा जुगुप्सा-इन 7 के उदय में एक चौबीसी होती है अथवा जुगुप्सा निकाल कर भय को वेदक के साथ दूसरी चौबीसी होती है ।

भय निकालकर जुगुप्सा व वेदक के सात 7 के उदय में तीसरी चौबीसी होती है ।

1 प्रत्याख्यान 2 संज्वलन 3 कोई एक वेद 4-5 कोई एक युगल 6 भय 7 जुगुप्सा व 8 वेदक—इन आठ के उदय में पूर्व की तरह एक चौबीसी होती है ।

प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण—इन चार गुणस्थानों में 9 के बंध में 4, 5, 6 व 7—ये चार उदय स्थान ।

चार का उदय—(1) एक संज्वलन (2) एक वेद 3-4 कोई एक युगल-इन चार प्रकृति का उदय क्षायिक व उपशम समकिती को प्रमत्त आदि चार गुणस्थानों में होता है । इस प्रकार 9 के बंध में चार के उदय की पूर्ववत् एक चौबीसी होती है ।

इन चार में भय डालने पर 5 के उदय में पूर्ववत् एक चौबीसी होती है । भय निकालकर जुगुप्सा डालने पर 5 के उदय में दूसरी चौबीसी होती है । जुगुप्सा निकालकर वेदक सम्यक्त्व से 5 के उदय में तीसरी चौबीसी होती है ।

1 संज्वलन 2 एक वेद 3-4 कोई एक युगल—इन चार में भय—जुगुप्सा डालने पर छह के उदय में एक चौबीसी होती है ।

जुगुप्सा निकालकर भय और वेद सम्यक्त्व से दूसरी चौबीसी होती है । भय निकालकर जुगुप्सा—वेदक से छह के उदय में तीसरी चौबीसी होती है ।

1 संज्वलन 2 कोई एक वेद 3-4 एक युगल 5 भय 6 जुगुप्सा 7 वेदक सम्यक्त्व, इन सात के उदय में एक चौबीसी होती है ।

5 के बंध में दो उदय स्थान- (1) संज्वलन (2) एक वेद (3) इन दो के उदय में तीन वेद, क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार से गुना करने पर 12 भंग होते हैं ।

4, 3, 2 व एक के बंध में एक—एक प्रकृति का उदय—

5 के बंध में पुरुषवेद का विच्छेद करने पर चार रहते हैं । इन चार के बंध में एक संज्वलन का उदय होता है ।

चार भंग—(1) कोई क्रोध के उदय में कोई मान, कोई माया व कोई लोभ के उदय में श्रेणी पर चढ़ते हैं ।

यहां कई आचार्य कहते हैं कि छह के बंध काल में कोई किसी वेद की इच्छा करें तो पहले समय में 4-3-12 भंग होते हैं । उनके मत से कुल 24 भंग बताते हैं—12 भंग 5 के बंध के और 12 भंग 4 के—इस प्रकार 24 होते हैं । सब मिलकर 41 चौबीसी होती है ।

संज्वलन क्रोध के छेदन होने पर तीन का बंध होता है । क्रोध छोड़ कर किसी एक का उदय होता है । यदि संज्वलन क्रोध का उदय हो तो संज्वलन क्रोध के उदय का बंध होता है । **‘जो बंधइ सो वेदइ’** वचन से इसे समझा जा सकता है ।

संज्वलन मान के छेदन होने पर दो का उदय होता है । मान छोड़ने पर किसी एक का उदय माया का छेद होने पर लोभ का बंध व लोभ का उदय होता है ।

संज्वलन क्रोध की अपेक्षा से चार भंग, मान से तीन भंग, माया से दो भंग, लोभ से एक भंग, इस प्रकार 11 भंग होते हैं । पिछली 41 चौबीसी व ये 11—कुल मोह के उदय के 995 भंग होते हैं ।

द्वार नं.	गुण स्थान	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
162	नाम कर्म के बंध भंग 13945	4,5 16,9 9240 4632 कुल 13926	8 6400 3200 कुल 9608	8 8 कुल 16	8,16 8 कुल 32	8,8 कुल 16	8,8 कुल 16	8,8 कुल 16	8 8 कुल 16	1 1 1 1 कुल 4	1 1 1 1 कुल 5	1 	0 0 0 0 0 	0 	0 0 0 0 0
163	नाम कर्म के उदय भंग 7791	7704 7768 7768 7602 7602 7773 7773 कुल 46388 42330	34644 3456 4097 कुल 11650	3456 9 कुल 3465 कुल 10362	7592 2701 69 कुल 10362	443 148 कुल 591	158 158 कुल 316 592	148 148 कुल 146 148	72 72 72 72 कुल कुल 588 592	72 360	72 	72 	24 13 कुल 60	1 1 6 2 15 कुल	11 कुल 2 1

इन दोनों कोष्ठकों का विस्तार बहुत है, इस कारण इसके भंग लिखे नहीं हैं। यदि इन भंगों को जानने-समझने की जिज्ञासा हो तो 'सप्ततिसूत्र' गाथा 26-29 की टीका से समझ लें।

इति 'नवतत्त्व संग्रहे' आत्माराम-संकलनायां प्रथम-जीव-भेद-संपूर्णम् ।

अजीव-तत्त्व-2

अब दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं ।

(71) भगवती सूत्र

अजीव द्रव्य	द्रव्य से	क्षेत्र से	काल से	भाव से	गुण से
1.धर्मास्तिकाय	एक	लोक प्रमाण	अनादि अनंत	वर्ण,गंध,रस और स्पर्श नहीं। अरूपी	गति में सहायक
2.अधर्मास्ति-काय	"	"	"	वर्ण आदि पांचों नहीं। अरूपी	स्थिति सहायक
3.आकाशा-स्तिकाय	"	लोक-अलोक प्रमाण	"	"	अवगाहना सहायक
4.काल	अनंत	मनुष्य लोक	"	"	वर्तना गुण
5.पुद्गला स्तिकाय	"	लोक प्रमाण	"	वर्ण, गंध, रस, स्पर्श हैं ।	ग्रहण लक्षण

(72) अनुयोग द्वार सूत्र 74, 80-89 से पुद्गल कोष्ठक

	आनुपूर्वी 1	अनानुपूर्वी 2	अवक्तव्य 3
सत्पद प्ररूपणा	नियम से हैं	है	है
द्रव्य परिमाण	अनंत	अनंत	अनंत
क्षेत्र	संख्यभाग, असंख्य भाग, बहुत संख्य में अनेक, असंख्य में सर्व लोक	लोक का असंख्यातवां	असंख्यातवां भाग
स्पर्शना	क्षेत्र की तरह पांच बोल समझ लें, सिर्फ स्पर्शना कहे ।	असंख्यातवां भाग	
काल	एक द्रव्य की अपेक्षा से अनंत अनेक द्रव्य की अपेक्षा से सर्वाद्धा	एक द्रव्य की अपेक्षा से अनंत काल अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से सर्वाद्धा	एक द्रव्य की अपेक्षा से असंख्य काल अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से सर्वाद्धा
अंतर	एक द्रव्य की अपेक्षा से अनंत काल, अनेक द्रव्य की अपेक्षा से सर्वाद्धा ।	एक की अपेक्षा से असंख्य काल, अनेक की अपेक्षा से सर्वाद्धा ।	एक की अपेक्षा से असंख्य काल, अनेक की अपेक्षा से सर्वाद्धा ।
भाग	शेष द्रव्य से अनेक असंख्य भाग अधिक	शेष द्रव्य से अनेक असंख्य भाग हीन	शेष द्रव्य से अनेक असंख्य भाग हीन
भाव	सादि पारिणामिक	सादि पारिणामिक	सादि पारिणामिक
अल्प बहुत्व द्रव्यार्थ	4 असंख्येय गुण	2 विशेषाधिक	1 स्तोक
प्रदेशार्थ	5 अनंत गुणा	अप्रदेश स्तोक 2	विशेषाधिक 3
स्वरूप	त्रिप्रदेशी 4, 5, 6, 7, 8, 9 यावत् अनंत	परमाणु	द्विप्रदेशी

1. जिस स्कंध में आदि, अंत व मध्य पाया जाता है, वह स्कंध आनुपूर्वी कहलाता है ।
2. जिस स्कंध में तीन में से एक भी नहीं होता उसे अनानुपूर्वी कहते हैं ।

(73) लोक के प्रतर और प्रदेश

	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	
	4							अ	ना	दि	अ	नं	त	ज्ञे	य							4
	4																					4
	4																					4
	2	अ	ना	दि	स	प	र्य	व	सि	त	2	2		सा	दि	अ	प	र्य	व	सि	त	2
	2										2	2										2
	1									4			4									1
	1									4			4									1
	3			त				4	0					0	8							3
	3			सं				4						8		५						3
	2			दि			2								10	५						2
	2			ना			2								10	५						2
	2			अ			2								10	५.						2
	3		त		५			4	0					0	8		५					3
	1		नं		५					4			4			५		५				1
	1		अ		त					4			4			५		५				1
	2		दि		सं						2	2				५.		५				2
	2		ना		दि						2	2				५		५				2
	1		अ		सा					4			4			५		५.				1
	1			त						4			4			५		५				1
	4			सं					2					6			५					4
	4			त					2					6			५					4
	3			दि				4							8		५					3
	3			सा				4							8		५.					3
	2					2										10	५					2
	2					2										10						2
	2					2										10						2
	2					2										10						2
	1					4											12					1
	1					4											12					1
	4				2													14				4
	4				2	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	14				4
	4																					4
	4																					4
	4																					4
	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4

3 जिस स्कंध में आदि-अंत हो किंतु मध्य न हो उसे अवक्तव्य कहते हैं ।

व्यवहार नय के मत से लोक का स्वरूप

(निश्चय से तो अनियत प्रमाण है)–सातवीं नरक के आकाश के तल में अर्थात् नीचे दो प्रतर आपस में सदृश व 7 राजलोक लंबे-चौड़े हैं । उसके ऊपर एक प्रदेश हीन दो प्रतर हैं । उसके ऊपर एक प्रदेश हीन चार प्रतर समान हैं, उसके ऊपर एक प्रदेशहीन दो प्रतर समान हैं, उसके ऊपर एक प्रदेश हीन प्रतर हैं, ऐसे ही एक प्रदेश हीन पुनः दो प्रतर हैं, पुनः एक प्रदेश हीन दो प्रतर हैं । इस प्रकार सभी 14 प्रतर चढ़ने पर 12 प्रदेश की हानि होती है, इसी तरह पुनः 14 प्रतर चढ़ने पर 12 प्रदेश घटते हैं, इसी तरह सात रज्जू तक चौदह प्रतर चढ़े व 12 घटाते जायें और ऊर्ध्व लोक में 7 प्रदेश चढ़ने पर चार की हानि समझनी चाहिये । चार की आदि में वृद्धि ऊपर हानि समझनी चाहिए और दूसरी ओर जो 2 अंक लिखे हैं—वे प्रतर के प्रदेशों की संख्या के कृत युग्म और द्वापर युग्म समझने चाहिये ।

(74)

लोक श्रेणी			अलोक-श्रेणी ऊंची		
	0	ऊंची	तिरछी	तिरछी	
संख्य, असंख्य, अनंत	द्रव्यार्थ	असंख्य	असंख्य	अनंत	अनंत
संख्य, असंख्य, अनंत	प्रदेशार्थ		"	"	"
युग्म 4	द्रव्यार्थ	संख्य, असंख्य, कृत युग्म	कृत युग्म	कृत युग्म	
"	प्रदेशार्थ	कृत युग्म	4	4,3,2,1	4,3,2,1
चतुर्भुगी	श्रेणी अपेक्षा	4 सादि 2 सांत	सादि-सांत	सादि-सांत	सादि-सांत

(75) दस दिग् स्वरूप कोष्टक (भगवती शतक 10, उद्देश 1)

0	इन्द्र पूर्व दिशा	अग्नि कोण	यम दक्षिण	नैऋत्य कोण	वरुण पश्चिम	वायव्य कोण	सोम उत्तर	ईशान कोण	तमा अधो	विमला ऊर्ध्व दिशा
उद्भव उत्पत्ति	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से	रुचक से
संस्थान	शकटोद्धि	मुक्तावल	शकटोद्धि	मुक्तावल	शकटोद्धि	मुक्तावल	शकटोद्धि	मुक्तावल	गोस्तन	गोस्तन
लोकदेश	एकदेश में	बहु	एक	बहु	एक	बहु	एक	बहु	एक	एक
आयाम लंबाई	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	31/2 राज 21/2" 1/2"	साधिक 7राज	प्रदेश न्यून सात राज
द्रव्यार्थ	सर्व स्तोक 1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
प्रदेशार्थ	असंख्य गुणा 5	असंख्य गुणा 4	असंख्य गुणा 5	असंख्य गुणा 4	असंख्य गुणा 5	असंख्य गुणा 4	असंख्य गुणा 5	असंख्य गुणा 4	विशेष 3	असंख्य 2

(76) लोक का स्वरूप

[illegible]

लोक स्वरूप विचार

दो मुख, चौदह भूमि, विश्लेष करने पर 12 रहते हैं। इस प्रकार 14 प्रदेश के चढ़ने पर 12 प्रदेश की हानि होती है।

उदाहरणतः आदि में 14 प्रदेश हैं और अंत में 2 प्रदेश हैं। चौदह का नाम भूमि व दो का नाम मुख है। चौदह में से दो मुख निकालने पर 12 रहते हैं। इसका नाम विश्लेष है। इस प्रकार चौदह प्रदेश के चढ़ने पर 12 घटते हैं।

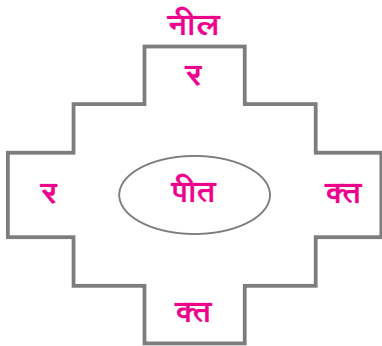
उर्ध्व लोक में दो मुख, 10 भूमि होने से विश्लेष आठ रहता है। यहां 7 प्रदेश चढ़ने पर चार की वृद्धि और ऊपर हानि होती है। इस प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए।

किसी का मत है कि लोक एक-एक प्रदेश घटता है, किंतु वह अशुद्ध है। क्यों ?

श्री भगवती सूत्र में अलोक की श्रेणि में तीन युग्म—कृत युग्म, द्वापर—युग्म और त्रोज युग्म कहे हैं और यदि एक—एक प्रदेश की हानि—वृद्धि तो चारों ही युग्म हो जाते हैं, इस कारण 2-2-4-2-2 चढ़ने से एक—एक प्रदेश की हानि—वृद्धि होती है। यह सर्वत्र समझना चाहिये।

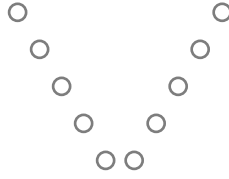
12 बोल का अल्प बहुत्व (प्रज्ञापना पद 10)

1. सबसे कम लोक का एक—एक अचरम खंड।
2. उससे लोक के अचरम खंड असंख्य गुणा।
3. उससे लोक के चरम खंड विशेषाधिक।
4. उससे लोकालोक के चरमाचरम खंड विशेषाधिक।
5. उससे लोक के चरम प्रदेश असंख्य गुणा।
6. उससे अलोक के चरम प्रदेश असंख्य गुणा।
7. उससे लोक के अचरम प्रदेश असंख्य गुणा।
8. उससे एलोक के अचरम प्रदेश अनंत गुणा।
9. उससे लोक—अलोक के चरम—अचरम प्रदेश विशेषाधिक।
10. उससे सर्व द्रव्य विशेषाधिक—ऐसा क्यों ? क्योंकि जीव, पुद्गल काल अनंत हैं।
11. उससे सर्व प्रदेश अनंत गुणा हैं।



चरमाचरम का स्वरूप :- गोल और पीला लोक का अचरम खंड है। जो लाल रंग के आठ खंड हैं उन्हें लोक का 'निखुड' कहते हैं, उन्हीं को लोक के चरम खंड कहते हैं। उनके ऊपर नीले बारह खंड को अलोक के चरम खंड कहते हैं। उस बारह खंड से ऊपर जो अलोक हैं वह सर्व अलोक का एक अचरम खंड है। इन चारों के प्रदेशों को चरम अचरम कहते हैं। इतने चरम खंड के सर्व चरम प्रदेश व अचरम खंड के अचरम खंड के अचरम प्रदेश समझने

चाहिये। असत् कल्पना करके लोकालोक के आठ व बारह खंड कहे हैं, परमार्थ से तो असंख्य निखुड कहे हैं, वे सर्व समश्रेणि नहीं हैं। उनके यथा स्वरूप की स्थापना ऐसी है।



यह बात अनुयोग द्वार में कही है ।

पुद्गल के 26 भंग की स्थापना प्रज्ञापना सूत्र (मलय गिरिसूरि कृत टीका से)

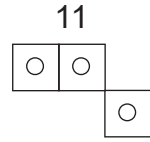
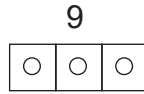
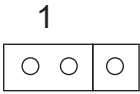
—परमाणु—पुद्गल में एक भंग होता है जो अवक्तव्य है—उसकी स्थापना ।



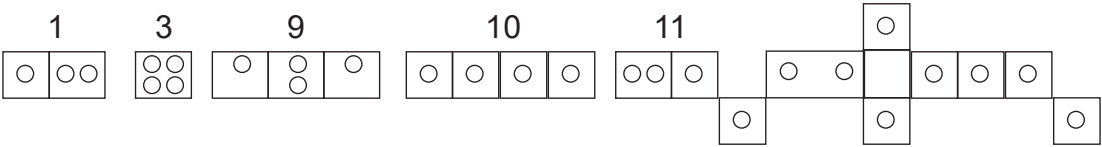
दो प्रदेशी में दो भंग होते हैं (1) चरम (2) अवक्तव्य उसकी स्थापना ।



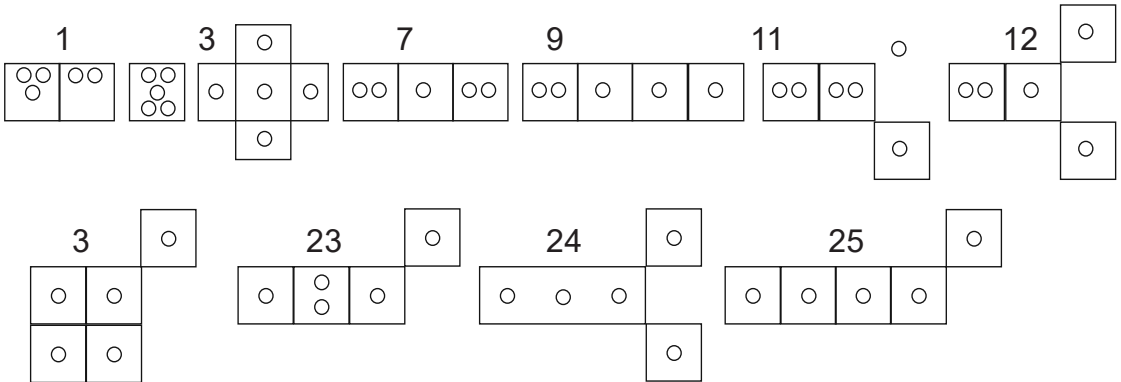
तीन प्रदेशी में चार भंग होते हैं—1, 3, 9 और 11 स्थापना



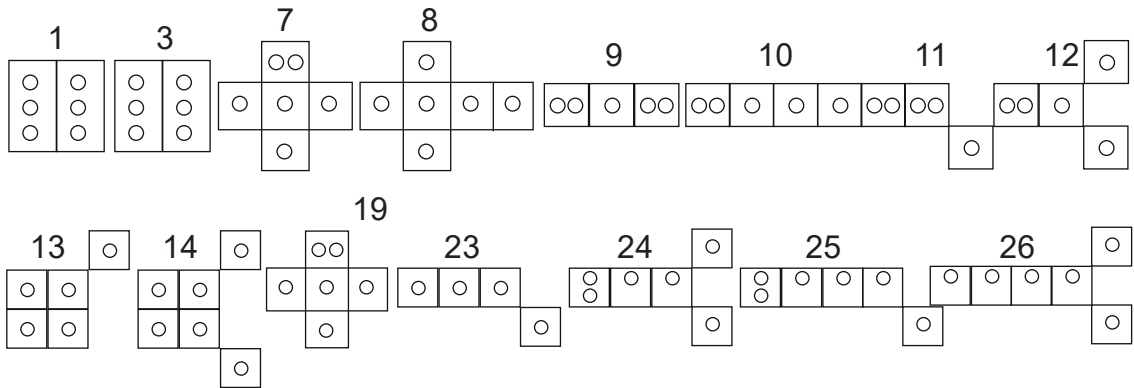
चार प्रदेशी में सात भंग —1, 3, 9, 10, 11, 12, 13, — स्थापना —



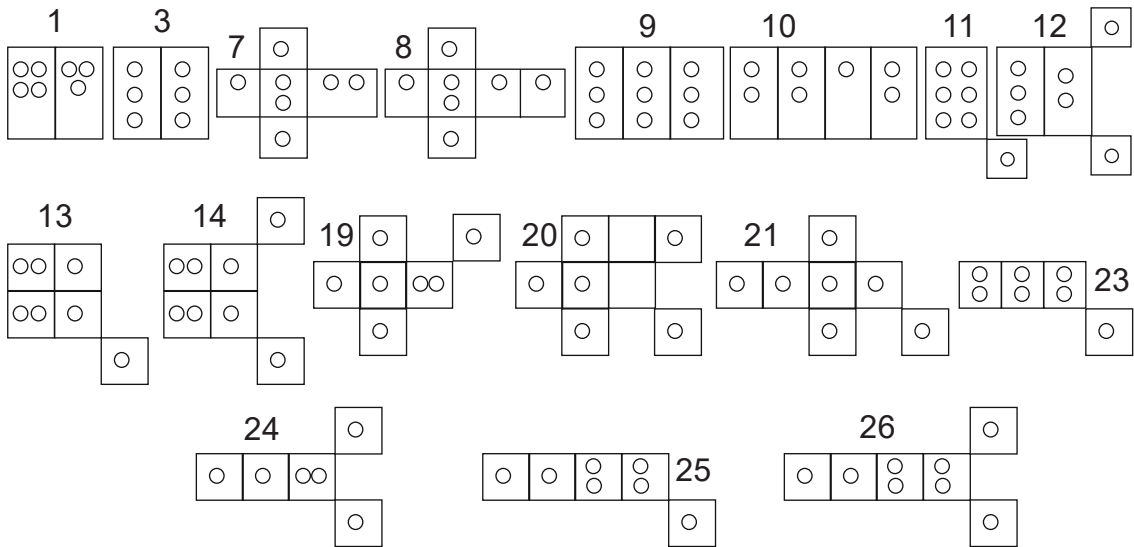
पांच प्रदेशी में ग्यारह भंग —1, 3, 7, 9, 10, 11, 12, 13, 23, 24, 25 स्थापना —



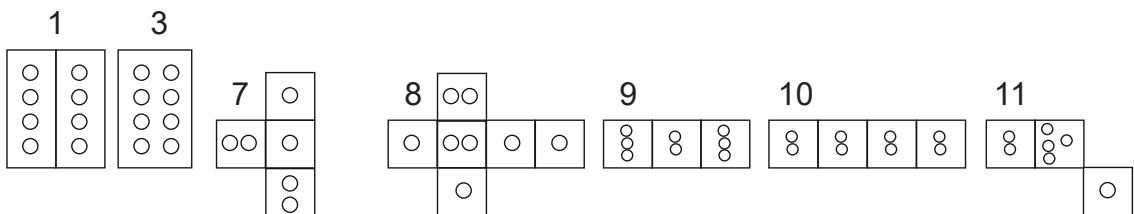
छह प्रदेशी में 15 भंग होते हैं – 1, 3, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 19, 23, 24, 25, 26
स्थापना –

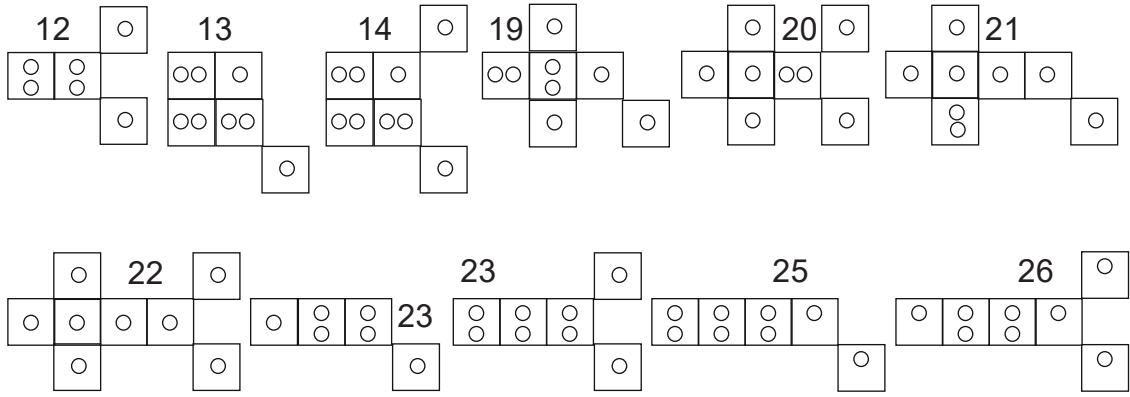


सात प्रदेशी स्कंध में 17 भंग होते हैं – स्थापना –



आठ प्रदेशी में 18 भंग होते हैं – स्थापना –





इस प्रकार 9 से अनंत प्रदेशी तक समझना चाहिये ।

(77) भगवती शतक 5 में उद्देश 7 स्पर्शना कोष्टक

			1	2	3	4	5	6	7	8	9
1.	परमाणु-पुद्गल	परमाणु-स्पर्श	0	0	0	0	0	0	0	0	"
2.	" "	द्विप्रदेशी स्कंध	0	0	0	0	0	0	7	0	"
3.	" "	तिप्रदेशी स्कंध	0	0	0	0	0	0	"	8	"
4.	द्विप्रदेशी स्कंध	पर. स्पर्श	0	0	0	0	0	0	0	0	"
5.	" "	द्वि.प्रदे."	1	0	"	0	0	0	7	0	"
6.	" "	ति.प्रदे."	"	2	"	0	0	0	"	8	"
7.	तिप्रदेशी"	पर."	0	0	"	0	0	6	0	0	"
8.	" "	द्विप्र."	1	0	"	4	0	"	7	0	"
9.	" "	तिप्रदेशी कू"	"	2	"	"	5	"	"	8	"

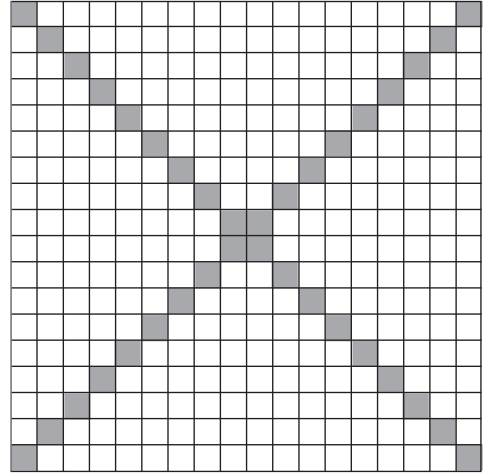
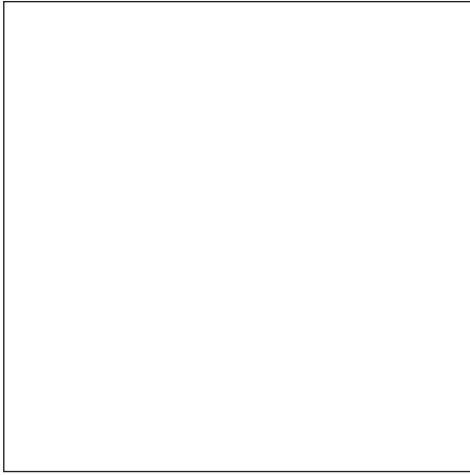
(78) श्री प्रज्ञापना (दसवें पद से)

0	द्रव्यार्थ		प्रदेशार्थ	
0	अचरम	चरम	अपरम प्रदेश	चरम प्रदेश
लोक	सर्व स्तोक 1	असंख्य गुण 2	असंख्य गुण 7	असंख्य गुण 5
अलोक	सर्व स्तोक 1	विशेषाधिक 3	अनंत गुण 8	विशेषाधिक 6
तदुभय	विशेषाधिक 4	विशेषाधिक 9		

(79) भगवती (शतक 16, उद्देश 8)

	द्रव्यार्थ	प्रदेशार्थ
चार दिशा चरमांत	असंख्येय गुणा 2	संख्येय गुणा 5
अधो चरमांत	सर्व स्तोक 1	संख्येय गुणा 4
ऊर्ध्व चरमांत	सर्व स्तोक 1	असंख्येय गुणा 3

जैसा क्षुल्लक प्रतर का स्वरूप है, वैसी उसकी स्थापना । जैसा एक प्रतर हैं, वैसा ही उसके ऊपर दूसरा प्रतर है, इन दोनों का नाम क्षुल्लक प्रतर है । इनके मध्य के आठ प्रदेशों की रुचक संज्ञा हैं ।



(80) भगवती (शतक 10 उद्देश 1, शतक 11 उद्देश 10, शतक 16 उद्देश 8)

जीव अजीव द्रव्य	देश प्रदेश	चार दिग्	चार वि दिग्	ऊर्ध्व दिग्	अधो दिग्	अधो लोक	तिर्यग् लोक	ऊर्ध्व लोक	लोक के 1 प्रदेश में	दिग् चर- मांत 4	ऊर्ध्व लोक चर- मांत	अधो लोक चर- मांत	10 दिशा, 3 लोक 1 प्रदेश 6 चरमांत 20 बोल
जीव	0	अनंत	0	0	0	अनंत	अनंत	अनंत	0	0	0	0	7 बोल में अनंत 13" बोल शून्य
एकेन्द्रिय	देश	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	3,3	20 बोल में अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश 33"

जीव अजीव द्रव्य	देश प्रदेश	चार दिग्	चार वि दिग्	ऊर्ध्व दिग्	अधो दिग्	अधो लोक	तिर्यग् लोक	ऊर्ध्व लोक	लोक के 1 प्रदेश में	दिग् चार- मांत 4	ऊर्ध्व लोक चार- मांत	अधो लोक चार- मांत	10 दिशा, 3 लोक 1 प्रदेश 6 चरमांत 20 बोल
एकेन्द्रिय	प्रदेश	"	33	33	33	33	33	33	33	33	33	33	20 बोल में भंग 3,3
बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय	देश	"	11 13 33	11 13 33	11 13 33	33	33	33	11 00 33	11 13 33	11 00 33	11,00 33	7 बोल में 33, 10 बोल में 11,13,33,3 बोल में 11,13
बेइन्द्रिय तेइ.चउ. पंचे.	प्रदेश	"	00 13 33	00 13 33	00 13 33	33	33	33	00 13 33	33 13 33	33 13 33	10,13,33	7 बोल में 33 11 में 13, 33
अनिन्द्रिय	देश	"	11 13 33	11 13 33	11 13 33	33	33	33	11 00 33	00 13 33	33	11,00 33	8 में 33 बोल 6 में 11, 13, 33, 4 में 13, 2 में 11,13
अनिन्द्रिय	प्रदेश	3,3	00 13 33	00 13 33	00 13 33	33	33	33	11 13 33	00 13 33	"	00,13 33	8 में 33 बोल, 11 में 13, 33, 1 में 11, 13, 33
अजीव	रूपी	4	4	7	4	4	4	4	4	4	4	4	20 में चार
अजीव	अरूपी	7	7	7	काल बिना 6	7	7	6	6,7	6	6	6	13 बोल में 7 7 बोल में 6

जहां 11 लिखें हैं वह प्रथम एक से एक जीव, दूसरे एक से देश के कोटे में एक देश और प्रदेश के कोटे में 1 प्रदेश जानना चाहिए। जहां 3 का अंक हो वहां बहुवचन समझना चाहिए।

(81) भगवती (शतक 12 में,
उद्देश्य 10) में पुद्गल भंग

1	सद्भाव						1
2	असद्भाव						2
3	स.						3
4	"	अस.					12
5	"	स.					13
6	अस.	"					23
7	"	"	अस.				122
8	स.	अस.	स.				112
9	"	स.	"				133
10	"	"	"				113
11	"	अस.	"				233
12	अस.	स.	अस.				223
13	स.	अस.	स.				123
14	"	"	"	अस.			1122
15	"	स.	"	स.			1133
16	अस.	"	अस.	"			2233
17	स.	"	"	"			1233
18	"	अस.	स.	अस.			1233
19	"	"	"	स.			1123
20	"	"	"	अस.	स.		12233
21	"	स.	अस.	स.	"		11233
22	"	अस.	स.	अस.	"		11223
23	"	"	"	स.	अस.	स.	112233

(82) भगवती (शतक 8 उद्देश
10) में पुद्गल भंग 8

1	द्रव्य	○
2	द्रव्यदेश	
3	दव्वाइं	○ ○
4	दव्वदेसा	
5	दव्वं च दव्वदेसे	○
6	दव्वं च देसा	○
7	दव्वाइं च दव्वदेसेय	○
8	दव्वाइं च दव्वदेसाय	○

(83) भगवती (5 वे शतक उद्देश
7) में भंग 9

1	देसेणं	देसे फुसइ	
2	"	देस	
3	"	सव्वं	
4	देसेहिं	देसे	
5	"	देसे	
6	"	सव्वं	
7	सव्वेणं	देसं	
8	"	देशे	
9	"	सव्वं	

(84) श्री भगवती के (श. 5 उ. 3) में 5 संस्थानस्वरूप तथा देश स्थापना

संस्थान	सूची		प्रत्तर		घन		जुम्मे	
प्रदेश	ओज प्रदेश 1/3/5	युम्म 3/4/6	ओज 1/3/5	युम्म 3/4/6	ओज 3/4/5	युम्म 3/4/6	जुम्मे	० ० ०
परिमंडल	० ०	० ०	० ०	20 प्रदेश	० ०	4 प्रदेश	4 कृतयुम्म	० ० ०
वट्ट	० ०	० ०	5	12 "	7	32	1/3/4	० ० ०
त्र्यस	० ०	० ०	3	6 "	35	4	2/3/4	० ० ०
चतुरस्र	० ०	० ०	9	4 "	27	8	1/3/4	० ० ०
आयतन	3	2	15	6 "	45	12	1/2/3/4	० ० ०

(85)

[illegible]

ऋजुगति में पर भव जाते समय एक समय लगता है और अणाहारी होता है । वक्र गति में दो समय लगे तो पहले समय अणाहारी होता है और दूसरे समय में आहार लेता है । द्विवक्र गति में तीन समय लगते हैं, उन्हें पहले दो समय अणाहारी होता है और तीसरे समय में आहार लेता है । तीन वक्र में चार समय लगते हैं, प्रथम तीन समय में अणाहारी और चौथे समय में आहार होता है । चार वक्र गति में पांच समय लगते हैं, उनमें प्रथम चार समय अणाहारी व पांचवें समय में आहार लेता है ।

प्रश्न – श्री भगवती में तो तीन समय अणाहारी कहा है तो चार समय कैसे ?

उत्तर – श्री भगवती में बहुलता की विवक्षा करके तीन समय कहा है, अल्पता की विवक्षा नहीं की है । कभी कभी चार समय अणाहारी होता है ।

कोई कहता है यदि पांच समय की गति न माने तो क्या अन्तर पड़ता है ?

इसका उत्तर है – प्रथम तो पूर्वोचार्यों ने पांच समय की गति मानी है, श्री जिन भद्र गणि क्षमा क्षमाश्रमण आदि सभी वृत्तिकारों ने यह बात स्वीकार की है—इस कारण यह बात सत्य है । सातवीं नरक की स्थावर नाडी के कोने वाला जीव मर कर ब्रह्म देवलोक की स्थावर नाडी के कोने में उत्पन्न होने वाला जीव पांच समय की विग्रह गति के बिना पैदा नहीं हो सकता—यह बात सूक्ष्म बुद्धि से सोच लेनी चाहिए । इसकी साक्षी भगवती की वृत्ति में तथा प्रज्ञापना सूत्र की टीका तथा बृहद संघयणी (गाथा 325-326) में है ।

(86) परस्पर स्पर्शन कोष्टक श्री भगवती शतक 13 उद्देश 4

0	धर्मास्तिकाय	अधर्मास्तिकाय	आकाशा- स्तिकाय	जीव	पुद्गल	काल
धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश	3,4,5,6 प्रदेश का स्पर्श करता है ।	4,5,6,7	7	अनंत	अनंत	अनंत
अधर्मास्तिकाय	4, 5, 6, 7	3, 4, 5, 6	6			
आकाशास्तिकाय	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7	1,2,3,4,5,6,7	7			
जीवीका	4,5,6,7	4,5,6,7	7			
परमाणु पुद्गल का	4,5,6,7	4,5,6,7	7			

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	पुद्गल पद जानने चाहिये
4	6	8	10	12	14	16	18	20	22	जघन्य पद
7	12	17	22	27	32	37	42	47	52	उत्कृष्ट पद

चूर्णिकार ने नय मत की अपेक्षा से एक अवग्रही प्रदेश के दो गिने हैं और टीका कारने दो परमाणु करके व्याख्या की है । पुद्गल की स्पर्शना में यही रहस्य है ।

परमाणु जघन्य से चार प्रदेश धर्म—अधर्म को स्पर्श करता है, उसका स्वरूप पीछे है और दो प्रदेश आदि स्कंध की जघन्य स्पर्शना में दो—दो प्रदेश बढ़ा लेने चाहियें और उत्कृष्ट स्पर्शना में 5-5 प्रदेशों की सर्वत्र वृद्धि जान लेनी चाहिये ।

(87) परमाणु द्विप्रदेशादि 13 बोल का अल्प बहुत्व (भगवती शतक 25, उद्देश 4)

द्रव्य कोष्ठ- क	पर- माणु 1	द्विप्र- देशी 2	त्रि प्रदेशी 3	चार प्रदेशी 4 स्कंध	पांच प्रदेशी 5 स्कंध	छह प्रदेशी 6 स्कंध	सात प्रदेशी 7	आठ प्रदेशी 8	नौ प्रदेशी 9	दस प्रदेशी 10	संख्यात प्रदेशी 11	असंख्य प्रदेशी 12	अनंत प्रदेशी 13
द्रव्यार्थ	11 वि.	10 वि.	9वि.	8वि.	7वि.	6वि.	5वि.	4वि.	3वि.	2 अनंत गुणा	12 संख्यात गुणा 13	13 असंख्य गुणा	1 स्तोक
प्रदे- शार्थ	2 अनंत गुणा	3वि.	4वि.	5वि.	6वि.	7वि.	8वि.	9वि.	10वि.	11वि.	12वि.	असंख्य गुणा	1 स्तोक

क्षेत्र कोष्ठ- क	एक प्रदेशा- वगाढा 1	दो प्रदेशा- 32	तीन प्रदेशा- 43	चार प्रदेशा- 4	पांच प्रदेशा- 5	छह प्रदेशा- 6	सात प्रदेशा- 7	आठ प्रदेशा- 8	नौ प्रदेशा- 9	दस प्रदेशा- 10	संख्यात प्रदेशा- 11	असंख्य प्रदेशा- 12
द्रव्यार्थ	10वि.	9वि.	8वि.	7वि.	6वि.	5वि.	4वि.	3वि.	2वि.	1 सबसे कम	11 संख्येय गुणा	12 असंख्येय गुणा
प्रदे- शार्थ	स्तोक	कोष्ठक 2वि.	3वि.	4वि.	5वि.	6वि.	7वि.	8वि.	9वि.	10वि.	11 संख्यात	12 असंख्यात

भाव कोष्ठक में वर्णादि एक गुण काल, दो गुण काल यावत् दस गुण काल (कृष्ण) संख्यात गुण, असंख्यात गुण यावत् अनंत गुण काल के 13 विभाग होते हैं । अतः 13 बोल समझने चाहिये । पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श ये कुल 20 होते हैं, उनमें कर्कश—मृदु, गुरु—लघु चार स्पर्श गुणों का अल्प बहुत्व कोष्ठक नं. 87 में दिया गया है और शेष 16 गुणों का अति देश कोष्ठक 88 में द्रव्य कोष्ठकवत् किया है ।

(88)

कर्करा 1 मृदु 2 गुरु 3 लघु 4	एक गुण कर्कश आदि	द्वि गुण 2	त्रि गुण 3	चार गुण 4	पांच गुण 5	छह गुण 6	सात गुण 7	आठ गुण 8	नौ गुण 9	दस गुण 10	संख्यात गुण 11	असं- ख्येय गुण 12	अनंत 13
द्रव्यार्थे	1 स्तोक	2वि.	3वि.	4वि.	5वि.	6वि.	7वि.	8वि.	9वि.	10सं.	11 असं.	12 असं.	13 बहु
प्रदेशार्थे	1 स्तोक	2वि.	3वि.	4वि.	5वि.	6वि.	7वि.	9वि.	10वि.	12 बहु.	12 बहु.	13 बहु.	13 बहु.

(89) (भगवती शतक 25, उद्देश 4 सू. 741)

द्रव्य	परमाणु 1	संख्यात प्रदेशी 2	असंख्यात प्रदेशी 3	अनंत प्रदेशी 4
द्रव्यार्थे देशाथे	2 अनंत गुणा	3 संख्यात गुणा	4 संख्येय गुणा	1 स्तोक
प्रदेशार्थे	2 "	3 संख्येय गुणा	4 असंख्येय गुणा	1 स्तोक
द्रव्यार्थे	3 "	4 संख्यात गुणा	6 असंख्यात गुणा	1 स्तोक
प्रदेशार्थे	0 "	4 "	7 "	अनंत 2

क्षेत्र कोष्ठक	एक प्रदेशावगाढा 1	संख्यात प्रदेशावगाढ 2	असंख्य प्रदेशावगाढ 3
द्रव्यार्थे	1 स्तोक	2 संख्येय गुणा	3 असंख्येय गुणा
प्रदेशार्थे	1 स्तोक	2 "	3 "
द्रव्यार्थे	1 स्तोक	2 "	4 "
प्रदेशार्थे	0	3 "	5 "

क्षेत्र कोष्ठकवत् काल कोष्ठक (काल कोष्ठक में 1 समय स्थिति आदि कहे)

भाव-एक गुण कर्कश	1 गुण	संख्येय गुण	असंख्येय गुण	अनंत गुण
द्रव्यार्थे	1 स्तोक	2 संख्येय	3 असंख्येय	4 अनंत
प्रदेशार्थे	"	3 असंख्येय	3 "	4 "
द्रव्यार्थे	"	2 "	4 "	6 "
प्रदेशार्थे	0	3 "	5 "	7 "

सोलह बोल का कोष्ठक परमाणु आदि की तरह समझ लेना चाहिये ।

**(90) परमाणु आदि अनंत प्रदेशी स्कंध-चल अचल स्थिति
(भगवती शतक 25, उद्देश 4 सू.744)**

	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
चल (सैज) एक वचने	1 समय	आवलिका का असंख्यातवां भाग
अचल (निरेज)	1 समय	असंख्यात काल

चल – अचल बहुवचन में सर्वाद्धा

(91) अंतर कोष्टक (भग. सू.744)

		परमाणु पुद्गल		द्वि प्रदेश आदि – अनंत प्रदेश पर्यंत	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
चल एक वचने	स्वस्थाने	1 समय	असंख्य काल	1 समय	असंख्यात काल
	परस्थाने	"	" "	"	अनंत काल
अचल एक वचने	स्वस्थाने	1 समय	आवली की असंख्य भाग	1 समय	आवली का असंख्य भाग
	परस्थाने	"	असंख्य काल	"	अनंत काल
बहुवचने	चल	अंतर नहीं	अंतर नहीं	अंतर नहीं	अंतर नहीं
	अचल	" "	" "	" "	" "
समुच्चय में अंतर	1 समय	असंख्य काल	असंख्य काल	1 समय	उत्कृष्ट असंख्य काल

(92) कालमान स्थितिमान कोष्टक भाग. श. 25, उ.4 (सू.744)

		परमाणु		द्वि प्रदेश आदि – अनंत प्रदेश पर्यंत	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
	देशैज	0	0	1 समय	आवलिका का असंख्य भाग
एक वचने	सर्वैज	1 समय	आवलिका का असंख्य भाग	1 सम.	आवलिका का असंख्य भाग
	निरेज	1 समय	असंख्य काल	1 समय	असंख्य काल
बहु वचने	देशैज	0	सर्वाद्धा	0	सर्वाद्धा

(93) अंतर मान कोष्टक (भग. सू.744)

		परमाणु		द्वि प्रदेश आदि – अनंत प्रदेश पर्यंत	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
देशैज	स्वस्थाने	0	0	1 समय	असंख्य काल
	परस्थाने	0	0	" "	अनंत "
सर्वैज	स्वस्थाने	1 समय	असंख्य काल	" "	असंख्य "
	परस्थाने	" "	" "	" "	अनंत "
			सर्वाद्धा		सर्वाद्धा

(94) भगवती (शतक 25 उद्देश 4, सू.744)

0	0	परमाणु 1	संख्यात प्रदेश 2	असंख्य प्रदेश 3	अनंत प्रदेश 4
द्रव्यार्थ में	देशैजा	0	7 असंख्य	8 असंख्य	3 अनंत
	सर्वैजा	6 असंख्य	5 "	4 "	1 स्तोक
	निरेजा	9 "	10 "	11 "	2 अनंत गुणा
प्रदेशार्थ में	देशैज	0	6 असंख्य	7 असंख्य	3 अनंत गुणा
	सर्वैज	0	5 "	4 "	1 स्तोक
	निरेजा	0	8 "	9 "	2 अनंत
द्रव्यार्थ में	देशैजा	0	12 असंख्य	14 असंख्य	5 अनंत
	सर्वैज	11 असंख्य	9 "	7 "	1 स्तोक
	निरेजा	16 "	17 संख्यात	19 "	3 अनंत
प्रदेशार्थ में	देशैज	0	13 "	15 असंख्य	6 "
	सर्वैज	0	10 "	7 "	2 "
	निरेजा	0	18 "	20 "	4 "

(95) परमाणु पुद्गल सैज निरेज का अल्पबहुत्व
(भाग. श. 25 उद्दे.4) सू.744

अल्प बहुत्व	परमाणु से लेकर असंख्य प्रदेशी स्कंध	अनंत प्रदेशी स्कंध
चला	1 स्तोक	1 स्तोक (?)
अचला	2 असंख्य गुण	2 अनंत गुणा (?)

(96) अल्प बहुत्व

	अल्प बहुत्व	परमाणु	संख्यात प्रदेशी	असंख्यात प्रदेशी	अनंत प्रदेशी
द्रव्यार्थे	सैजा	3 अनंत गुण	4 असंख्य गुणा	5 असंख्यात	2 अनंत गुण
	निरेजा	6 असंख्य	7 संख्य गुण	8 "	1 स्तोक 2
प्रदेशार्थे	सैजा	अप्रदेश	3 असंख्य गुणा	4 "	2 अनंत गुण
	निरेजा		5 असंख्य गुणा	6 "	1 स्तोक
द्रव्यार्थे	सैजा	5 अनंत	6 असंख्य गुणा	8 "	3 अनंत
	निरेजा	10 असंख्य	11 असंख्य गुणा	13 "	1 स्तोक
प्रदेशार्थे	सैजा	0	7 "	9 असंख्यात	4 अनंत
	निरेजा	0	12 "	14 "	2 "

(97) परमाणु संख्येय-असंख्येय व अनंत प्रदेशी से चल-अलग का अल्प बहुत्व

परिणाम	जीव	मूर्त	सप्रदेश	एक	अ क्षेत्री	क्रिया	नित्य	कारण	कर्ता	सर्वगत
2 भेद	1	1	5	3	4(5)?	2	4	5	1	1
जीव पुद्गल परिणामी	जीव 1 एक जीव 1	मूर्तवत पुद्गल 1,	धर्म, अधर्म, आकाश, जीव, पुद्गल	धर्म, अधर्म, आकाश	धर्म अधर्म, पुद्गल, जीव, काल	जीव 1, पुद्गल 2, ये क्रियावत	धर्म, अधर्म काल, आकाश ये चार नित्य	धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल	एक जीव कर्ता	आकाश 1
चारपांच अपरि- णाम	5 अमूर्त अजीव	1	3 अनेक अप्रदेशी	एक क्षेत्री	चार	अनित्य अक्रिया	अकारण 5	अकर्ता	5	असर्वगत
धर्म, अधर्म, अकाश काल	धर्म, अधर्म, आकाश काल पुद्गल	धर्म, अधर्म, आकाश काल जीव	काल, द्रव्य	पुद्गल, काल जीव	आकाश, द्रव्य	धर्म, अधर्म, आकाश काल	जीव पुद्गल पर्याय विभाव की अपेक्षा	जीव	धर्म, अधर्म, आकाश काल पुद्गल	धर्म, अधर्म, जीव काल पुद्गल

परिणाम जीव मुक्ता सपएसा एग खित्त किरिया य ।

निच्चं कारण कत्ता , सव्वगय इयर हिय य पएसा ॥1॥

दुन्नि य एगं एगं पंच ति पंच ति पंच दुन्नि चउरो य ।

पंच य एगं एगं , दस एय उत्तरगुणं च ॥2॥

पण पण इय य तिन्नि य एग चउरो दुन्नि एक पण पणगं ।

परिणामेय रभेया , बोद्धवा सुद्ध बुद्धिहिं ॥3॥♦

(98) भगवती शतक 25 , उद्देश 4

युग्म	धर्म	अधर्म	आकाश	जीव	पुद्गल	काल
द्रव्यार्थे	1	1	1	4	4,3	4
प्रदेशार्थे	4	4	4	4	2,1	0
प्रदेशावगाढ	4	4	4	4	4	0
समय स्थिति	4	4	4	4	4	0

(99) अल्प बहुत्व

युग्म	धर्म	अधर्म	आकाश	जीव	पुद्गल	काल
द्रव्यार्थे	1	1	1	3 अनंत गुण	5 अनंत गुण	7 अनंत गुण
प्रदेशार्थे	2 असंख्य	2 असंख्य	8 अनंत	4 असंख्य	6 असंख्य	0

(100)

1	धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय 3	द्रव्यार्थ	स्तोक
2	धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय 2	प्रदेश	असंख्य
3	जीवास्तिकाय 1	द्रव्यार्थ	अनंत
4	जीवास्तिकाय	प्रदेश	असंख्य
5	पुद्गलास्तिकाय	द्रव्यार्थ	असंख्य
6	"	प्रदेश	अनंत
7	काल	द्रव्यार्थ	असंख्य
8	आकाशास्तिकाय 1	प्रदेश	अनंत, अनंत

♦ परिणाम जीव मूर्ताः सप्रदेशा एक क्षेत्रक्रियाश्च ।

नित्यं कारणं कर्ता , सर्वगत इतरे हि चाप्रदेशाः ॥1॥

द्वे च एकं एकं पंच त्रि पंच द्वे चत्वारि च ।

पंच च एकं एकं दश एते उत्तरगुणाश्च ॥2॥

पंच पंच एकं त्रीणि च , एकं चत्वारि द्वे एकं पंच पंच च ।

परिणामेतर भेदा , बोद्धव्याः शुद्धबुद्धिभिः ॥3॥

काल का अल्प बहुत्व

1. सबसे छोटा काल—समय । 2. आवलिका का काल असंख्य गुणा । 3. जघन्य अन्तर्मुहूर्त- एक समय अधिक । 4. जघन्य आयुबंध काल संख्येय गुणा । 5. उत्कृष्ट आयुबंध काल-संख्येय गुणा । 6. जघन्य अपर्यायी एकेन्द्रिय न संख्येय । 7. उत्कृष्ट अपर्याप्त एकेन्द्रिय का विशेष । 8. पर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य काल विशेष । 9. पर्याप्त निगोद उत्कृष्ट विशेष अधिक । 10. उत्कृष्ट त्रसकाय विरह संख्यात । 11. जघन्य पर्याप्त बेइन्द्रिय का विशेषाधिक । 12. उत्कृष्ट अपर्याप्त बेइन्द्रिय का विशेषाधिक । 13. जघन्य पर्याप्त बेइन्द्रिय का विशेषाधिक । 14. जघन्य तेइन्द्रिय अपर्याप्त काल विशेषाधिक । 15. उत्कृष्ट तेइन्द्रिय अपर्याप्त का विशेषाधिक । 16. उत्कृष्ट पर्याप्त तेइन्द्रिय का विशेषाधिक । 17. उत्कृष्ट पर्याप्त चउरिन्द्रिय का विशेषाधिक । 18. उत्कृष्ट अपर्याप्त चउरिन्द्रिय का विशेषाधिक । 19. जघन्य पर्याप्त चउरिन्द्रिय का विशेषाधिक । 20. जघन्य अपर्याप्त पंचेन्द्रिय का विशेषाधिक । 21. उत्कृष्ट अपर्याप्त पंचेन्द्रिय का विशेषाधिक । 22. जघन्य पर्याप्त पंचेन्द्रिय का विशेषाधिक । 23. उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल संख्येय । 24. मुहूर्त का काल—1 समय अधिक विशेष ।

25. अहोरात्र का काल संख्येय गुणा । 26. उत्कृष्ट तेउकाय की स्थिति संख्येय गुणा । 27. पक्ष का काल संख्येय गुणा । 28. मास का काल । 29. तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति विशेषाधिक । 30. ऋतु का काल । 31. आयन अथवा चउरिन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति संख्येय गुणा । 32. वर्ष का काल संख्येय गुणा । 33. युग का काल संख्येय गुणा । 34. बेइन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति संख्येय गुणा । 35. वायुकाय की उत्कृष्ट स्थिति संख्येय गुणा । 36. अप्काय की उत्कृष्ट स्थिति संख्येय गुणा । 37. वनस्पति की उत्कृष्ट अथवा देव, नरक की जघन्य स्थिति विशेषाधिक । 38. पृथ्वीकाय उत्कृष्ट स्थिति संख्येय गुणा । 39. अद्धा पत्य का असंख्य भाग संख्येय गुणा । 40. अद्धा पत्य का काल असंख्य गुणा । 41. अद्धा सागर का काल संख्येय काल । 42. जघन्य अद्धा पत्य का असंख्य भाग असंख्येय गुणा । 43. उत्कृष्ट अद्धा पत्य का असंख्य भाग असंख्येय गुणा । 44. अद्धा पत्य का काल असंख्य गुणा । 45. उत्कृष्ट मनुष्य की काय स्थिति संख्येय गुणा । 46. अद्धा सागर का काल संख्येय गुणा । 47. उत्कृष्ट देव-नारक स्थिति संख्येय गुणा । 48. अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल संख्येय गुणा । 49. क्षेत्र पत्योपम का काल असंख्य गुणा । 50. क्षेत्र सागरोपम का काल संख्येय गुणा । 51. तेउकाय की उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्य गुणा । 52. वायुकाय की उत्कृष्ट काय स्थिति विशेषाधिक । 53. अप्काय की उत्कृष्ट काय स्थिति विशेषाधिक । 54. पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट काय स्थिति विशेषाधिक ।

55. कर्मण पुद्गल परावर्त काल अनंत गुणा । 56. तैजस पुद्गल परावर्त काल अनंत गुणा । 57. औदारिक पुद्गल परावर्त काल अनंत काल । 58. श्रोसोच्छ्वास पुद्गल परावर्तन काल अनंत गुणा । 59. वैक्रिय पुद्गल परावर्तन काल अनंत गुणा । 60. वनस्पति की उत्कृष्ट काय स्थिति असंख्य गुणा । 61. अतित अद्धा अनंत गुणा । 62. अनागत अद्धा विशेषाधिक ।

(101) छह द्रव्य के चार गुण

धर्म	अरूपी 1	अचेतन 2	अक्रिया 3	गति सहायक 4
अधर्म	अरूपी	अचेतन	अक्रिया	स्थिति स्वभाव
आकाश	"	"	"	अवगाहन दान
काल	"	"	"	वर्तमान व जीर्ण
पुद्गल	रूपी	"	"	पूरण-गलन
जीव	अनंत ज्ञान	अनंत दर्शन	अनंत चारित्र	अनंत वीर्य

(102) छ द्रव्य के चार-चार पर्याय

1 धर्म	स्कंध नित्य	देश अनित्य	प्रदेश अनित्य	अगुरुलघु
2 अधर्म	" "		" "	" "
3 आकाश	" "		" "	" "
4 काल	अतित	अनागत	" "	"
5 पुद्गल	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
6 जीव	गुरु	लघु	अगुरु लघु	अव्याबाध

(103) पुद्गल कोष्ठक (भगवती शतक 20, उद्देश 4)

	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श	संस्थान	भंग
परमाणु	5	2	5	4	1	200
2 प्रदेश	15	3	15	9	2	
3 प्रदेश	45	5	45	25	3	
4 प्रदेश	90	6	90	36	4	
5 प्रदेश	141	6	141	36	5	
6 प्रदेश	186	6	186	6	5	
7 प्रदेश	216	6	216			
8 प्रदेश	231	6	131	6	5	
9 प्रदेश	236	6	236	6	5	
10 प्रदेश	237	6	237	6	5	
20 प्रदेश	"	6	"	6	6	

पुद्गल	प्रयोग परिणत	मिश्र	विस्त्रसा
अल्प बहुत्व	1 स्तोक	2 अनंत गुणा	3 अनंत गुणा

जीव जो ग्रहण करता है वह प्रयोग है । उस जीव को छोड़कर जो परिणाम में परिणमित होता है वह मिश्र है और जो स्वभाव से अभ्र के समान परिणामित होता है वह विस्त्रसा है ।

नरक 7, भवनगति 10, व्यंतर 8, ज्योतिषी 5, देवलोक 26, सूक्ष्म 5, स्थावर बादर 5, बेइन्द्रिय 1, तेइन्द्रिय 1, चउरिन्द्रिय 1, असंज्ञी पंचेन्द्रिय 5, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच 5, असंज्ञी मनुष्य 1, संज्ञी मनुष्य 1, कुल 81 यह प्रथम दंडक है । इन्हें अपर्याप्ता से गुनने पर 81 पर्याप्ता अपर्याप्ता 161, शरीर से गुनने पर 491, जीवेन्द्रिय से गुनने पर 713, शरीरेन्द्रिय से गुणने पर 2175, 161 को पांच वर्ण, पांच गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, पांच सम्यान में गुनने पर 4025, 491 को पच्चीस से गुनने पर 42 11631 (12279 ?) 713 को वर्ण आदि पच्चीस से गुनने पर 17825, 2175 को पच्चीस से गुनने पर 51523 (543375 ?)

॥ इति आत्माराम संकलनायां द्वितीयं अजीव-तत्त्वं संपूर्णम् ॥

पुण्य-तत्त्व-3

अब तीसरा पुण्य तत्त्व लिखते हैं ।

पुण्य का बंध नौ प्रकार से होता है और उसका उपभोग 42 प्रकार से होता है ।

42 पुण्य—1 शातावेदनीय 2 देवायु 3 मनुष्य आयु 4 तिर्यच आयु 5 देवगति 6 मनुष्य गति 7 पंचेन्द्रिय 8 औदारिक 9 वैक्रिय 10 आहारक 11 तैजस 12 कर्मण शरीर 13 औदारिक अंगोपांग 14 वैक्रिय अंगोपांग 15 आहारक अंगोपांग 16 वज्र ऋषभ नाराच संघयण 17 समचतुरस्त्रसंस्थान 18 शुभ वर्ण 19 शुभ गंध 20 शुभ रस 21 शुभ स्पर्श 22 देवानुपूर्वी 23 मनुष्यानुपूर्वी 24 प्रशस्त विहायोगति 25 पराघात 26 उच्छ्वास 27 आतप 28 उद्योत 29 अगुरुलघु 30 तीर्थकर 31 निर्माण 32 त्रस 33 बादर 34 पर्याप्त 35 प्रत्येक 36 स्थिर 37 शुभ 38 सौभाग्य 39 सुस्वर 40 आदेय 41 यश कीर्ति और 42 उच्च गोत्र इस प्रकार इन 42 प्रकार से पुण्य का भोग होता है ।

उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति वाले तीर्थकर महाराज के समवसरण का स्वरूप—

मुणि वेमाणिया देवि साहुणि ठंति अग्निकोणमि♦

जोइसिय भवण वितर देवीओ हुंति नेरईए ॥1॥

भवण वण जोइ देवा वायव्ये कप्पवासिणो अमरा ।

नर नारीओ ईसाणे पुब्बाइसु पविसिउं ठंति ॥2॥

बारह पर्षदा के नाम-

उसभस्स तिन्नि गाऊ बत्तीस धनुणि वद्धमाणस्स ।□

सेस जिणाण असोगो देहाउ दुवालस गुणो य ॥1॥

किंकिल्लि कुसुमवुड्डी दिव्व जुणि चामरासणाइं ।

भामंडल य छत्त भेरी, जिणिंद जिणपाडिहेराई ॥2॥

दप्पण भद्दासण वद्धमाण वरकलस मच्छ सिरिवच्छ ।

सत्थिय नंदावत्तो विविहा अट्ठ मंगला ॥3॥

समवसरण पृथ्वी से ढाई कोश ऊंचा होता है । मध्य में मणिपीठ के ऊपर चार आसन होते हैं । उन चारों आसनो के ऊपर अशोक वृक्ष की छाया रहती है । पूर्व के सिंहासन ऊपर त्रैलोक्य पूज्य परम देव तीर्थकर विराजमान होते हैं और तीन सिंहासन ऊपर व्यंतर देवता भगवान के समान तीन रूप बनाकर स्थापित करते हैं, जो प्रभु के अतिशय के कारण प्रभु समान दिखाई देते हैं और ऐसा प्रतीत हो मानो भगवान् ही उपदेश दे रहे हों ।

हे नाथ । मेरी यही प्रार्थना है कि मैं सचमुच आपके समवसरण को देखूं और भक्ति संयुक्त मस्तक से आपके चरण कमल का स्पर्श करूं ।

♦ मुनयो वैमानिका देव्यः साध्व्यस्तिष्ठन्ति अग्रिकोणे । ज्योतिष्क भवन व्यन्तर देव्या भवन्ति नैऋत्ये ॥ भवन-वन ज्योतिर्देवा वायव्ये कल्पवासिनोमराः । नर नार्य ईशाने पूर्वादिषु प्रविश्य तिष्ठन्ति ॥

□ ऋषभस्य त्रीणि गव्यूतानि, द्वात्रिंशद् धनूषि वर्धमानस्य । शेष जिनानामशोको देहाद् द्वादश गुणश्च ॥ कङ्कल्लिः कुसुमवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरासनानि । भामण्डलं च छत्रं भेरी जिनेन्द्र ! जिन प्राति हार्याणि । दर्पणो भद्रासनं वर्धमानं वरकलंश मत्स्यः श्रीवत्स । स्वस्तिको नन्द्योवर्तो विविधानि खलु मङ्गलानिः॥

चक्रवर्ती आदि संबंधी विशेष जानकारी

चक्री का नाम	पिता नाम	माता नाम	कुमार काल	मंड-लिक	विजय में वर्ष	षट् खंड राज्य	दीक्षा काल	पूर्व जन्म नाम	पूर्व जन्म नगरी	कहां से आए ?	कहां गए ?	आयु	अव-गाहना	नगरी
1. ऋषभ भरत	ऋषभ देव	सुमं-गला	77 लाख पूर्व	1000 वर्ष	60 हजार वर्ष	6 लाख पूर्व	1 लाख पूर्व	पीठ	पुंडरी-किणी	सर्वार्थ सिद्ध	मोक्ष	84 लाख पूर्व	500 धनुष	विनी-ता
2. सुमति सगर	सुमति राजा	यश-वती	500 हजार पूर्व	50 हजार वर्ष	30 हजार वर्ष	70 लाख वर्ष	1 लाख पूर्व	विजय राजा	पृथ्वी-पुर	विजय विमान	मोक्ष	72 लाख पूर्व	450 धनु	अयो-ध्या
3. समुद्र मधवा	समुद्र विजय	सुभद्रा	22 लाख 50 हजार वर्ष	5000 वर्ष	10 हजार वर्ष	3 लाख 90 हजार वर्ष	3 लाख	शिशि-भ राजा	पुंडरी-किणी	ग्रैवे-यक	तीसरे देव-लोक	5 लाख वर्ष	42 धनु.	श्राव-स्ती
4. अश्व-सनत कुमार	अश्व-सेन	सह-देवी	50 हजार वर्ष	5000 वर्ष	1000 वर्ष	90 हजार वर्ष	90 हजार वर्ष	मरु राजा	महा-पुरी	महेन्द्र देव-लोक	मोक्ष	3 लाख वर्ष	41 धनु.	हस्ति-नापुर
5. विश्व-शांति नाथ	विश्व-सेन	अचि-रा	25 हजार वर्ष	25 हजार वर्ष	800 वर्ष	24 हजार 200 वर्ष	25 हजार वर्ष	मेघ-रथ	पुंडरी-किणी	सर्वार्थ सिद्ध	मोक्ष	1 लाख वर्ष	40 धनु.	गजपुर
6. सूर-कुंथु-नाथ	सूर-सेन	श्री रानी	2375 0 वर्ष	2375 0 वर्ष	600 वर्ष	2315 0 वर्ष	2315 0 वर्ष	सिंह-रथ	सुसी-मा-	"	"	95 हजार वर्ष	35 धनु.	"
7. सुद-अर-नाथ	सुद-र्शन	देवी रानी	21 हजार वर्ष	21 हजार वर्ष	500 वर्ष	2060 0 वर्ष	21 हजार वर्ष	धन-पति	क्षेम-पुरी	अपरा-जित	"	84 हजार वर्ष	30 धनु.	"

चक्री का नाम	पिता नाम	माता नाम	कुमार काल	मंड- लिक	विजय में वर्ष	षट् खंड राज्य	दीक्षा काल	पूर्व जन्म नाम	पूर्व जन्म नगरी	कहां से आए?	कहां गए?	आयु	अव- गाहना	नगरी
8. सुभूम	कीर्ति- वीर्य	तारा देवी	5000 वर्ष	5000 वर्ष	500 वर्ष	4950 0 वर्ष	दीक्षा नहीं	कनाभ	धन- पुरी	जयंत	7वीं नरक	60 हजार वर्ष	28 धनु.	"
9. महा- पद्म	पद्मो- त्तर	ज्वाला देवी	500 वर्ष	500 वर्ष	300 वर्ष	700 वर्ष	10 हजार वर्ष	वितहु	वीत शोका	ब्रह्म देव	मोक्ष	30 हजार वर्ष	20 धनु.	वारा- णसी
10. हरि- पेण	महा- हरि	विप्रा रानी	325 वर्ष	325 वर्ष	150 वर्ष	3250 वर्ष	350 वर्ष	महेन्द्र	विजय- पुर	महेन्द्र देव	मोक्ष	10 हजार वर्ष	15 धनु.	कपिल- पुर
11. जय	विजय राजा	विप्रा रानी	3000 वर्ष	3000 वर्ष	100 वर्ष	1900 वर्ष	300 वर्ष	अमित	राज- पुर	ब्रह्म लोक	मोक्ष	3000 वर्ष	12 धनु.	राज- गृही
12. ब्रह्म- दत्त	ब्रह्म- दत्त	चुल- णी रानी	28 वर्ष	56 वर्ष	16 वर्ष	600 वर्ष	दीक्षा नहीं	संभूति	काशी	महा शुक्र	7वीं नरक	700 वर्ष	7धनु.	कपिल- पुर

9 वासु देव	त्रिपृष्ठ	द्विपृष्ठ	स्वयंभू	पुरुषोत्तम	पुरुषसिंह	पुरुष पुंडरीक	दत्त	नारायण लक्ष्मण	कृष्ण
पूर्व भव नाम	विश्वभूति	पर्वत	धनदत्त	समुद्रदत्त	सैवाल	मित्र	ललित मित्र	पुनर्वसु	गंगदत्त
पूर्व भव आचार्य	संभूति	सुभद्र	सुदर्शन	शीतल	श्रेयांस	कृष्ण	गंगदत्त	सागर समित	द्रुमसेन
निदान नगर	मथुरा	प्रोतवृच्छु	श्रावस्ती	पोतनपुर	राजगृही	काकंदी	कोशांबी	मिथिला	हस्तिनापुर
पिता नाम	प्रजापति	ब्रह्मा	सौम्य	रुद्र	शिव	महाशिर	अग्निशिख	दशरथ	वसुदेव
माता नाम	मृगावती	उमा	पृथ्वी	सीता	अमृता	लक्ष्मी	शेषमती	सुमित्रा	देवकी
अवगाहना धनु.	80	70	60	50	45	29	26	16	10
गति-नरक	7वीं	छठी	छठी	छठी	5वीं	छठी	छठी	चौथी	तीसरी
आयु वर्ष	84 लाख वर्ष	72 लाख वर्ष	60 लाख वर्ष	30 लाख वर्ष	10 लाख वर्ष	65000 वर्ष	56000 वर्ष	12000 वर्ष	9000 वर्ष
9 प्रति वासुदेव	अश्व ग्रीव	तारक	मेरक	मधुकैसव	निसुंभ	बल	प्रह्लाद	रावण	जरासंध

9 बल देव	अचल	विजय	भद्र	सुप्रभ	सुदर्शन	आनंद	नंदन	पद्म रामचंद्र	राम बलभद्र
पूर्व भव नाम	विश्वनंदी	सुबंधु	सागरदत्त	ललित	वराह	धर्म	सेन	अपराजित	ललितांग
माता का नाम	भद्रा	सुभद्रा	सुप्रभा	सुदर्शना	विजया	वैजयंती	जयंती	अपरा- जिता	रोहिणी
गति	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	मोक्ष	ब्रह्मलोक
आयु	85 लाख वर्ष	75 लाख वर्ष	65 लाख वर्ष		17 लाख वर्ष	85000 वर्ष	65000 वर्ष	15000 वर्ष	1200 वर्ष
तीर्थकर काल	श्रेयांस	वासु पूज्य	विमलनाथ	अनंतनाथ	धर्मनाथ	18-19 के अंतर में	18-19 के अंतर में	20-21 के अंतर में	नेमिनाथ
वर्ष	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण	सुवर्ण

॥ इति नव तत्त्व संग्रहे तृतीय पुण्यतत्त्वं संपूर्णम् ॥



पाप-तत्त्व-4

अब चौथा पाप तत्त्व लिखते हैं ।

(1) प्राणातिपात (2) मृषावाद (3) अद-तादान (4) मैथुन (5) परिग्रह (6) क्रोध (7) मान (8) माया (9) लोभ (10) राग (11) द्वेष (12) कलह (13) अभ्याख्यान (14) पैशुन्य (15) रति अरति (16) पर परिवाद (17) मायामृषा वाद (18) मिथ्यादर्शनशक्त्य-इनसे पाप का बंध होता है ।

पाप भोग के 82 प्रकार-

5 ज्ञानावरणीय, 9 दर्शनावरणीय 1 अशातावेदनीय, 26 मोहनीय, 1 नरकायु, 2 नरक व तिर्यच गति, 4 जाति, 5 संघयण, 5 संस्थान, 4 अशुभ वर्णादि 2 नरक व तिर्यचानुपूर्वी, 1 अशुभ विहायोगति, 1 उपघात, 10 स्थावर दशक, 1 नीच गोत्र, 5 अंतराय । इन से पाप का भोग होता है ।

इति नवतत्त्व संग्रहे पाप तत्त्वं चतुर्थं संपूर्णं

आश्रव-तत्त्व-5

अब पांचवां आश्रव तत्त्व लिखते हैं ।

25 क्रियाएं-

- (1) **काइया** – काया व्यापार से निष्पन्न क्रिया को कायिकी क्रिया कहते हैं ।
- (2) **अहिगरणीया** – जिस क्रिया से जीव नरक आदि का अधिकारी होता है वह अधिकरण, ऐसे भयंकर अनुष्ठान अथवा तलवार आदि का प्रयोग ।
- (3) **पाउसिया** – मत्सर भाव से उत्पन्न क्रिया को प्राद्वेषिकी क्रिया कहते हैं ।
- (4) **परियावणिया** – स्व व पर को परिताप पहुंचाने वाली क्रिया को पारितापन की क्रिया कहते हैं ।
- (5) **पाणाइवातिया** – स्व अथवा पर के प्राण हरने वाली क्रिया को प्राणातिपात क्रिया कहते हैं ।
- (6) **आरंभिया** – जीव, जीव के कलेवर, आटेका जीव का आकार अथवा वस्त्र आदि का आरंभ-मर्दन करने की क्रिया को आरंभिकी क्रिया कहते हैं ।
- (7) **परिग्रहिया** – जीव अजीव का परिग्रह करने की क्रिया को पारिग्रहिकी क्रिया कहते हैं ।
- (8) **माया वत्तिया** – माया के कारण होने वाली क्रिया को माया-प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।
- (9) **मिच्छादसनवत्तिया** – प्रमाण से हीन अथवा अधिक मानने की क्रिया को मिथ्या दर्शन प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।
- (10) **अपच्चक्खाण** – जीव अथवा अजीव मद्य आदि का पच्चक्खाण नहीं होना ।
- (11) **दिड्डिया** – देखने व देखे जाने की क्रिया को दृष्टिजा क्रिया कहते हैं ।
- (12) **पुड्डिया** – पूंजने अथवा स्पर्श करने से जो कर्म बंध होता है, उस क्रिया को स्पृष्टिजा क्रिया कहते हैं ।
- (13) **पाडुच्चिया** – बाह्य वस्तु के आश्रित उत्पन्न होने वाली क्रिया को प्रातीत्य की क्रिया कहते हैं ।
- (14) **सामंतोवणिया** – चारों ओर से लोगों के मिलने से उत्पन्न क्रिया को सामंतोपनिपाति की क्रिया कहते हैं । सांड आदि तथा रथ आदि देखकर लोक प्रशंसा करें, जिसे सुनकर उसका मालिक खुश हो, तो उस मालिक को सामंतोपनियान्तिकी क्रिया लगती है ।
- (15) **सहत्थिया** – अपने हाथ से उत्पन्न क्रिया को स्वाहस्तिकी क्रिया कहते हैं ।

(16) निसृष्टिया – नाक आदि के मल को फेंकने से लगी क्रिया को नैसृष्टिकी क्रिया कहते हैं ।

(17) आणवणिया – पाप का आदेश देना अथवा वस्तु मंगाना आदि से जन्य क्रिया को आज्ञापनिकी क्रिया कहते हैं ।

(18) वियारणिया – जीव का विदारण करने से, दलाल को जीव बेचने से अथवा किसी पुरुष को ठगने से वैदारिणी, वैचारणिकी अथवा वैतारणिकी क्रिया लगती है ।

(19) अणाभोगवत्तिया – अज्ञान के कारण से उत्पन्न क्रिया को अनाभोग प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।

(20) अणवकंखवत्तिया – अपने शरीर आदि के निमित्त से होने वाली क्रिया को अनवकांक्षा क्रिया कहते हैं, वह व्यक्ति कुकर्म करता हुआ परभव से नहीं डरता है ।

(21) पेज्जवत्तिया – राग से उत्पन्न हुई माया व लोभ रूप क्रिया को प्रेम प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।

(22) दोसवत्तिया – द्वेष से उत्पन्न हुई क्रोध व मान रूप क्रिया को द्वेष प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।

(23) पओग किरिया – काया आदि के व्यापार से उत्पन्न क्रिया को प्रयोग क्रिया कहते हैं ।

(24) समुदाण किरिया – अष्टकर्म ग्रहण करने को समुदान क्रिया कहते हैं ।

(25) ईरियावहिया – काया के योग निमित्त-बंध हो उसे ईर्यापथिकी क्रिया कहते हैं ।

कर्म ग्रंथ के आधार पर आश्रव के 57 हेतु – 5 मिथ्यात्व, 12 अव्रत, 25 कषाय व 15 योग से सब मिलकर 57 हेतु होते हैं । इनका गुणस्थान ऊपर का स्वरूप गुणस्थान द्वार से समझ लें और विशेष आश्रव त्रिभंगी से समझ लें ।

स्थानांग के दसवें स्थान में असंवर के 10 भेद—

(1) श्रोत्रेन्द्रिय असंवर (2) चक्षुरिन्द्रिय असंवर (3) घ्राणेन्द्रिय असंवर (4) रसनेन्द्रिय असंवर (5) स्पर्शनेन्द्रिय असंवर (6) मन असंवर (7) वचन असंवर (8) काय असंवर (9) भांडोपकरण असंवर (10) सूची कुसंग असंवर । इस प्रकार आश्रव के 10 भेद हैं ।

आश्रव के 42 भेद—

5 इन्द्रिय, 4 कषाय, 5 अव्रत, 3 योग व 25 क्रियाएं ।

॥ इति आश्रव तत्त्वं पंचम संपूर्णम् ॥

संवर-तत्त्व-6

अब छठा संवर तत्त्व लिखते हैं ।

षट्निर्ग्रथ स्वरूप – (1) पुलाक (2) बकुश (3) प्रतिसेवना (कुशील) (4) कषाय कुशील (5) निर्ग्रथ और (6) स्नातक ।

पुलाक के पांच भेद –

- (1) ज्ञान पुलाक अर्थात् ज्ञान का विराधक ।
- (2) दर्शन पुलाक अर्थात् दर्शन का विराधक ।
- (3) चारित्र पुलाक अर्थात् चारित्र का विराधक ।
- (4) लिंग पुलाक—बिना कारण अन्य लिंग करें ।
- (5) सूक्ष्म पुलाक—मन से अकल्प्य का सेवन करें वह सूक्ष्म पुलाक कहलाता है । लब्धि पुलाक का स्वरूप वृत्ति (टीका) से जान लें ।

बकुश के पांच भेद—

- (1) आभोग बकुश – साधु के लिए नहीं करने योग्य शरीर व उपकरण की विभूषा जान बूझ कर करें ।
- (2) अनाभोग बकुश – अनजाने में दोष लगावे वह अना भोग बकुश कहलाता है ।
- (3) संवृत बकुश – गुप्त रीति से दोष लगावे वह संवृत बकुश ।
- (4) असंवृत बकुश – प्रगट दोष लगावे वह असंवृत बकुश कहलाता है ।
- (5) यथा सूक्ष्म बकुश – आंख, मुख आदि की सफाई करे वह यथासूक्ष्म बकुश कहलाता है ।

3 प्रतिसेवना कुशील के 5 भेद—

सेवना अर्थात् सम्यक् आराधना, उससे प्रतिपक्ष प्रतिसेवना ।

- (1) ज्ञान प्रति सेवना – ज्ञान की आराधना नहीं करना ।
- (2) दर्शन प्रति सेवना – दर्शन की आराधना नहीं करना ।
- (3) चारित्र प्रतिसेवना – चारित्र की आराधना नहीं करना ।
- (4) लिंग प्रतिसेवना – बांछा सहित तप आदि करना ।
- (5) यथा सूक्ष्म प्रतिसेवना – बांछा सहित तप आदि करना ।

4 कषाय कुशील के पांच भेद – क्रोध आदि कषाय कर ज्ञान, दर्शन व लिंग को जोड़े वह

- (1) ज्ञान कुशील (2) दर्शन कुशील व (3) लिंग कुशील कहलाता है । (4) चारित्र में कषाय के परिणाम प्रवर्तवे, वह चारित्र कुशील कहलाता है । (5) मन से क्रोध आदि का सेवन करे वह यथासूक्ष्म कषाय कुशील कहलाता है ।

5 निग्रंथ के 5 भेद – (1) उपशांतमोह तथा क्षीणमोह के अन्तर्मुहूर्त काल के प्रथम समय में वर्तमान को प्रथम समय निग्रंथ कहते हैं ।

(2) शेष समय में वर्तमान को अप्रथम समय निग्रंथ कहते हैं ।

(3) निग्रंथ काल के चरम समय में वर्तमान को चरम समय निग्रंथ कहते हैं ।

(4) शेष समय में वर्तमान को अचरम समय निग्रंथ कहते हैं ।

(5) सामान्यतया सर्व काल में यथा सूक्ष्म निग्रंथ कहलाता है ।

6 स्नातक के 5 भेद – (1) अच्छवी-अत्थवी-अव्यथक-कुछ आचार्य-छवी अर्थात् चमडी – योग निरोध काल में नहीं होने से अच्छवि कहलाते हैं । एक आचार्य के मत से क्षपी अथात् सखेद व्यापार उन्हें नहीं होने से अक्षपी कहलाते हैं । एक आचार्य के मत से घाति कर्म क्षय हो गया है, अब क्षय करने का नहीं है, अतः अक्षरी कहलाते हैं ।

(2) अशंबल – अतिचार पंक का अभाव होने से शुद्ध चारित्र ।

(3) विगत घाति कर्म – अकर्मश ।

(4) शुद्ध ज्ञान दर्शन धर – केवल ज्ञानी । अर्हन् जिन केवली चौथे भेद में हैं ।

(5) अपरिश्रावी – जो कर्म नहीं बांधते हैं – (योग निरोध समय में)

सर्व द्वार संग्रह गाथा (भगवती श, 25, उ, 6)

पण्णवणवेय रागे कप्प चरित्त पडिसेवणा णाणे ।♦

तित्थे लिंग सरीरे खित्त काल गई संजम निकासे ॥1॥

जोगु वओग कसाए लेसा परिणाम बंध वेए य ।

कम्मोदीरण उवसंप (जहण्ण) सण्णा य आहारे ॥2॥

भव आगरिसे कालांतरे य समुग्घाय खेत फुसणा य ।

भावे परिमाणे खलु (चिय) अप्पा बहुयं नियं ठाणं ॥3॥

♦ प्रज्ञापनवेदरागाः कल्प चारित्र प्रतिसेवना ज्ञानानि ।

तीर्थ लिंग शरीराणि, क्षेत्रकालगतिसंयमनिकर्षाः ॥1॥

योगोपयोग कषाया लेश्या परिणाम बन्ध वेदाश्च ।

कर्मोदीरणोपसम्पद् हान सञ्ज्ञाश्चा हारः॥2॥

भव आकर्षः कालान्तरे च समुद्घात क्षेत्र स्पर्शनाश्च ।

भावः परिणामः खलु अल्पबहुत्वं निर्गधानाम ॥3॥

(105) 36 द्वार

1 प्रज्ञापन	1 पुलाक	2 बकुश	3 प्रतिसेवना	4 कषाय कुशील	निर्ग्रथ	स्नातक
2 वेद	पुरुष, कृत्रिम नपुंसक	स्त्री, पुरुष एवं कृत्रिम नपुंसक	बकुशवत्	बकुशवत् अथवा क्षीणवेदे या उपशान्तवेदे	उपशांत वेद क्षीण वेद	क्षीण वेद
3 राग	सरागी	सरागी	सरागी	सरागी	उपशांत क्षीण	क्षीण राग
4 कल्प	स्थित, अस्थित स्थविर	स्थित, अस्थित जिनकल्प, स्थविर	बुकशवत् 4	स्थित, अस्थित जिनकल्प, स्थ- विर कल्पातीत	स्थित, अस्थित, कल्पातीत	निर्ग्रथवत्
5 चारित्र	सामायिक, छेदोपस्थापनीय	सामायिक, छेदोपस्थापनीय	सामायिक, छेदोपस्थापनीय	आद्य चार	यथाख्यात	यथाख्यात
6 प्रति सेवना	मूल गुण, उत्तर गुण	उत्तर गुण	पुलाकवत्	अप्रति सेवी	अप्रति सेवी	अप्रति सेवी
7 ज्ञान प्रवचन	2 या 3 प्रवचन ज.8, उत्कृष्ट नौवें पूर्व की 3 वस्तु	2 या 3 प्रवचन ज.8, उत्कृष्ट 10 पूर्व	बकुशवत्	2 या 3 या 4 प्रवचन ज. 8, उत्कृष्ट 14 पूर्व	कषाय कुशीलवत्	केवल सूत्र व्यतिरिक्त
8 तीर्थ	तीर्थ में	तीर्थ में	तीर्थ में	तीर्थ अथवा अतीर्थ में	कषाय कुशीलवत्	कषाय कुशीलवत्
9 लिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग	द्रव्य में 3 भाव में स्वलिंग
10 शरीर	औदारिक, तैजस व कर्मण 3	औदारिक, वैक्रिय, तैजस व कर्मण जन्म कर्म भूमि 4	औदारिक, वैक्रिय, तैजस व कर्मण जन्म कर्म भूमि 4	पांच	औदारिक, तैजस व कर्मण 3	औदारिक तैजस व कर्मण 3
11 क्षेत्र	जन्म कर्म भूमि संहरण नहीं	संहरण अकर्म	संहरण अकर्म	जन्म कर्म भूमि संहरण अकर्म	जन्म कर्म भूमि संहरण अकर्म	जन्म कर्म भूमि संहरण अकर्म

12 काल	अवसर्पिणी में जन्म आश्रित 3-4 आरा फिर भी भाव आश्रित 3-4 व 5 आरा । उत्सर्पिणी में जन्म आश्रित 2-3-4 आरा फिर भी भाव आश्रित 3-4	जन्म अवसर्पिणी के 3-4-5 आरे में फिर भी 3-4 आरा । उत्सर्पिणी जन्म आश्रित 3-4-2 फिर भी 3-4 संहरण सर्व	बकुशवत्	बकुशवत्	जन्म आश्रित पुलाकवत् संहरण आश्रित सर्वत्र	निर्ग्रथवत्
13 गति पदवी- इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशत् लोकपाल, अहमिन्द्र	जघन्य-सौधर्म में उत्कृष्ट से 8 वें देवलोक पदवी-चार में से एक । जघन्य-पृथक् पल्योपम उत्कृष्ट-18 सागरोपम	जघन्य-सौधर्म में उत्कृष्ट से 12 वां देवलोक पदवी-चार में से एक जघन्य- पृथक् पल्योपम उत्कृष्ट-22 सागरोपम	बकुशवत्	जघन्य-सौधर्म उत्कृष्ट-5 अनुत्तर पदवी-5 में से 1 जघ. पृथक् पल्यो. उत्कृष्ट-33 सागरोपम	पांच अनुत्तर में पदवी- अहमिन्द्र । स्थिति ज.उ.-33 सागरोपम	मोक्ष गति
14 समय स्थान अल्प बहुत्व	असंख्य, 3 असंख्यगुणा	असंख्य, 4 असंख्यगुणा	असंख्य, 5 असंख्यगुणा	असंख्य, 6 असंख्यगुणा	एक स्तोक	एक तुल्य
15 पु,	6 स्थान	अनंत गुण हीन	अनंत गुणा हीन	6 स्थान	अनंत गुणा हीन	अनंत गुणा हीन
चारित्र ब. पर्याय	अनंत गुणा अधिक	6 स्थान	6 स्थान	"	"	"
प्र.	" "	"	"	"	"	"
के संनि क.	6 स्थान	"	"	"	"	"
कर्ष नि.	अनंत गुणा अधिक	अनंत गुणा अ.	"	"	तुल्य	तुल्य
स्ना.	" "	"	"	"	"	"
जघन्य	1 स्तोक	3 अनंत गुण	3 तुल्य	1 तुल्य	0	0

उत्कृष्ट	2 अनंत गुणा	4 अनंत गुणा	5 अनंत गुणा	5 अनंत गुणा	7 अनंत	7 तुल्य
16 उपयोग	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3 अयोगी
17 उपयोग	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2
18 कषाय	क्रोध आदि 4	4	4	4, 3, 2, 1	उपशांत, क्षीण	क्षीण
19 लेश्या	3 प्रशस्त	6	6	6	1 शुक्ल	1 अथवा अलेश्या
20 परिणाम	वर्धमान, हीन अवस्थित	वर्धमान, हीन अवस्थित	वर्धमान, हीन अवस्थित	वर्धमान, हीन अवस्थित	वर्धमान, हीन अवस्थित	निर्ग्रथवत्
	वर्धमान-जघन्य 1 समय उत्कृष्ट-अन्त. हीनमान- जघन्य-1 समय उ.-अन्तर्मुहूर्त स्थित जघन्य-1 समय उत्कृष्ट-7 समय	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	वर्धमान-जघन्य उ. अन्त. अवस्थित- जघन्य-1 समय उ.अन्तर्मुहूर्त	वर्धमान- जघन्य- उ.अन्त. अवस्थित- जघ.- अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-देशोन पूर्व कोटि वर्ष
21 बंध	7 (आयुष्य नहीं)	7-8	7-8	8, 7-6	1 (शातावेद)	1 बंधे वा अबंधक
22 वेदन	8 कर्म	8	8	8	7 वां छोडकर	4
23 उदीरणा	6 (आयु तथा वेदनीय छोडकर)	7,8,6	7,8,6	8,7,6,5	5 या 2	उदीरणा 2 अथवा अनुदीरक
24 उवसंप- ज्जहण्णा	पुसाकपने को छोडकर कषाय- कुशील और असंयम स्वीकार करें ।	बकुशपने को छोडकर प्रति- सेवना, कषाय कुशील, असं- यम, देशविरति को स्वीकार करें ।	प्रति सेवन का त्यागकर बकुश, कषाय, कुशील, असंयम देशविरति को स्वीकार करें ।	कषाय कुशी- लता को छोड- कर पुलाक, प्रतिसेवना, निर्ग्रथ, असंयम देश विरति इन छह को स्वीकार करें ।	निर्ग्रथपने को छोडकर कषाय कुशील, स्नातक व असंयम को स्वीकार करें ।	स्नातकपन को छोडकर मोक्ष गति प्राप्त करें ।

25 संज्ञा	नो संज्ञोपयुक्त	संज्ञोपयुक्त नो संज्ञोपयुक्त	बकुशवत्	बकुशवत्	नो संज्ञोपयुक्त	नो संज्ञोपयुक्त
26 आहार	आहारक	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी अनाहारी
27 भव	जघ. 1 उत्कृष्ट 3	जघ. 1 उत्कृष्ट 8	जघ. 1 उत्कृष्ट 8	जघ. 1 उत्कृष्ट 8	जघ. 1 उत्कृष्ट 3	वही जघ. 2
28 एक भव आश्रित आकर्ष अनेक भव आश्रित आकर्ष	जघ. 1 उत्कृष्ट 1	जघ. 1 उत्कृष्ट- पृथक्शत	जघ. 1 उत्कृष्ट- पृथक्शत	जघ. 1 उत्कृष्ट-पृथक्शत	जघ. 1 उत्कृष्ट-2	2
	जघ. 2 उत्कृष्ट 7	जघ. 2 उत्कृष्ट 7200	जघ. 2 उत्कृष्ट 7200	जघ. 2 उत्कृष्ट 7200	जघ. 2 उत्कृष्ट 5	0
29 स्थिति एक जीव आश्रित अनेक जीव आश्रित	जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त	जघन्य-1 समय उत्कृष्ट-देशन ऊन पूर्व कोटि	बकुशवत्	बकुशवत्	ज. 1 समय उ. अन्तर्मुहूर्त	जघ. अन्तर्मुहूर्त उत्कृ. देशोनपूर्व कोटि वर्ष
	जघ. 1 समय उत्कृ. अन्तर्मुहूर्त	सर्वद्धा	सर्वाद्धा	सर्वाद्धा	जघ. 1 समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त	सर्वाद्धा
30 अंतर एक जीव आश्रित अनेक जीव आश्रित	जघ. अन्तर्मुहूर्त उ.वनस्पति काल	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	अंतर नहीं
	जघ. 1 समय उत्कृ. संख्यात वर्ष	अंतर नहीं	अंतर नहीं	अंतर नहीं	जघ. 1 समय उत्कृ. 6 समय	अंतर नहीं

31 समुद्घात	1 वेद, 2 क, 3 मरण	1 वेद, 2 क, 3 मरण, 4 वैक्रिय, 5 तैजस	1 वेद, 2 क, 3 मरण, 4 वैक्रिय, तैजस	6 (केवल वहीं)	0	1 केवल
32 क्षेत्र	लोक के असंख्य भाग	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	सभी लोक में असंख्य
33 स्पर्शन	लोक के असंख्य भाग	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्	पुलाकवत्
34 भाव	क्षयोपशम	क्षयोपशम	क्षयोपशम	क्षयोपशम	औपशमिक क्षायिक	क्षायिक
35 परिणाम	प्रतिपाद्यमान- कथंचित है कथंचित नहीं है । यदि हो तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्शत पूर्व प्रतिपन्न कथंचित् है कथंचित् नहीं है । यदि हे तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक् सहस्र	प्रतिपाद्यमान हो भी व न भी हो । यदि हो तो जघन्य 1, 2, 3 उत्कृ. पृथक्शत पूर्व प्रतिपन्न जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्शत् कोटि	बकुशवत्	प्रतिपाद्यमान हो भी व न भी हो । यदि हो तो जघन्य 1, 2, 3 उत्कृ. पृथक् सहस्र पूर्व प्रतिपन्न जघन्य-उत्कृष्ट पृथक् सहस्र कोटि	प्रतिपाद्यमान हो भी व न भी हो । यदि हो तो जघन्य 1,2,3 उत्कृ. 162 में 108 क्षपक व 54 उपशम पूर्व प्रतिपन्न हो भी व न भी हो हो तो जघन्य-1, 2,3 उत्कृष्ट पृथक्शत्	प्रतिपाद्यमान हो भी व न भी हो । यदि हो तो जघन्य 1, 2,3 उत्कृ. पृथक्शत पूर्व प्रतिपन्न जघन्य-उत्कृष्ट पृथक् कोटि
36 अल्प बहुत्व	2 संख्येय गुणा	4 संख्येय गुणा	5 संख्येय गुणा	6 संख्येय गुणा	1 स्तोक	3 संख्येय गुणा

(106) संयत कोष्टक (श्री भगवती श. 25, उ.7)

1	प्रज्ञापना	सामायिक 2	छेदोपस्थापनीय 2	परिहार विशुद्धि 3	सूक्ष्म संपराय 4	यथाख्यात 5
2	वेद	3 वेद अथवा अवेदी	सामायिकवत्	पुरुषवेद कृत नपुंसक वेद	उपशांत वेद क्षीण वेद	उपशांत वेद क्षीण वेद
3	राग	सरागी	सरागी	सरागी	सरागी	उपशांत राग क्षीण राग

4	कल्प	1 स्थित कल्प 2 अस्थित कल्प 3 जिन कल्प 4 स्थविर 5 कल्पातीत	1 स्थित कल्प 2 जिन कल्प 3 स्थविर कल्प	1 स्थित कल्प 2 जिन कल्प 3 स्थविर कल्प	1 स्थित कल्प 2 अस्थित कल्प 3 कल्पातीत	1 स्थित कल्प 2 अस्थित कल्प 3 कल्पातीत
5	पुलाकादिषट्	आद्य चार	आद्य चार	कषाय-कुशील एक	कषाय-कुशील एक	निर्ग्रथ एक, स्नातक दो
6	प्रतिसेवना	मूलगुण-उत्तरगुण सेवे और खंडित करे 3 अप्रतिसेवी	सामायिकवत्	अप्रतिसेवी	अप्रतिसेवा	अप्रतिसेवा
7	ज्ञान	2,3,4 प्रवचन जघन्य-8 प्रवचन उत्कृष्ट-14 पूर्व का पठन करें ।	सामायिकवत्	1,2,3 व 4 ज्ञान प्रवचन जघन्य- 9 पूर्व उ-10 पूर्व (कुछ न्यून)	2,3,4 ज्ञान प्रवचन जघन्य-8 उत्कृष्ट-14 पूर्व	2,3,4,1 ज्ञान प्रवचन जघन्य-8 पूर्व उ० 14 पूर्व (कुछ न्यून)
8	तीर्थ	तीर्थ व अतीर्थ में	तीर्थ में	तीर्थ में	तीर्थ व अतीर्थ में	तीर्थ व अतीर्थ में
9	लिंग	द्रव्य-में 3 लिंग भाव में स्वलिंग	सामायिकवत्	द्रव्य-भाव में 1 स्वलिंग	द्रव्य-में तीन, भाव में 1 स्त्रीलिंग	द्रव्य-में तीन, भाव में स्वलिंग
10	शरीर	5	5	3 औदा, तैजस, कार्मण	3 औदा, तैजस, कार्मण	3 औदा. तैजस, कार्मण
11	क्षेत्र	जन्म आश्रित कर्म भूमि, आश्रित सर्वत्र	जन्म-कर्म भूमि, संहरण-सर्वत्र	कर्म भूमि	जन्म-कर्म भूमि, संहरण-सर्वत्र	जन्म-कर्म भूमि, संहरण-सर्वत्र
12	काल	बकुशवत् अव- सर्पिणी-उत्सर्पिणी सोच लें ।	बकुशवत् सर्पि महाविदेह में जन्म नहीं ।	पुलाकवत्	निर्ग्रथवत्	निर्ग्रथवत्
13	गति	विराधक-4 जाति के देव में आराधक-ज. सौधर्म उ.-सर्वार्थ सिद्ध स्थिति—	सामायिकवत्	जघन्य-सौधर्म उत्कृष्ट 8वें देवलोक में	जघन्य-उत्कृष्ट पांच अनुत्तर में	अनुत्तर विमान में अथवा मोक्ष में

14	स्थिति, पदवी प्राप्त करें	जघन्य-2 पल्यो. उत्कृष्ट-33 सागरोपम पदवी-5 में से कोई भी 1	सामायिकवत्	जघ.-2 पल्योपम उत्कृ.18 सागरोपम पदवी-चार में कोई एक	जघ.-उत्कृष्ट-33 सागरोपम पदवी-अहमिन्द्र	जघ.-उत्कृष्ट-33 सागरोपम
15	संयम स्थिति अल्प बहुत्व	असंख्याते 4 असंख्य गुणे	असंख्याते 4 तुल्य	असंख्याते 3 असंख्य गुणे	असंख्याते, अन्तर्मुहूर्त के समय तुल्य 2 असंख्य गुणा	सर्व स्तोक
	चारित्र पर्याय के संनिकर्ष	सामायिक	छेदो०	परिहार०	सूक्ष्मसंपराय	यथाख्यात
		सा० 6	6	6	अनंतु गुणा हीन	अनंत गुण हीन
		छे० 6	6	6	" "	" "
		प० 6	6	6	" "	" "
		सू० अनंत गुणा अधिक	अनंत गुणा अधिक	अनंत गुणा अधिक	अनंत गुणा हीन " " अधिक	अनंत गुणा हीन तुल्य
	चारित्र पर्याय का जघन्य-उत्कृष्ट अल्प बहुत्व	1 स्तोक	1 तुल्य	2 अनंत गुणा	2 अनंत गुणा	0
		4 अनंत गुणा	4 "	3 "	3 "	2 अनंत गुणा
16	योग	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3	मन आदि 3 अथवा अयोगी
17	उपयोग	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2	साकार 1 अनाकार 2
18	कषाय	4,3,2,1 संज्वलन	4,3,2,1 संज्वलन	4 संज्वलन	1 लाभ 1 शक्लसंज्वलन	उपशांत अथवा क्षीण
19	लेश्या	6 द्रव्य	6 द्रव्य	3 प्रशस्त		1 परमशुक्ल
20	परिणाम	वर्धमान हीन-मान अवस्थित	वर्धमान हीय-मान अवस्थित	वर्धमान हीय-मान अवस्थित	वर्धमान, हीयमान	वर्धमान, हीयमान
	परिणाम स्थिति	वर्ध० जघन्य 1 सम्य उत्कृ०	सामायिकवत्	सामायिकवत्	वर्धमान ज.-1 समय उ. अन्त.	वर्धमान ज.-उ. अन्त. अवस्थित

		अन्त० हीयमान ज.1 समय उ० अन्त० अवस्थित जघन्य 1 समय उत्कृष्ट 7 समय			हीयमान ज. 1 समय उ. अन्तर्मु.	ज. 1 समय उ. देश ऊन पूर्व कोटि पूर्व
21	बंध	7,8	7,8	7,8	6 मोह० आयु नहीं	1 साता, अथवा अबंधक
22	वेदना (नीय) कर्म	8 वेदे	8 वेदे	8 वेदे	8 वेदे	7 या 4 वेदे
23	उदीरणा	8,7,6 आयु, वेदनीय छोडकर	8,7,6	8,7,6	6,5 आयु, वेदनीय, मोह छोडकर	5 या 2, अनुदीरक
24	उपसंपत्ति त्याग	सामायिक छोडकर छेदो 1, सू० 2, असंयम 3, संयमासंयम 4 आदरे	छेदो० छोडकर सा० 1, प० 2, सू० 3 असंयम 4 संयमासंयम 5 आदरे	परि० छोडकर छे० 1, असंयम 2, ए 2 आदरे	सूक्ष्म० छोडी, सा० 1, छे० 2, यथा० 3, असंयम 4, ए 4 आदरे	यथा० छोडी सू० 1, असंयम 2 आदरे
25	संज्ञा	4 संज्ञा या नोसंज्ञोपयुक्त	सामायिकवत्	सामायिकवत्	नोसंज्ञोपयुक्त	नोसंज्ञोपयुक्त
26	आहार	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी	आहारी या अनाहारी
27	भव कितने करे ?	ज० 1, उ० 8	ज० 1, उ० 8	ज० 1, उ० 3	ज० 1, उ० 3	ज० 1, उ० 3
28	आकर्ष एक भव आश्रित	ज० 1, उ० पृथक् शत	ज० 1, उ० 120	ज० 1, उ० 3	ज० 1, उ० 4	ज० 1, उ० 2
	आकर्ष अनेक भव आश्रित	ज० 1, उ० 7200	ज० 2, उ० नवसे से उपरांत, हजार के नीचे	ज० 2, उ० 7 बार	ज० 2, उ० 9	ज० 2, उ० 5
29	एक जीव आश्रित स्थिति	जघन्य 1 समय उत्कृ. 9 वर्ष न्यून पूर्व कोटि वर्ष		जघ. 1 समय उत्कृ. 29 वर्ष न्यून पूर्व कोटि वर्ष	जघ. 1 समय उत्कृ. अन्त.	जघन्य 1 समय उत्कृ. देश ऊन पूर्व कोटि वर्ष

	अनेक जीव आश्रित स्थिति	सर्वाद्धा	जघ.250 वर्ष उत्कृ.50 लाख कोटि सागरोपम	जघ. देश ऊन 200 वर्ष उत्कृ. देशोन दो पूर्व कोटि वर्ष	जघ.1 समय उत्कृ. अन्त.	सर्वाद्धा
30	एक जीव आश्रित अंतर	जघ.अन्त.उत्कृ. अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल)	जघ.अन्त.उत्कृ. अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल)	जघ.अन्त.उत्कृ. अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल)	जघ.अन्त.उत्कृ. अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल)	जघ.अन्त.उत्कृ. अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल)
	अनेक जीव आश्रित अंतर	अंतर नहीं	जघ. 63000 वर्ष उत्कृ.18 कोटाकोटि सागरोपम	जघ. 84000 वर्ष उत्कृ.18 कोटाकोटि सागरोपम	जघ. 1 समय उत्कृ.6 मास	अंतर नहीं
31	समुद्घात	6 (केवली समु. छोड)	6	वेदना, कषाय और मरण ये 3 समुद्घात	0	1 केवल
32	क्षेत्र	लोक का असंख्य भाग	लोक का असंख्य भाग	लोक का असंख्य भाग	लोक का असंख्य भाग	असंख्य में अनेक असंख्य सर्व लोक
33	स्पर्शना	लोक के असंख्य भाग में	लोक के असंख्य भाग में	लोक के असंख्य भाग में	लोक के असंख्य भाग में	"
34	भाव	क्षयोपशम	क्षयोपशम	क्षयोपशम	क्षयोपशम	उपशम, क्षय
35	परिमाण	प्रतिपद्यमान हो वन भ हो । जो हो तो जघन्य से 1,2,3 उत्कृ. पृथक् सहस्र, पूर्व प्रतिपन्न पृथक् सहस्र करोड	प्रतिपद्यमान हो व न भी हो । हो तो जघन्य से 1,2,3 उत्कृष्ट- पृथक्शत पूर्व प्रतिपन्न हो व न भी हो तो जघन्य- उत्कृष्ट पृथक्शत कोटि	पुलाकवत्	निर्ग्रथवत्	प्रतिपद्यमान हो व न भी हो – हो तो जघन्य 1,2, 3 उत्कृष्ट 162 पूर्व प्रतिपन्न पृथक् कोटि
36	अल्प बहुत्व	5 संख्येय गुणा	4 संख्येय	2 संख्येय गुणा	1 स्तोक	3 संख्येय गुणा

(107) संयत कोष्ठक (श्री भगवती श. 25, उ.7)

1 कोष्ठक	मूल गुण पचचक्राणी	उत्तर गुण पचचक्राणी	अपचचक्राणी
जीव	1 स्तोक	2 असंख्येय	3 अनंत
तिर्यच पंचेन्द्रिय	1 स्तोक	2 असंख्येय	3 असंख्य
मनुष्य	1 स्तोक	2 असंख्येय	3 असंख्य
2 कोष्ठक	सर्वमूल	देश मूल	अपचचक्राणी
जीव	1 स्तोक	2 असंख्य	3 अनंत गुणा
तिर्यच पंचेन्द्रिय	0	1 स्तोक	3 असंख्य
मनुष्य	1 स्तोक	2 संख्येय	3 असंख्य
3 कष्ठक	सर्व उत्तर गुण पचचक्राणी	देश उत्तर गुण पचचक्राणी	अपचचक्राणी
जीव	1 स्तोक	2 असंख्य	3 अनंत
तिर्यच पंचेन्द्रिय	1 स्तोक	2 असंख्य	3 अनंत
मनुष्य	1 स्तोक	2 संख्य	3 असंख्य

(108) दशविध यति धर्म (स्थानांग-दसवें स्थान में)

	नाम पाठ	अर्थ		नाम पाठ	अर्थ
1	खंती	क्रोध निग्रह	6	सच्चे	सत्यवादी
2	मुत्ती	निर्लोभता	7	संजमे	17 संयमवान्
3	अज्जवे	सरल स्वभाव	8	तवे	12 भेद वाला तपस्वी
4	मद्दे	मार्दव (अहंकार रहित कोमल स्वभाव)	9	चियाए	अल्प परिग्रही
5	लाघवे	द्रव्य-भाव से हल्का	10	बंधचेर वासे	ब्रह्मचर्य के साथ सोए

दस बोल में वास शब्द इसलिए कहा है कि जिस प्रकार गृहस्थ स्त्री के संग शयन करता है वैसे ही शील का संग कर रात्रि में वास करे—(टीका)

(109) 22 परिषह कोष्ठक (भगवती शकत 8, उद्देश 8)

	आठ कर्म के बंध में परिषह 22	षड्विध बंधक में एक बंध छद्मस्थ में	एकविध बंधक वीतराग केवली में 11	किस कर्म के उदय में कौन सा परिषह
1.	क्षुध	अस्ति 1	अस्ति 1	वेदनीय के उदय 1 से
2.	तृषा	" 2	" 2	"
3.	शीत	" 3	" 3	"
4.	उष्ण	" 4	" 4	"

5.	दंश मशक	" 5	" 5	"
6.	अचेल	0	0	चारित्र मोह के उदय से
7.	अरति	0	0	चारित्र मोह के उदय से
8.	स्त्री	0	0	चारित्र मोह के उदय से
9.	चर्या	अस्ति 6	अस्ति 6	वेदनीय " "
10.	नैषेधिकी	0	0	चारित्रमोह " "
11.	शय्या	अस्ति 7	अस्ति 7	वेदनीय " "
12.	आक्रोश	0	0	चारित्रमोह " "
13.	वध	अस्ति 8	अस्ति 8	वेदनीय " "
14.	याचना	0	0	वेदनीय " "
15.	अलाभ	अस्ति 9	0	अंतराय
16.	रोग	" 10	अस्ति 9	वेदनीय " "
17.	तृण स्पर्श	" 11	" 10	" "
18.	मल	" 12	" 11	"
19.	सत्कार-पुरस्कार	0	0	चारित्रमोह " "
20.	प्रज्ञा	अस्ति 13	0	ज्ञानावरण " "
21.	अज्ञान	" 14	0	" "
22.	दर्शन	0	0	दर्शन मोह

सत्ता 22	14	11
एक साथ वेदन 20 22 में चर्या-नैषेधिकी में से कोई एक तथा शीत उष्ण में से कोई एक	शीत हो तो उष्ण न हो, उष्ण हो तो शात न हो चर्या-शय्या में से कोई एक-इस प्रकार 19	शीत-उष्ण में से ओक चर्या-शय्या में से एक इस प्रकार 9 का वेदन करते हैं-अयोगी को भी इसी प्रकार

प्रश्न — कोई पुरुष शीत काल में अग्नि ताप रहा हो तो उसके एक ओर उष्ण परिषह है और एक ओर शीत है तो दोनों परिषह एक साथ क्यों नहीं हो सकते ?

उत्तर — इन दोनों परिषहों की अपेक्षा शीतकाल और उष्णकाल की अपेक्षा से है-अग्नि के ताप की अपेक्षा से नहीं । (इति टीका में)

परिषह की चर्चा करते हुए भगवती सूत्र की टीका में इस प्रकार कहा गया है—

जं समयं चरिया० नो तं समयं निसिहिया० (भगवती शतक 8, उद्देश 8, सूत्र 343)
इत्यादि वहां चर्या परिषह तो ग्राम आदि के विहार में, 'नैषेधिक परिषह' ग्राम में मास कल्प आदि रहना और 'शय्या परिषह' उपाश्रय में जाकर बैठना । इस अर्थ के अनुसार विहार और अवस्थान (अर्थात् ठहरना) में परस्पर विरोध है अतः एक काल में संभवित नहीं है ।

प्रश्न—नैषेधिक औषध शय्या ये दोनों चर्या के साथ विरोधी हैं, तो भी दोनों का एक काल में संभव हुआ, एक काल में संभव होने से ही एक काल में 11 परिषह का वेदन सिद्ध हुआ है ?

उत्तर—ऐसा नहीं है ।

प्रश्न—क्यों ?

ग्राम आदि जाने में जो प्रवृत्त है, उस काल में चलता हुआ भोजन—विश्राम के लिए औत्सुक्य परिणाम सहित थोड़े काल के लिए शय्या में रहा है, उस काल में शय्या परिषह की चर्या और नैषेधिकी दोनों के साथ संबंध हैं, इस कारण 20 परिषह का काल में वेदन करते हैं । यह जो कहा गया है वह षड्विध बंधक के आश्रित कहा गया है, जिस समय चर्या है, उस समय में शय्या नहीं है—यह कैसे संभव होगा ?

उत्तर—षड्विध बंधक को मोहनीय कर्म उदय में बहुत नहीं है, इसलिए शय्या काल में शय्या ही है, परंतु बादर राग के उदय अनुसार औत्सुक्य युक्त विहार के परिणाम नहीं होते हैं—इस कारण परस्पर विरोधी होने से दोनों एक काल में एक साथ नहीं होते हैं ।

पांच समिति और तीन गुप्ति का स्वरूप

(उत्तराध्ययन के 24 वें अध्ययन के आधार पर)

1 ईर्या समिति—यह समिति चार प्रकार से होती है—(1) आलंबन (2) काल (3) मार्ग (4) यत्ना ।

(1) **आलंबन**—ज्ञान, दर्शन और चरित्र का अवलंबन लेकर शुद्ध ईर्या की शोध करना ।

(2) **काल**—कास की अपेक्षा दिन में ईर्या की शोध करना ।

(3) **मार्ग**—मार्ग की अपेक्षा उत्पथ का त्याग करें ।

(4) **यत्ना**—यत्ना के चार भेद हैं—(1) द्रव्य (2) क्षेत्र (3) काल और (4) भाव ।

(1) द्रव्य की अपेक्षा चक्षु से देख कर चले ।

(2) क्षेत्र की अपेक्षा चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले ।

(3) काल की अपेक्षा जितने काल चलने का हो तब यत्ना पूर्वक चले ।

(4) भाव की अपेक्षा उपयोग सहित चले ।

प्रश्न—उपयोग से कैसे ?

उत्तर—पांच इन्द्रियों के विषय तथा पांच प्रकार के वाचना आदि स्वाध्याय रहित शरीर को ईर्या समिति में जोड़ना । उपयोग पूर्वक ईर्या में उद्यम को ईर्या समिति कहते हैं ।

2 भाषा समिति—(1) क्रोध (2) मान (3) माया (4) लोभ (5) हास्य (6) भय (7) मौख्य एवं (8) विकथा—इन आठ स्थानकों का त्याग कर बोलना ।

असावद्य मर्यादा सहित भाषा बोले । उचित समय में बोले तथा दश भेद वाले सत्य व बारह भेद वाले व्यवहार—इस प्रकार 22 भेद से भाषा बोले ।

भाषा के 22 भेद हैं ।

सत्य के 10 भेद हैं—

(1) **जनपद सत्य**—जिस देश में जो भाषा बोली जाती है वह भाषा वहां बोले वह जनपद सत्य कहलाता है । जैसे कोंकण देश में पानी को पिंछ, किसी देश में बड़े पुरुष को बेटा, व बेटे को काका, पिता को भाई व सास को आई कहते हैं । वह भी सत्य है ।

(2) **सम्मत सत्य**—कीचड़ से मेंढक, सेवाल और कमल उत्पन्न होते हैं, फिर भी कमल को पंकज कहते हैं किंतु मेंढक व सेवाल को पंकज नहीं कहते हैं ।

(3) **स्थापना सत्य**—जिसकी मूर्ति स्थापित की हो उस मूर्ति को देव आदि कहना स्थापना सत्य है ।

(4) **नाम सत्य**—‘कुलवर्धन’ नाम हो फिर चाहे वह कुल का क्षय करे तो भी ‘कुलवर्धन’ कहना झूठ नहीं है ।

(5) **रूप सत्य**—गुणों से भ्रष्ट हो फिर भी साधु वेषधारी को साधु कहा जाता है, वह रूप सत्य है ।

(6) **अपेक्षा सत्य**—जैसे मध्यमा की अपेक्षा अनामिका कनिष्ठा अंगुली है ।

(7) **व्यवहार सत्य**—जैसे पर्वत जल रहा हैं, रास्ता जाता है, इत्यादि ।

(8) **भाव सत्य**—जैसे तोते में पांच वर्ण होने पर भी तोते को हरा कहना ।

(9) **योग सत्य**—दंड के संयोग से दंडी व छत्र के संयोग से छत्री कहना इत्यादि ।

(10) **उपमा सत्य**—चंद्रवत् वदन, समुद्रवत् तडाग ।

असत्य कोष्टक

(1) **क्रोध निश्चित**—क्रोध के उदय से बोले ।

(2) **मान निश्चित**—मान के उदय से बोले ।

(3) **माया निश्चित**—माया के उदय से बोले ।

(4) **लोभ निश्चित**—लोभ के उदय से बोले ।

(5) **राग निश्चित**—राग के उदय से बोले ।

(6) **द्वेष निश्चित**—द्वेष के उदय से बोले ।

(7) **हास्य निश्चित**—हास्य के उदय से बोले ।

(8) **भय निश्चित**—भय के उदय से बोले ।

(9) **आख्यात निश्चित**—विकथा करे ।

(10) **उपघात निश्चित**—हिंसाकारी वचन बोले ।

मिश्र भाषा

मिश्र भाषा पा.	अर्थ	मिश्र	अर्थ
1 उत्पन्न मिसिया	इस गांव में दस बालक जन्मे हैं ।	6 जीवाजीव मिसिया	जीव-अजीव दोनों की मिश्र भाषा बोलें ।
2 विगय मिसिया	इस गांव में आज दस लोग मरे हैं ।	7 अनंत मिसिया	मूली आदि कंद में अनंत जीव हैं, उसे प्रत्येक जीव कहना ।
3 उत्पन्न विगय मिसिया	इस गांव में दस पैदा हुए हैं, दस की मृत्यु हुई है ।	8 परत मिसिया	प्रत्येक को अनंतकाय कहे ।
4 जीव मिसिया	एकत्र सभी जीव हैं ।	9 अद्धा मिसिया	प्रथम प्रहर के तडके से ही कहे-उठरे । दिन चढ़ गया है ।
5 अजीव मिसिया	अन्न की राशि देखकर कहे कि यह तो अजीव है	10 अद्धा मिसिया	दीर्घ काल का झूठ । रात की एक घड़ी बीतने पर कहे-दिन चढ़ गया है ।

व्यवहार भाषा के बारह भेद -

- (1) आमंताणि-हे भगवन् ।
- (2) आणवणि-यह काम कर तथा यह वस्तु ला ।
- (3) जायणि-यह हमें देंगे ।
- (4) पुच्छणि-गांव आदि का मार्ग पूछना ।
- (5) पन्नवणि-धर्म ऐसे होता है ।
- (6) पच्चक्खाणी-यह काम हम नहीं करेंगे ।
- (7) इच्छाणुलोभ-जहासुह-देवानुप्रिय ।
- (8) अणभिग्गहिया-आगे कहा गया अच्छी तरह से समझे न ?
- (9) अभिग्गहिया-मुझे ठीक है ।
- (10) संसयकारण-पता नहीं, कैसे हैं !
- (11) वोगडा-प्रकट अर्थ कहें ।
- (12) अवोगडा-अप्रकट अर्थ ।

भाषा के ये 42 भेद हैं । सत्य 10, व्यवहार 12, भेद कुल 22 ।

3 एषणा समिति का स्वरूप विस्तार सहित पिंडनिर्युक्ति तथा पिंडविशुद्धि से जान ले ।

4 आदान भंड निक्षेप समिति-उपधि के दो भेद हैं- (1) औधिक और (2) औपग्रहिक जो उपधि साधु-साध्वी सदैव रखते हैं, वह औधिक और जो कदाचित् कार्य पैदा होने पर ग्रहण की जाती है वह औपग्रहिक कहलाती है ।

औघिक उपधि-

उवही उवग्गहे संगहे य तह पग्गहुग्गहे चेव ।♦

भंडग उवगरणे वि य करणे वि य हुंति एगद्धा ॥1॥ (ओघ. 666)

पत्तं पत्ताबंधो पायड्वणं च पायकेसरिया ।

पडलाइ रयत्ताण (च) गुच्छओ पायनिज्जोगो ॥2॥ (ओ.668)

तिन्नेव य पच्छागा रयहरणं चेव होइ मुहपोत्ती ।

एसो दुवालस विहो उवही जिण कप्पियाणं तु ॥3॥ (ओ.669)

एए चेव दुवालस मत्तग । अइरेग चोलपट्टो य ।

एसो चउदस विहो उवही पुण थेरकप्पंमि ॥4॥ (ओ. 670)

पत्तं पत्ताबंधो पायड्वणं च पायकेसरिया ।

पडलाइ रयत्ताणं (च) गुच्छओ पायनिज्जोगो ॥5॥ (ओ. 674)

तिन्नेव य पच्छागा रयहरण चेव होइ मुहपोत्ती ।

तत्तो (य) मत्तउ खलु चउदसमो कमढगो चेव ॥6॥ (ओ. 675)

उग्गहणंतग पट्टो उट्ठोरु (अट्ठोरुअ) चलणिया य बोद्धव्या ।

अब्भितर बाहरि (हिर 1) नियंसणी य तह कंचुए चेव ॥7॥ (ओ. 676)

उग (क्क) छिद्य वेगच्छिद्य संघाडी चेव खंधकरणी य ।

ओहोवहिंमि एए अज्जाणं पन्नवीसं तु ॥8॥ (ओ. 677)

उक्कोसगो जिणाणं चउवि (व्विहा) मज्झिमो वि एमेव ।

जहन्नो चउविहो खलु एतो थेराण वुच्छामि ॥9॥

♦ उपधिरुपग्रहः संग्रहश्च तथा प्रतिग्रहश्चैव ।

भाण्डकमुपकरणमपि, च करणे पि च भवन्ति एकार्थाः ॥1॥

पात्रं पात्रबन्धः पात्रस्थापनं च पात्रकेसरिका ।

पटलानि रजस्त्राणं (च) गुच्छक पात्रनिर्योगः ॥2॥

त्रय एव च प्रच्छादका रजोहरणं चैव भवति मुखपत्तिः (वत्रिका)।

एष द्वादशविध उपधिर्जिनकल्पिकानां तु ॥3॥

एते चैव द्वादश मात्रकमतिरिक्तं चोलपट्टश्च ।

एष चतुर्दशविधं उपधिः पुनः स्थविर कल्पे ॥4॥

ततो मात्रकश्चतुर्दशमः कमढगं चैव ॥6॥

अवग्रहानन्तकं पट्टोर्धोरुकं चलनिका च बोद्धव्या ।

आभ्यन्तरा बाहिरा निवसनी च तथा कञ्चुकश्चैव ॥7॥

औपकच्छिकं वैकक्षिकं सङ्घाटी चैव स्कन्धकरणी च ।

ओघोपधौ एते आर्याणां पञ्चविंशतिस्तु ॥8॥

उत्कृष्टो जिनानां चतुर्विधो मध्यमोपि एवमेव ।

जघन्यश्चतुर्विधः खलु इतः स्थविराणां वक्ष्ये ॥9॥

उक्कोसो थेराणं चउवि (वि)। हो छवि (वि) हो उ मज्झिमओ ।

जहन्नो चउवि (वि) हो खलु एत्तो अज्जाण साहेमि ॥10॥

उक्कोसो अट्ठविहो मज्झिमओ होइ तेरसविहो उ ।

जहन्नो चउवि (वि) हो, खलु तेण परमुवग्गहण जाणे (ण) ॥11॥ (ओ. 678)

एगं पायं जिणकप्पियाण थेराण मत्तओ बीओ ।

एयं गणण पमाणं पमाणमाणं अओ वुच्छं ॥12॥ (ओ. 679)

तिन्नि विहत्थी चउरंगुलं च भाणस्य मज्झिम पमाणं ।

इत्तो हीण जहन्नं अइरेगयरं तु उक्कोसं ॥13॥ (ओ. 680)

पत्ताबंध पमाणं भाणपमाणेण होइ नायव्वं ।

जह गंठिमि कयंमि कोणा चउरंगुला हुंति ॥14॥ (ओ. 693)

पत्तद्ववणं तह गुच्छओ य पाय पडिलेहणी (णि) या य ।

तिण्हंपि य पमाणं विहत्थि चउरंगुलं चेव ॥15॥ (ओ. 694)

जेहिं सविया न दीसइ अंतरिओ तारिसा भवे पडला ।

तिन्नि व पंच व सत्त व कदलीगब्भोवमा मसिणा ॥16॥ (ओ. 697)

अड्ढाइज्जा हत्था दीहा छत्तीस अंगुले रुंदा ।

बीयं च (बितियं) पडिग्गहाओ ससरीराओ य निष्फन्नं ॥17॥ (ओ. 701)

उत्कृष्टः स्थविराणां चतुर्विधः षड्विधस्तु मध्यमकः ।

जघन्यश्चतुर्विधः खलु इत आर्याणां कथयामि (1) ॥10॥

उत्कृष्टोष्टविधो मध्यम को भवति त्रयोदशविधस्तु ।

जघन्यश्चतुर्विधः खलु तेन परमुपग्रहं जानीयात् ॥11॥

एकं पात्रं जिनकल्पिकानां स्थविराणां मात्रकं द्वितीयम् ।

एतद् गणनाप्रमाणं प्रमाणमानमतो वक्ष्ये ॥12॥

त्रयो विहस्तयश्चतुरङ्गुलं च भाजनस्य मध्यमप्रमाणं ।

अतो हीनं जघन्यमतिरिक्ततरं तूत्कृष्टम् ॥13॥

पात्रबन्धप्रमाणं भाजन प्रमाणेन भवति ज्ञातव्यम् ।

यथा ग्रन्थौ कृते कोणाश्चतुरङ्गुला भवन्ति ॥14॥

पात्रस्थापनं तथा गुच्छकश्च पाद प्रतिलेखनिका च ।

त्रयाणामपि च प्रमाणं विहस्तिश्चतुरङ्गुलं चैव ॥15॥

यैः सविता न दृश्यतेन्तरितस्तादृशानि भवन्ति पटलानि ।

त्रीणि पञ्च वा सप्त वा कदली गर्भोपानि मसृणानि ॥16॥

अर्धतृतीयहस्तदीर्घाणि, षट्त्रिंशदङ्गुलानि रुन्द्राणि ।

द्वितीयं तु पतद्ग्रहात्, स्वशरीराच्च निष्पन्नम् ॥17॥

माणं तु स्यत्ताणे भाण पमाणेण होइ निष्फन्नं ।
पायाहिणंकरंतं मज्झे चउरंगुलं कमइ ॥18॥ (ओ. 703)

कप्पा आयपमाणा अङ्गा इज्जा य वित्थडा हत्था ।
दो चेव सुत्तिया उ उन्निय तइओ मुणेयव्वो ॥19॥ (ओ. 705)

बत्तीसंगुसदीहं चउवीसंगुलाई दंडो से ।
अङ्गुला दसाओ एगतरं हीणभहियं वा ॥20॥ (ओ. 708)

उन्नियं उट्ठियं वा वि कंबलं पाय पुच्छणं ।
तिपरीयत्त मणिस्सट्ठं सय हरणं धारए इक्कं ॥21॥ (ओ. 709)

चउरंगुलं विहत्थी एवं मुहणंतगस्स उ पमाणं ।
बीयं मुहप्पमाणं, गणणपमाणेण इक्किक्कं ॥22॥ (ओ. 711)

जो मागहओ पत्थो सविसेसयरं तु मत्तग पमाणं ।
दोसु वि दव्वग्गहणं वासा वासासु अहिगारो ॥23॥ (ओ. 713)

सूओदणस्स भरियं दुगाउमद्वाणमागओ साहू ।
भुंजइ एगट्ठाणे एयं किर मत्तयपमाणं ॥24॥ (ओ. 714)

दुगुणो चउगुणो वा हत्थो चउरंस चोलपट्टो य ।
थेरजुवाणाणट्ठा सण्हे थूलंमि य विभासा ॥25॥ (ओ. 721)

मानं तु रजस्त्राणे भाजन प्रमाणेन भवति निष्पन्नम् ।
प्रादक्षिण्यं कुर्वन् मध्ये चतुरङ्गुलानि क्रामति ॥18॥
कल्पा आत्मप्रमाणा अर्धतृतीयांश्च विस्तृता हस्तान् ।
द्वौ चेव सौत्रिकी तु और्णिकस्तृतीयो ज्ञातव्यः ॥19॥
द्वात्रिंशदङ्गुलदीर्घं चतुर्विंशतिरङ्गुलानि दण्डं उस्तस्य ।
अष्टाङ्गुला दशा एकतरं हीनमधिकं वा ॥20॥
और्णिकं औष्ट्रिकं वापि कम्बलं पाद प्रोञ्छनम् ।
त्रिः परिवर्तमनिसृष्टं रजोहरणं धारयेदेकम् ॥21॥
चतुरङ्गुलं वितस्तिरेवं मुखान्तकस्य त प्रमाणम् ।
द्वितीयं मुखप्रमाणं गणनप्रमाणेनैकैकम् ॥22॥
यो मागधकः प्रस्थः सविशेषतरं तु मात्रक प्रमाणम् ।
द्वयोरपि द्रव्यग्रहणं वर्षावर्षयोरधिकारः ॥23॥
सूपौ दनेन भृतं द्विगव्यूताध्वन आगतः साधुः ।
भुङ्क्ते यदेकं स्थानमेतत् किल मात्रकस्य प्रमाणम् ॥24॥
द्विगुणश्चतुर्गुणो वा हस्तश्चतुरस्रश्चोलपट्टश्च ।
स्थविर यूनामर्थाय श्लक्ष्णे स्थूले च विभाषा ॥25॥

संथारुत्तरपट्टो अड्डाइज्जाय अयया हत्था ।

दोहणं पि य वित्थारो हत्थो चउरंगुलं चेव ॥26॥ (ओ. 723)

रय हरणपट्टमिता अदसागा किंचि वा समइरेगा ।

इक्कगुणा उ निसिज्जा हत्थ पमाणा सपच्छागा ॥27॥ (ओ. 725)

वासोवग्गहिओ पुण दुगुणो अवही उ वासकप्पई ।

आया संजमहेउं इक्कगुणो सेसओ होइ ॥28॥ (ओ. 726)

जं पुण सपमाणाओ ईसिं हीणाहियं व लंभिज्जा ।

उभयं पि अहाकडयं न संघणा तस्स छेओ वा ॥29॥ (ओ. 727)

इति औघिकोपधिः संपूर्णः ।

अथ—औपग्राहिकं उपकरमाह—औपग्राहिक उपधि के तीन भेद हैं— (1) जघन्य (2) मध्यम और (3) उत्कृष्ट ।

तत्र प्रथमं जघन्यमाह—

पीठ 1. निसिज्जा 2. दंडग 3. पमज्जणं 4. घट्ट 5. डगल 6. पिप्पलग 7. सूइ 8. नहरणी 9. दंत सोधणी 10. कन्न सोधणी इति जघन्यम् ।

संस्तारकोत्तरपट्टो अर्द्धतृतीयौ च आयतौ हस्तौ ।

द्वयोरपि च विस्तारो हस्तश्चतुरङ्गुलं चैव ॥26॥

रजोहरण पट्टमात्रा अदशाका किञ्चित् समतिर का वा ।

एक गुणा तु निषद्या हस्तप्रमाणा सपाश्चात्या ॥27॥

वर्षोपग्राहिकः पुनर्द्विगुणोवधिस्तु वर्षाकल्पादिः ।

आत्मसंयमहेतुरेकगुणः शेषको भवति ॥28॥

यत् पुनः स्वप्रमाणादीषद्वीनमधिकं वा लभ्येत् ।

उभयमपि यथाकृतं न सन्धना तस्य छेदो वा ॥29॥

पीठकं निषद्या दण्डकः प्रमार्जनी घटको डगलं पिप्पलकः सूची नखहरणी दन्तकर्णशोधनक्यौ ।

अर्थ—औपग्राहिक उपकरण के तीन भेदों में से मध्यम भेद की निरूपणा करते हैं—

वर्षात्राण आदि वध्यम औपग्राहिक है, जिनमें वर्षात्राण 5 प्रकार का हैं—

1. उष्ट्रादि के बालों से बना 2 ऊन के सूत्र से 3 सूची-ताडपत्र के पत्तों से बना हुआ 4 कुट शीर्षक-पलाश के पत्तों से बना हुआ और 5 बांस का बना हुआ छत्र ।

इनमें से पूर्व दो भेद कंबल रूप होने से ओघ उपधि में आ जाते हैं, शेष तीन भेद वर्षात्राण के जानने चाहियें ।

चिलिमिली-पर्दे के पांच प्रकार निम्नलिखित हैं—(1) बालों से बना हुआ (2) सूत्र से बना सूती या ऊनी रज्जु से (3) शण आदि वृक्ष की छल्ली से बना वत्कलमयी (4) कटमयी—बांस की चटाई से बना हुआ (5) दंडमयी बांस या बेंत की लकड़ी से बना हुआ ।

संस्तारक द्विक-शुषिर-अशुषिर के भेद से ।

वासत्ता (त) णाइ उ मज्झिमगो वासत्ताण पंच इमे ।

वाले सुत्ते सूइ कुडसीसग छत्त ए चेव ॥2॥

तहियं दुन्निय ओहो वहं (हिं) मि वाले य सुत्ति ए चेव ।

सेस तिय वासताणायणं तह चिलमिलीण इमं ॥3॥

वालमई सुत्तमई वागमई तह य दंडकडगमई ।

संथार दुगमप्पु सिरिपियदंडगपो (प्प 1) णगं ॥4॥

दंड विदंड लट्ठी विलट्ठी तह नालिया य पंच ।

अवलेहणिमत्तटिगं पासवणुच्चार खेले य ॥5॥

चिंचिणिया बुर पेपी उरतलिगा अहवा विचंमतिविहिमिमं ।

कत्ती तलिगा वहु झाझाध पट्टदुगं चेव होइमिमं ॥6॥

संथारुपट्टो अहवा सन्नाहपट्ट पल्हत्थी ।

मज्झो अज्जाणं पुण अइस्सितो वारगो होइ ॥7॥

लट्ठी आयपमाणा विलडिं चउरंगुलेण परिहीणा ।

दंडो बाहुपमाणो विदंडओ कक्खमित्तो य ॥8॥ (ओ. 730)

सिरसोवरिं चउरंगुलं दीहा उ नालिया होई ।

अवलेहणि वटोंबुर तस्स अला (व) भंमि चिंचिणिया ॥9॥ इति मज्झिम ।

दंड के पांच प्रकार-1 दंड 2 विदंड 3 यष्टि 4 वियष्टि और 5 नालिका ।

अवलेखनिका (अवलेखनिका ईमली, वट, ऊंबर अथवा पीपल के लकड़े की होती है) वर्षा ऋतु में पांव पर लगे कर्दम को निकालने के लिए लकड़े की दो धारी चाकु की आकृति वाला ।

मिट्टी की तीन कुंडियां—(1) बड़ी शंका हेतु (2) लघु शंका हेतु और (3) कफ हेतु ।

तलिका अथवा चर्मत्रिक-तलिका के तीन भेद—1 कृत्ति-मृगचर्म (कारणिक-बैठने के लिए) 2 तलिका-पांव के नीचे बांधने के लिए । 3 वर्ध-चर्म रज्जु ।

चर्म के तीन भेद—(1) दावानल के भय से जमीन पर बिछाकर बैठने आदि के लिए ।

(2) यूका आदि के भय से जो पहिना जाय वह चर्म ।

(3) अर्श-मसों की व्याधि के कारण जिस पर बैठा जाय वह अर्श ।

पट्ट के दो प्रकार हैं—(1) **संथारा** और (2) उत्तर पट्टा अथवा सन्नाह पट्ट और पर्यस्तिका पट्ट ये दो पट्ट हैं । सन्नाह पट्ट का उपयोग विहार में उपधि को शरीर के साथ बांधने के लिए होता है ।

पर्यस्तिकपट्ट को योगपट्ट कहते हैं । ये सब साधुओं के औघिक उपधि के मध्यम भेद हुए ।

साध्वीजी के लिए विशेष में वारक-जल पात्र-लघुशंका विसिराने के पश्चात् जल स्पर्श के लिए ।

यष्टि देह प्रमाण, वियष्टि चार अंगुल हील, दंड-बाहु प्रमाण, विदंड-कक्षा प्रमाण, नालिका देह प्रमाण से अधिक चार अंगुल लंबी समझना चाहिये ।

उत्कृष्टमाह—

अक्खा संथारो वा दुविहो एकंगिओ तदियरो वा ।
बीय पयपुत्थपणगं फलगं तह होई उक्कोस ॥10॥

तथा-दंडए सड्डिया चैव चम्मए चम्मकोसए ।

चम्मच्छेयणए पट्टो चिलिमिली धारए गुरु ॥11॥ (ओ. 728)

जं चन्न एवमाई तव संजमसाहगं जइजणस्स ।
ओहाइरेगगहियं उवगहियं तं वियाणाहि ॥12॥ (ओ. 729)

जं जस्स उ उवयारो उवगरणं (जुज्जइ उवगरणे) तंसि होई उवगरणं ।

अइरेगं अहिगरणं अजतो अजयं परिहरंतो ॥13॥ (ओ. 741)

न केवलमइस्तिं अहिगरणं पइमियं पि जो अजओ ।
परिजुंजइ उवगरणं अहिगरणं तस्स वि होई ॥14॥

इति ।

अथ उपगरणधारण कारणानि—

छक्कायरक्खणद्धा पायगहणं जिणेहिं पन्नत्तं ।
जे य गुणा संभोए हवन्ति ते पाय गहणे (त्ति) (वि) ॥1॥ (ओ. 611)

अतरंत बाल बुद्धासेहाएसा गुरु असहुवग्गे ।

साहारणुगहालद्धिकारणा पायगहणं तु ॥2॥ (ओ. 692)

रयमाइरक्खणद्धा पत्तगठवणं वि उवइस्संति ।
होइ पमज्जणहेउं गुच्छओ भाणवत्थाणं ॥3॥ (ओ. 694)

सर्व प्रथम अवलेखनिका वट या उंबर की लें, कभी न मिले तो ईमली के लकड़े की ले ।

अक्षाः संस्तारको वा द्विविध एकान्तरस्तदितरो वा ।
द्वितीयं पुस्तक पञ्चकं फलकं यथा भवत्युत्कृष्टा ॥10॥

दण्डको यष्टिका चैव चर्मकश्चर्मकोशकः ।
चर्मच्छेदनक पट्टः चिलिमिली (यवनिका) धारयेद् गुरुः ॥1॥

यच्चान्यदेवमादि तपः संयमसाधकं युतजनस्य ।
औघातिरेकं गृहीतमोपग्रहिकं विजानीहि ॥2॥

यदुपयुज्यते उपकरणे तदेव भवति उपकरणम् ।
अतिरेकमधिकरणं अयतोयतं परिहरन् ॥3॥

न केवलमतिरिक्तमधिकरणं परिमितमपि योयतः ।
परियुनक्ति उपकरणं अधिकरणं तस्यापि भवति ॥4॥

षट्काय रक्षणार्थं पात्रग्रहणं जिनैः प्रज्ञप्तम् ।
ये च गुणाः सम्भोगे भवन्ति ते पात्रग्रहणे इति ॥1॥

पायपमज्जणहेउं केसरिया पाए पाए इक्किक्का ।
गुच्छग पत्तद्ववणं इक्किक्कं गणणमाणेणं ॥4॥ (ओ. 696)

**पुष्पफलोदयरयरेणु सउण परिहार पाय रक्खद्धा ।
लिंगस्स य संवरणे वे ओदयरक्खणे पडला ॥5॥ (ओ. 702)**

मूसगरय उक्केरे वासे (सा) सिन्हा रए य रक्खद्धा ।
हुंति गुणा रयताणे पाए पाए य इक्केक्कं ॥6॥ (ओ. 704)

**तण गहणानल सेवा निवारणा धम्म सुक्क झाणडा ।
दिढ्ठं कप्पग्गहणं गिलाण मरणद्धया चेव ॥7॥ (ओ. 706)**

आयाणे निक्खेवे ठाण निसीयण तुयट्ट संकोए ।
पुवं पमज्जणद्धा लिंगद्धा चेव रयहरणं ॥8॥ (ओ. 710)

**संपाइमरयरेणुपमज्जणद्धा वयंति मुहपत्तिं ।
नासं मुहं च बंधइ तीए वसहिं पमज्जंतो ॥9॥ (ओ. 712)**

अतो प्लानबालवृद्धशिक्षिकादेशा गुरु असहिष्णुग्रहः ।
साधारणावग्रहात् अलब्धिकारणात् पात्रग्रहणं तु ॥2॥
रज आदिरक्षणार्थं पात्रकस्थापनमपि तूपदिशन्ति ।
भवति प्रमार्जनहेतुर्गुच्छको भाजनवस्त्राणाम् ॥3॥
पात्र प्रमार्जनहेतुः केसरिका पात्रे पात्रे एकैका ।
गुच्छकः पात्र स्थापन एकैकं गणना प्रमाणेन ॥4॥
पुष्प फलोदकरजोरेणु शकुनपरिहारपात्ररक्षणार्थम् ।
लिङ्गस्य च संवरणे वेदोदयरक्षणे पटलानि ॥5॥
मूषक रज उत्केरे वर्षावश्याय रजो रक्षणार्थं च ।
भवन्ति गुणा रजस्त्राणे पात्रे पात्रे चैकैकम् ॥6॥
तृण ग्रहणानल सेवा निवारणार्थं, धर्मशुक्लध्यानार्थम् ।
दृष्टं कल्पग्रहणं प्लानभरणार्थं चैव ॥7॥
आदाने निक्षेपे स्थाने निषदने त्वग्वर्तने सङ्कोचने ।
पूर्वं प्रमाजनार्थं लिंगार्थं चैव रजोहरणम् ॥8॥
सम्पातिमरजोरेणु प्रमार्जनार्थं वदन्ति मुखवस्त्रिकाम् ।
नासिकां मुखं च बध्नाति तया वसतिं प्रमार्जयन् ॥9॥
संपातिमत्रसप्राणा धूलिसरजस्के च परिगलमाने ।
पृथिव्युदकाग्निमारुतोद्धसण परिभवडहरे ॥10॥
आचार्ये ग्लाने प्राघूर्णके दुर्लभे सहसादाने ।
संसक्तके भक्तपाने मात्रकपरिभोगमनुज्ञातः ॥11॥
संसक्तभक्तपानेषु वापि देशेषु मात्रकग्रहणम् ।
पूर्वं तु भक्तपानं शोधयित्वा प्रक्षिपन्ति इतरेषु ॥12॥

संपादमतसपाणा धूलिसरिक्खे अ परिगलंतंमि ।

पुढविदगअगणि मारुय उद्धंसणखिंसणा डहरे ॥10॥ (ओ. 715)

आयरिए य गिलाणे पाहुणए दुल्लहे सहसदाणे ।

संसत्तए भत्तपाणे मत्तगपरिभोगणुन्नाउ ॥11॥ (ओ. 716)

संसत्तभत्तपाणेसु वा वि देसेसु मत्तए गहणं ।

पुव्वं तु भत्तपाणं सोहेउ छुहंति इयरेसु ॥12॥ (ओ. 720)

वेउव्ववाउडे वाइए हीय खद्धपजणणे चेव ।

तेसिं अणुगहट्ठा लिंगुदयट्ठा य पट्ठो उ ॥13॥ (ओ. 722)

पाणाई रेणुसंरक्खणट्ठया हुंति पट्ठगा चउरो ।

छप्पइयरक्खणट्ठा तत्थुवरिं खोमियं कुज्जा ॥14॥ (ओ. 724)

दुड्डपसुसाण सावयविज्ज (चिक्ख) लविसमेसु उदगमज्झेसु ।

लट्ठी सरीररक्खा तवसंजम साहणी भणिया ॥15॥ (ओ. 739)

मुखट्ठा नाणाई तणू तयट्ठा तयट्ठिया लट्ठी ।

दिट्ठो जहोव्यारो कारणंमि कारणेसु जहा (कारणतक्कारणेसु तहा ? ॥16॥ (ओ. 740)

इति कारणम् ! इन्हें यतनापूर्वक लें और यतनापूर्वक रखें—यह चौथी समिति है ।

5 पारिष्ठा पनिका समिति—अचित्त, दस दोष से रहित स्थंडिल भूमि में मल आदि का व्युत्सर्जन करना ।

मन, वचन और काया को पाप से बचाना उसे 'गुप्त' कहते हैं ।

द्वादश भावना स्वरूप दोहरा

पावन भावन मन वसी, सब दुःख मेटनहार,

श्रवण सुनत सुख होत है, भव जल तारनहार ॥1॥

अनित्य भावना—(सवईया इकतीसा)

संध्या रंग छिन भंग, सजन सने ही संग, उडत पतंग रंग, चंद रवि संग में ।

तन कन धन जन, अवधि तरंग मन, सुपने की संपत में, रांक रमे रंग में ।

देखते ही तोरे भोरे, रंक कोरे तोरे भये, राजन भिखारी भये, हीन दीन नंग में ।

बादर की छाया माया, देखते विनस जात, भोरे चिदानंद भूलो, काहे की तरंग में ? ॥1॥

वैक्रियोप्रावृतो वातिको ह्रीके बृहत् प्रजननश्चैव ।

तेषामनुग्रहार्थं लिङ्गोदथार्थं च पट्टस्तु ॥13॥

प्राण्यादि रेणुसंरक्षणार्थं च भवन्ति पट्टकाश्चत्वारः ।

षट्पदिका रक्षणार्थं तत्रोपरि क्षौमिकं कुर्यात् ॥14॥

दृष्टपशुत्व-श्वापदचिक्खलविषमेषुदकमध्येषु ।

यष्टिः शरीररक्षार्थं तपःसंयम साधिनी भणिता ॥15॥

मोक्षार्थं ज्ञानादीनि तनुः तदर्थं तदर्थिका यष्टिः ।

दृष्टो यथोपकारः कारणतत्कारणेषु तथा ॥16॥

इंद चंद सुरगिंद, आनन आनंद चंद, नरन को इंद सोहे, नीके नीके वेस में ।
 उत्तम उत्तंग सोध, जंग में अभंग जोध, घुमत मतंग रंग, राजत हमे समे ।
 रंभा तरुखंभा जैसी, माननी अनूप ऐसी, रसक दसक दिन, माने सुख ए समे ।
 परले पवन तृण, उडत गगन जेसे, पवर न काहु वाह, गये काहु देसमें ॥2॥

अशरण भावना स्वरूप

मात तात दारा भ्रात, सजन सनेही जात, कोउ नही त्रात भ्रात, नीके देख जोय के ।
 तन धन जोवन, अनंग रंग संग रसे, करम भरम बीज गये, मूढ वोय के ॥
 नाम न निशान थान, रान खानलेखि यत, दख गरव भरे, जरे नंगे होय के ।
 त्राता नहीं कोउ ऐसे, बलवंत जंत संत, अंत काल हाथ मल, गये सब रोय के ॥1॥

साजन सुहाये लाख, प्रेम के सदन बीच, हसे मोह फसे कसे, नीके रंग लसे है ।
 माननी के प्रेम लसे, फसे धसे कीच वीच, मीच के हिंदोले हीच, मूढ रंग रसे है ॥
 चपलासी झमक अनित, बाजी जगत की रुंखन में वास रात, पंखी चह चसे है ।
 मोह की मरोर भोर, ठानत अधिक ओर, छोरे सब जोर सिर, काल वली हसे है ॥2॥ इति

संसार भावना

राजा रंक सुर कंक, सुंदर सरूप भंक, रति पति रूप भूप, कुष्ट सरवंग है ।
 अरी मरी मीत धरी, तात मात नारी करी, रामा मात खरी करी, धूयावरी रंग है ॥
 उलट पलट नट, वट केसो खेल रच्यो, मच्यो जग जाल में, विहाल बहु रंग है ।
 एते माहे तेरो जोरो, कोउ नाही नम्र फेरो, गेरो चिदानंद मेरो, तू ही सर वंग है ॥1॥

रंग चंग सुख मंग, राग लाग मोहे सोहे, छिनक मे दोहे जोहे, मौत ही मरद के ।
 नीके वाजे गाजे साजे, राजे दरबार ही में, छिनक में कूक हूक, सुनीये दरद के ॥
 जग में विहाल लाल, फिरत अनादि काल, सारमेय थाल जैसे, चाटत छरद के ।
 मद भरे मरे खरे, जंगरमे परे जरे, देख तन जरे धरे, छरे है गरद के ॥2॥

एकत्व भावना

एक टेक पकर, फकर मत मान मन, जगत स्वरूप सब, मिथ्या अंध कूप है ।
 चारों गत भटक, पटक सब रूप रंग, यति मति सति रति, छति एकरूप है ॥
 करम को घेरे गेरे, नाना कछु नही तेरो, मात तात भ्रात तेरो, नाही कर चूप है ।
 चिदानंद सुखकंद, राका के पूरनचंद, आत्म सरूप मेरे, तू ही निज भूप है ॥1॥

आथ साथ नहीं चरे, काहे कूं गेरत गरे, संगी रंगी साथी तेरे, जथी दुःख लहिये ।
 एक रोच केरो तेरो, संगी साथी नहीं तेरो, मेरो मेरो करत, अनंत दुख सहिये ॥
 ऊषर में मेह तैसो, सजन सनेह जेह, खेह के बनाये गेह, नेह काहा चाहिये ।
 जान सब ज्ञान कर, वासन विषम हर, इहां नहीं तेरो घर, जाते तो सो कहिये ॥2॥

अन्यत्व भावना

तेल तिल संग जैसे, अगनि वसत संग, रंग है पतंग अंग, एक नाही किन्न है ।
करम के संग एक, रंग ढंग तंग हूया, डोल तस छंद मंद, गंद भरे दिन्न है ॥
दधिनेह अभ्र मेह, फूल में सुगंध जेह, देह गेह चित्त एह, एक नही भिन्न है ।
आतम सरूप धाया, पुगल की छोरे माया, आपने सदन आया, पाया सब घिन्न है ॥1॥

काया माया बाप ताया, सुत सुता मीत भाया, सजन सनेही गेही, एही तासो अन्न है ।
ताज वाज राज साज, मान-गान थान लाज, चीत प्रीत रीत चीत, काहुका ए धन्न है ॥
चेतन चंगेरो मेरो, सबसे एकेरो होरे, डेरो हूं वसेरो तेरो, फेरे नेरो मन्न है ।
आपने सरूप लग, माया काया जान ठग, उमग उमग पग, मोख में लगन्न है ॥2॥

अशुचि भावना

षट चार द्वार खुले, गंदगी के संग झुले, हिले मिले खिले चित्त, कीट जुं पुरीस के ।
हाड चाम खेल घाम, काम आम आठो जाम, लपट दपट पट, कोथरी भरी सके ॥
गंदगी मे जिंदगी है, बंदगी करत नत, तत्त वात आत जात, रात दिन जीस के ।
मैली थैली मेली वेली, वैलीवद फैली जैली, अंत काल मूढ तेऊ, मूए दांत पीस के ॥1॥

जननी के खेत सृग, रेत को करत हार, उर धर चरन करी, घरी देह दीन रे ।
सातो धात पिंड धरी, चमक दमक घरी, मद भरी मरी खरी, करी वाजी छीन रे ॥
प्रिये मीत जार कर, छर न मे राख कर, आन वेटे निज घर, साथ दीया कीन रे ।
छरद करत फिर, चाटत रसक अत, आतम अनूप तोहे, उपजे ना घीन रे ॥2॥

आश्रव भावना

हिंसा झूठ चोरी गोरी, कोरी केरे रंग रस्यो, क्रोध मान माया लोभ, खोभ घेरो देतु है ।
राग द्वेष ठग भेस, नारी राज भत्त देस, कथन करन कर्म, भ्रम का सहेतु है ॥
चंचल तरंग अंग, भामनि के रंग चंग, उद्रत विहंग मन, अति गर भेतु है ।
मोह में मगन जग, आतम धरम ठग, चले जग मग जिय, ऐसे दुख लेतु है ॥1॥

नाक कान रान काट, वाट में उचाट ताट, सहे गहे बंदी रहे, दुख भय मानने ।
जोग रोग सोग भोग, वेदना अनेक थोग, परे विल लाये दुख, लीये पीये जानने ॥
आपने कमाये पाप, भोगनमे आपे आप, अंग जरे कुष्ट भरे, इंदुवत आनने ।
आपने करम करी, दुख रोग पीर परी, मिथ्यामति कहे ए, तो कीये भगवान ने ॥2॥

संवर भावना

हिरदे में ज्ञान धर, पाप पंथ पर हर, निहचे सरूप कर, डर जर करसे ।
आवत महान अघ, रोध कर हो अनघ, आपने विकार तज, भज कर भर से ॥
करम पटल ढग, तिन माही देह, अगनि कसत गुन, दग आप परठर से ।
करम भरम जावे, मोद मन बोध पावे, ऐसा रस रसीया, ते आ रसकूं पर से ॥1॥

सत मत नव तत, भेदाभेदवित हित, मीत जीत तीन नित, तीन तेरे बोध के ।
 तीन चीन मीन लीन, उदक प्रवीन पीन, खीन हीन दीन तज, रजक जुं सोधके ॥
 सत्ताको सरूप जान, परणत भ्रम मान, निज गुण तान जेही, महानंद सोधके ।
 भ्रम जाल परहरे, काहुकी न भीत करे, संजम के बारे मारे, कर्म सारे रोध के ॥2॥

निर्जरा भावना

जैसे न्यारी सुध रीत, छानत कनक पीत, डारत असुध लीत, मोद मन कर्यो है ।
 तैसी ही सुधार यार, करम पकार डार, मार मार चार यार, लार तेरे पर्यो है ॥
 जोलो चित रीत नाही, तोलों मिटे भीत नारी, कुगुर डगर वीच, लूटवे को पर्यो है ।
 आतम सियाने वीर, करम की मिते पीर, परम अजीत जीत, सिव गढ चर्यो है ॥1॥

सत जत सील तप, करम भरम कप, वासना सनेह गेह, चित मे न धरीये ।
 नरक निगोद रोग, भोगत अनंत काल, माया भ्रम जाल लाल, भवदधि तरिये ॥
 संकट में पर्यो दुःख, भर्यो मर्यो वसुधा में, चर्यो जग छोर भोर, अब मन डरिये ।
 चारत कंकन धर, दोष दृष्ट दूर कर, अरहत ध्यान कर, मोक्ष वधू वरिये ॥2॥

लोक स्वरूप भावना

जामाधार नराकार, भामरी करत यार, लोकाकार, रूप धार, कहा करतार ने ।
 राज दस चार जान, ऊंचता को परिमान, अधो विसतार राज, सात है पतारने ॥
 घटत घटत मृत, मंडल में एक राज, पंचम सुरग मध्य, पांच राज धारने ।
 आदि अंत नहीं संत, स्वयं सिद्धरूप ए तो, षट द्रव्य वास एही, आपत उचारने ॥1॥

नरक भवन खिति, तनुवात घन मिति, वसत पतार वार, करम के दोष मे ।
 खिति आप तेज वात, वन रन त्रस घन, विगल तिगल पसु, पंखी अहि रोषमें ॥
 नर नारी भेष धारी, धरम विहारी सारी, वीतराग ब्रह्मचारी, नारी धन तोषमे ।
 सुरगन सुख मन, नाटक करत धन, धन धन प्रभु सिद्ध, पूरे सुख मोखमे ॥2॥

धर्म भावना

खिमा धर तोष कर, कपट लपट हर, मान अरि मार कर, भार सब छोरके ।
 सत परिमान कर, पाप सब छार कर, करम इंधन जर, तप धूनी जोरके ॥
 तपोधन दान कर, सील मीत चित घर, निज गुण वास कर, दस धम्म दोरके ।
 आतम सियाने माने, एह धर्मरूप जाने पाने, जाने दोरे भोरे, कल मल तोरके ॥1॥

असी चार लाख जोन, खाली तिहां रही कोन, वार ही अनंत जंत, जिहां नही जाया है ।
 नवे नवे भेस धार, रांक ढांक नर नार, दूख भूख मूक घूक, ऊंच नीच पीया है ॥
 राजा राना दाना माना, सूरवीर धीर छाना, अंतकाल रोया सब, काल बाज खाया है ।
 तो है समजाया अब, ओसर पुनीत पाया, निज गुन धाया सोइ, वीर प्रभु गाया है ॥2॥

बोधि दुर्लभ भावना

सुंदर रसीली नार, नरक की वसनहार, आप अवतार मार, सुंदर दिदार रे ।
इंद्र चंद्र धरणिंद, माधव नरिंद चंद्र, वसन भूषण खंद, पाये बहु वार रे ॥
जगत के ख्याल रंग, वद रंग लाल माल, मुगता उजाल डाल, हरदे बीच हार रे ।
एतो सब पाये मन, माये काम जगत के, एक नही पाये विभु, वीर वच तार रे ॥1॥

सुंदर सिंगार करे, बार बार मोती भरे, पति बिन फीकी नीकी, निंदा करे लोक रे ।
वदन रदन सित, दृग विन फीके नित, पगरि तेरि तकित, भूषण के थोक रे ॥
जीव विन काया माया, दान विन सूम गाया, सील विन वायां खाया, तोष विन लोक रे ।
तप जप ज्ञान ध्यान, मान सनमान सब, सम कद रस विन, जाने सब फोक रे ॥2॥

इति द्वादश भावना विचार

प्रत्याख्यान-स्वरूप

(ठाणांग आवश्यक एवं आवश्यक भाष्य से)

1. भावी तप—आचार्य आदि की वैयावृत्य के कारण जो तप पर्युषण आदि में आगे करना था, वह अष्टम आदि तप पहले करे वह भावि-अनागत तप ।

2. अतीत तप—आचार्य आदि की वैयावृत्य निमित्त पर्युषण आदि में अष्टम तप न कर पर्युषण आदि के बाद करे उसे अतीत तप कहा जाता है ।

3. कोटि सहित तप—कोटि अर्थात् पर्यंत (किनारा) जिसमें दो तप के दो किनारे मिलते हों, उसे कोटि सहित तप कहते हैं । इसके दो प्रकार हैं—समकोटि और विषम कोटि ।

(1) सम कोटि सहियं—पहले दिन उपवास कर दूसरे दिन प्रभात में ही (उपवास पूर्ण होने के पहले) दूसरे उपवास का पच्यक्खाण करें ।

(2) विषम कोटि—उपवास के दूसरे दिन प्रभात में ही एकासना अथवा आर्यंबिल का पच्यक्खाण करें ।

4. सागार तप—अणत्थणाभोग सहसाकार—इन दोको छोड़ अन्य महतरागार आदि आगार सहित तप को सागार तप कहते हैं ।

5. अणागार तप—अणत्थणाभोगेण-सहसागारेण—इन दो को छोड़कर अन्य कोई आगार न रखे उसे अणागार तप कहते हैं ।

6. प्रमाणाकृत तप—एक दाता, एक कवल, दो घर, तीन द्रव्य आदि संख्या निश्चित करे, उसे प्रमाणकृत तप कहते हैं ।

7. निर्विशेष तप—सर्व अशन आदि वीसिरावे उसे निर्विशेष तप कहते हैं ।

8. नियंत्रित तप—अमुक तप अमुक दिन में निश्चित करूंगा, उसे नियंत्रित तप कहते हैं । यह तप प्रथम संघयण वाले जिन कल्पी को होता है वर्तमान में इस तप का विच्छेद है ।

9. संकेत तप—(1) अंगूठी (2) मुट्ठी (3) ग्रंथि (4) घर (5) श्वास (6) निःश्वास (7) स्तबुक (8) जोदूरक ये आठ संकेत के भेद समझने चाहिए ।

10. अद्धा तप- (1) नमुक्कार सहियं (2) पोरसि (3) साढपोरसि (4) पूरिम (5) अपाद्ध (6) विगय (7) निवीता (8) आचाम्ल (9) एकासणा (10) बेआसणा (11) एकल ठाणा (12) पाण (13) दिस (14) अभत्तड्ड (15) चरम (16) अभिग्रह ।

(110) 15 भेद के तप में आगार संख्या

	नमो- कार सहि- यं 1	पोर- सी 2	साढ- पोर सी	पुरम	अपा- द्ध	विग- य	निवी	आचा म्ल	एका- सना	बिया- सणा	एक- ल ठाणा	अभ त्त ड्ड	दिव- स 13 चरम 14	अभि- ग्रह 15
अणत्थणा भोगेणं	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ
सहसागारेणं	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स
पच्छन्नकालेणं	0	प	प	प	प	0	0	0	0	0	0	0	0	0
दिसामोहेणं	0	दि	दि	दि	दि	0	0	0	0	0	0	0	0	0
साहुवयणेणं	0	सा	सा	सा	सा	0	0	0	0	0	0	0	0	0
अकुंचनपसारेणं	0	0	0	0	0	0	0	0	अ	अ	0	0	0	0
गुरुअम्भुद्धा0	0	0	0	0	0	0	0	0	गु	गु	गु	0	0	0
सागारिया0	0	0	0	0	0	0	0	0	सा	सा	सा	0	0	0
पारिद्धावणिया0	0	0	0	0	0	पा	पा	पा	पा	पा	पा	पा	0	0
लेवालेवेणं	0	0	0	0	0	ले	ले	ले	0	0	0	0	0	0
उक्खित्तविवेगेणं	0	0	0	0	0	उ	उ	उ	0	0	0	0	0	0
गिहत्थसंसद्वेणं	0	0	0	0	0	गि	गि	गि	0	0	0	0	0	0
पडुच्चमक्खियेणं	0	0	0	0	0	प	प	0	0	0	0	0	0	0
महत्तरागारेणं	0	0	0	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म
सव्वसमाहि	0	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स	स
आगार संख्या	2	6	6	7	7	9	9	8	8	8	7	5	4	4

आगारों के अर्थ

(1) अणत्थणा भोगेणं – अत्यंत भूल जाना । पच्चक्खाण करके मुख में कवल डाला, फिर अचानक याद आ जाना । तब तत्काल थूक दें तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(2) **सहसा०**—गाय आदि को दुहते समय मुंह में छिंटे गिर जाएं, बलात्कार से मुख में पड़ जाय और थूक दें तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(3) **पच्छन्न०**—सूर्य बादलों की ओट में छाया हो, उस समय पोरिसि का समय हो गया है—इस प्रकार जानकर पोरिसी का पच्चक्खाण पार लें और फिर सूर्य दिखने पर पता चले कि अभी तो पोरिसी का समय नहीं हुआ है, तो मुख में डाले कवल को यतना पूर्वक राख में थूक दें और पुनः पोरिसी आने पर भोजन करे तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता । यह बात सर्वत्र समझनी चाहिए ।

(4) **दिसा०**—पूर्व दिशा को पश्चिम दिशा समझकर पच्चक्खाण जल्दी पार लें, किंतु पता लगते ही यतनापूर्वक थूक दें तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(5) **साहु वय०**—साधु के मुख से बहुपडिपुन्ना पोरिसी सुनकर पोरिसी का पच्चक्खाण पार ले और फिर पता चलने पर यतना पूर्वक थूक दें तो पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(6) **महत्तरा०**—संघ का महान् कार्य आ पड़ने पर गुर्वाज्ञा से पच्चक्खाण का समय होने के पहले ही भोजन कर ले तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता । बिना भोजन किए ग्लान आदि की वैयावच्च संभव न हो तो पच्चक्खाण समय के पूर्व भोजन कर ले तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(7) **सव्वसमाहि०**—पच्चक्खाण किया हो और उसके बाद तीव्र शूल पैदा हो जाय अथवा सांप आदि ने दंश लगाया हो, उस समय आर्त ध्यान से मर जाय तो अच्छा नहीं, अतः औषध का सेवन कर दे तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

(8) **सागारी०**—जिसकी नजर लगने से नुकसान होता हो और अभी तक आधा ही भोजन किया हो तो भी बीच से उठ कर अन्यत्र जाकर भोजन करे, किंतु उसकी दृष्टि के सामने भोजन न करें अथवा साधु जहां भोजन करते हों, वहां गृहस्थ की दृष्टि पड़ती हो तो वे उठकर अन्यत्र चले जाए तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(9) **आउंटण०**—वायु आदि रोग के कारण हाथ-पैर आदि को संकुचित करे अथवा फैलाए तो भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(10) **गुरु अभु०**—गुरु के आगमन पर खड़ा होने पर भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता ।

(11) **पारिद्धा०**—विधि से आहार ग्रहण किया हो और विधि से खाया हो, ऐसा करने पर जो विगई आदि आहार बचा हो उसे पारिठावणिय कहते हैं, गुर्वाज्ञा से वह आहार लेने पर पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

(12) **लेवालेव०**—जिस विगई का त्याग किया हो, उस विगई से स्पर्श किए गए चम्मच आदि से कोई अहार देता हो तो उस आहार को लेने से भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

(13) **गिहत्थ०**—गृहस्थ ने अपने लिए ओदन आदि को दूध अथवा दही से मिश्र किया हो, वह दूध-दही ओदन आदि में इतना तर हो जाय कि ओदन आदि को डूबोकर ऊपर चार अंगुल उठा हो तो वह संसृष्ट द्रव्य दूध-दही साधु को नीवि और विगई के पच्चक्खाण में कल्पता है । यदि चार

अंगुल से ज्यादा पांच-छह आदि अंगुल ऊपर उठ जाय तो उसे विगई समझना चाहिये और विगई-नीवि के पच्चक्खाण में साधु को नहीं कल्पता है । आयंबिल के पच्चक्खाण में 'गिहत्थसंसडेणं' आगार में मंडक रोटी आदि के लिए कण-लोट बांधते समय हथेली पर घी-तेल आदि विगई को घिसकर 'मोण' रूप में मिश्र किया हो अर्थात् कुछ लेप वाला किया हो, जिसका स्पष्ट स्वाद नहीं आता हो, वह साधु को आयंबिल में कल्पता है, श्रावक को नहीं, क्योंकि उसे तो आयंबिल की रसोई अपने उद्देश्य से बनानी है ।

(14) उक्खित्त विवेगेणं०—पिण्ड विगई गुड़-शक्कर, शुष्क पक्वान्न आदि रोटी के ऊपर रखा हो, उसे दूर कर वह रोटी आयंबिल में कल्पती है । यह आगार साधु को ही है ।

(15) पडुच्चमक्खिणं०—सर्वथा लूखे मंडक आदि को राख दूर करने के लिये हाथ फेरे ।
तिविहार के पच्चक्खाण में पानी के छह आगार

पाणस्स लेवेण वा अलेवेण वा अच्छेण वा बहुलेवेण वा ससित्थेण वा असित्थेण वा वोसिरामि ।

(1) पाण०—खर्जुर आदि का पानी जिससे भाजन खरंटिट हो ऐसा पानी लेपकृत समझें ।

(2) अलेवेण०—कांजी आदि का अलेप जल ।

(3) अच्छेण०—अच्छा, निर्मल तपा हुआ पानी ।

(4) वह०—तंदुल आदि का प्रथमादि धोवन का पानी उसे बहुल बहल कहते हैं ।

(5) ससि०—सिक्थ सहित ओसामन आदि ।

(6) असित्थे०—सिक्थ रहित पानी ।

ऊपरोक्त पानी लेने पर भी पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है ।

पच्चक्खाण लेने वाले को 'वोसिरामि' और पच्चक्खाण कराने वाले को 'वोसिरइ' बोलना चाहिये ।

आयंबिल-नीवि आदि में श्रावक को अचित्त भोजन-पानी लेना चाहिये—सचित्त नहीं । श्रावक को आयंबिल-नीवी में तीन आहार का त्याग करना चाहिये । शेष पच्चक्खाण तिविहार-चौविहार होते हैं ।

नवकारसी और रात्रि भोजन में साधु को चारों प्रकार के आहार का त्याग अवश्यमेव होता है, शेष पच्चक्खाण में तिविहार-चौविहार होता है ।

रात्रि भोजन, पोरसी, पुरिमूड्ड व एकासने में श्रावक को दो आहार तीन आहार और चार आहार का त्याग होता है । ये सब पच्चक्खाण के भेद समझने चाहिये ।

चार आहार का स्वरूप

1. अशन—शालि, ज्वार, बरठी आदि सभी चावल, (2) मूंग आदि सभी दाल (3) सत्तु आदि सभी आटे (4) पेढ—ओसामण का प्रकार कढी आदि को तीमण कहते हैं । (5) मोदक आदि सभी पक्वान्न (6) सूरण आदि सभी कंद (7) मंडक आदि सभी तली हुई वस्तुएं (8) बेसन

(9) वरीयाली (10) आंवला (11) सैंधव (12) कपित्थ पत्र (13) निंबु पत्र (14) नमक (15) हींग आदि ।

2. पान- (1) कांजी (2) जौ (3) कयर (4) ककोडा आदि धोया हुआ पानी (5) अन्य सभी स्रोक्त धोवण । (1) शक्कर का पानी (2) ईमली का पानी इक्षुरस आदि सभी सरस पानी-ये सब पानी में गिने हैं किंतु व्यवहार से इनकी गिनती अशन में है ।

3. खादिम- (1) सूखडी, पतासा आदि (2) सेका हुआ अनाज (3) खोपरा (4) वृक्ष (5) बादाम (6) खर्जूर आदि सभी मेवा, ककडी, आम, फणस आदि सभी फल ।

4. स्वादिम- (1) सूंठ (2) हरडे (3) पीपर (4) मीरी (5) अजमा (6) जायफल (7-8) काथा (9) खदीर की छाल (10) जेठी मघ (11) तज (12) तमाल पत्र (13) इलायची (14) लविंग (15) विडंग (16) काठा (17) विडलवण (18) आजड (19) अजमोद (20) कुलिंजण (21) पीपरामूल (22) दाल चीनी (23) कचुरउ (24) मोथ (25) कंटासेलूउ (26) कपूर (27) सूंचल (28) छोटी हरडे (29) बहेडा (30) कुंभडउ (31) पोनपूग (32) हिंगुलाष्टक (33) हींगु तेबीस (34) पुष्करमूल (35) जवासामूल (36) बावची (37) बउल छाल (38) धव छालि (39) खयर छाली (40) खेजडे की छाल-ये सब स्वादिम कहलाते हैं । गुड स्वादिम कहलाता है किंतु व्यवहार अशन का ही है ।

(1) शक्कर मिश्रित पानी (2) पाडल वासिउ (3) सूठ का पानी (4) हरडे का पानी-इनका सिर्फ नितारा हुआ अर्थात् ऊपर-ऊपर से पानी लें तो खादिम नहीं कहलाते हैं और तिबिहार में ले सकते हैं । जीरे को प्रवचन सारोद्धार में स्वादिम कहा गया है और श्री कल्पवृत्ति में खादिम कहा है ।

अणाहारी वस्तुएं- (1) नीम की छाल (2) मूल पनडा शिली (3) गोमूत्र (4) कडु (5) चिरायता (6) अतिविष (7) चीडी (8) चंदन (9) राख (10) हल्दी (11) रोहिणी (12) उपलोढ (13) वेजत्रिफला (14) पांच कूलि भूनिव (15) घमासउ (16) नाहि (17) असंधि रोगणी (18) एलूउ (19) गुगल (20) हरडा दालि (21) वउणिमूल (22) वोरमूल (23) कंवेरीमूल (24) कयर का मूल (25) पूयाड (26) आछी (27) मंजीठ (28) वाल वीउ (29) कुयारी (30) वोडा थरी इत्यादि वस्तुएं तकलीफ में इच्छा बिना ली जाती हैं वे चारों आहार में नहीं आने से अणाहारी कहलाती हैं ।

विगई का स्वरूप- (1) दूध (2) घी (3) दही (4) तेल (5) गुड (6) पक्वान्न ये छह भक्ष्य विगई हैं ।

1. दूध विगई 5 भेद- 1. गाय 2. भैंस 3. ऊंटनी 4. बकरी और 5. भेड़ का दूध । इसके सिवा अन्य प्राणियों के दूध विगई में नहीं आते हैं ।

2-3. घी और दही के चार भेद- ऊंटनी को छोड़कर गाय आदि के दूध का दही व घी-विगई कहलाता है ।

4. तेल विगई- 1. तिल 2. सरसों 3. अलसी व 4. कुसुंभ ।

5. गुड विगई के दो भेद- 1. ढीला व 2. कठोर ।

6. पक्वान्न विगई- धी व तेल से तली हुई ।

चार अभक्ष्य महा विगई—(1) मधुमक्खी तथा भ्रमरी का शहद (2) काष्ठ व पीठी का मद्य (शराब) (3) जलचर, स्थलचर व खेचर का मांस (4) चार प्रकार के घी की तरह चार प्रकार का मक्खन, ये चार अभक्ष्य महा विगई हैं ।

तीस नीवियातें—

1. दूध के नीवियातें 5 भेद— (1) द्राक्ष सहित पका हुआ दूध 'पय' कहलाता है । (2) अधिक चावल व थोड़ा दूध हो उसे 'खीर' कहते हैं । (3) चावल के चूर्ण सहित दूध पका हो उसे 'अवलेहि' कहते हैं । (4) अल्प चावल व अधिक दूध हो उसे 'पेया' कहते हैं । (5) आछण सहित वितरेड को 'दुग्धाटी' कहते हैं ।

2. घी के पांच नीवियातें 5 भेद— (1) जिसमें पक्वान्न तले हो उसे 'दग्धघृतनिभंजन' कहते हैं । (2) दही को दूर कर घी निकालते तो विषंदन कहते हैं । (3) औषधी पकाकर निकाला गया घी (4) घी निकाली हुई छाछ (5) औषधी में पकने वाला घी ।

3. दही के पांच नीवियाते भेद— (1) करबा (2) शिषरणी में नमक डालकर मला हुआ दही (3) नमक सहित मथा हुआ दही (4) कपड़े से छान कर मला हुआ दही (5) घोलवडा-गर्म किए गए दही में जो बड़े डाले हों ।

4. तेल के नीवियाते 5 भेद—

- (1) जिसमें पक्वान्न तला हो उसे तेलदग्धनिभंजन कहते हैं ।
- (2) तिल कुट्टी में गुड आदि अधिक डाला हो वह एक रात्रि बीतने के बाद नीवियाता है ।
- (3) लाक्षा आदि
- (4) तैल में औषध पका कर ऊपर ऊपर से तैल ले लेना ।
- (5) तेल का मैल-तैल में तलने के बाद नीचे कढ़ाई में घट्ट मल ।

5. गुड के नीवियाते 5 भेद— (1) शक्कर (2) गुलवाणी (गुड का पानी) (3) पाक गुड (गुड की चासणी) (4) खांड की राब (5) उबाला हुआ इक्षुरस ।

6. पक्वान्न के नीवियाते 5 भेद— (1) तवे के संपूर्ण आकार के पुलाव को तल कर उसी घी-तैल में दूसरा पुलाव तलना । (2) घी-तैल में पूरी आदि के तीन घाण तलने के बाद चौथा-पांचवां घाण (3) गुड के पाक में मिश्रित घाणी के लड्डू (4) तलने के बाद बचे घी को निकालकर तवे में रही चिकाश में गेहूं का भरडा सेंक कर गुड का पानी डालकर बनाया गया कंसार (6) पोतकृत अर्थात् उपरोक्त कथित तैल में तले हुए ढेबरे आदि ।

22 अभक्ष्य—

पंचबरि चउविगई हिम विस करगे य सव्वमट्ठीय ।

रयणी भोयण वयंगण बहुबीय मणंत संधाणा ॥1॥

विदलामगोरसाइं अमुणिय नामाइं पुप्फ फलयाइं ।

तुच्छ फलं चलियरसं वज्जह वज्जाणि बावीसं ॥2॥

अर्थ—(1) वट वृक्ष का फल (2) पीपल (3) पिलंखण (4) कटुंबर (5) गूलर—ये पांच उंबर कहलाते हैं । इनमें मसे के आकार के बहुत से त्रस जीव होते हैं । इस कारण वे अभक्ष्य हैं ।

(6) मधु (7) मक्खन (8) मदिरा (शराब) (9) मांस-इनमें उसी वर्ण के निरंतर संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव पैदा होते हैं—इस कारण अभक्ष्य हैं ।

(10) बर्फ (असंख्य अप्काय जीव होने से अभक्ष्य है ।)

(11) विष—मौत का कारण होने से अभक्ष्य है । विष भक्षण से मरण समय असमाधि की संभावना होती है, अतः अभक्ष्य है ।

(12) कडे- अप्काय स्वरूप असंख्य जीवों का पिंड होने से अभक्ष्य है ।

(13) खडी मरुहंड आदि सभी प्रकार की मिट्टी—मेंढक आदि पंचेन्द्रिय जीव की उत्पत्ति के कारण तथा आम वात आदि के कारण अभक्ष्य है ।

(14) रात्रि भोजन—इस लोक व परलोक विरुद्ध है ।

(15) बहु बीज/फल-पंपोट, बैंगन आदि फल, उसमें जितने बीज हैं, उतने ही जीव हैं ।

(16) द्विदल-कच्चे गोरस में घोलवडे डालने से अभक्ष्य हैं । उसमें तत्काल जीवों की उत्पत्ति हो जाती है । जिसकी दो दाल होती हो और घाणी में डालने से तेल नहीं निकलता हो उसे कच्चे गोरस से मिलाने पर अभक्ष्य हो जाता है ।

(17) अनंतकाय—32 अनंतकाय का स्वरूप आगे लिखेंगे ।

(18) संघाण—बिल्व, नींबू, आम आदि के आचार में जीवोत्पत्ति हो जाने से तथा रस चलित हो जाने से अभक्ष्य है ।

(19) बैंगन—कामोद्दीपक हैं, इसे खाने से नींद अधिक आती है ।

(20) अज्ञात फल—अज्ञात फल—फूल आदि में कभी विष फल भी होते हैं ।

(21) तुच्छ फल—अधिक खाने पर भी जिससे तृप्ति न हो उसे तुच्छ फल कहते हैं ।

(22) चलित रस—सडा हुआ अन्न आदि । 16 प्रहर उपरांत दही, 12 प्रहर बाद छाछ 8 प्रहर बाद करबा, 12 प्रहर बाद जाडी राब, 8 प्रहर बाद पतली राब, चार प्रहर बाद लापसी, चार प्रहर बाद पुलाव, 4 प्रहर बाद रोटी, चार प्रहर बाद कांजी, चार प्रहर बाद कोरे बडे, चार प्रहर बाद खीचडी, इन सब का रस चलित हो जाता है । यदि गर्मी आदि के कारण इस समय मर्यादा के पहले भी रस चलित हो जाय तो विवेकी को पहले ही उनका त्याग कर देना चाहिये ।

बत्तीस अनंतकाय—सभी कंद जाजि (1) सूरण कंद (2) वज्र कंद (3) आर्द्र हल्दी (4) आदू (5) आर्द्र कचूरा (6) सतावरी (7) विराली लग (8) कुंवारपाठा (9) थूहर (10) गिलोय (11) लहसन (12) वांस करेला (13) गाजर (14) लूनी (15) लोधक (16) गरमर (17) किसलय (18) खिर सुआकंद (19) थेग (20) हरी मोथ (21) लुन वृक्ष की छाल (22) खिलोडा कंद (23) अमृत वेल (24) मूली (25) भूमि स्फोटक (26) बिल्ली का टोप (27) जो छेदने पर पुनः

ऊगे (28) वत्थूला की भाजी (29) सूअर वल्ली (30) पलंक (31) आलू (32) पिंडालू—ये अनंतकाय प्रसिद्ध हैं ।

अनंतकाय के लक्षण पन्नवणा के प्रथम पद सूत्र 25 'चक्कगं भज्ज' से समझ लेने चाहिए ।

श्रावक के 147 भंग—भगवती से जान लें ।

गुरु मुख से पच्चक्खाण करना चाहिए । यहां गुरु व श्रावक आश्रित चार भंग हैं ।

(1) गुरु पच्चक्खाण को जानते हों और श्रावक भी पच्चक्खाण को जानता हो—यह भंग शुद्ध है ।

(2) गुरु पच्चक्खाण को जानते हों किंतु श्रावक अनजान हो, उसे संक्षेप से पच्चक्खाण सुनाकर भेद कराए—वह भंग शुद्ध है ।

(3) गुरु पच्चक्खाण नहीं जानते हों किंतु श्रावक जानता हो वह भंग शुद्ध भंग में समाविष्ट होता है ।

(4) गुरु व श्रावक दोनों पच्चक्खाण को नहीं जानते हो—वह भंग सर्वथा अशुद्ध है ।

पच्चक्खाण की शुद्धि—(1) फासिय—विशुद्धि से यथावत् उचित काल प्राप्त ।

(2) पालिय—बारंबार स्मरण करना ।

(3) सोहिय—गुरुदत्त शेष भोजन करना ।

(4) तीरिय—अपने काल तक पूर्ण करें ।

(5) किट्टिय—भोजन के प्रसंग पर पुनः याद करें ।

(6) आराहिय—ऊपर के बोल पूर्ण करें अथवा छह शुद्धि अन्य प्रकार से बताते हैं—(1) सद्दहणा शुद्ध (2) जानना शुद्ध (3) विनय शुद्ध (4) अनुभाषण शुद्ध (5) अनुपालन शुद्ध (6) भाव शुद्ध ।

इस प्रकार पच्चक्खाण पूर्ण कर अनंत जीव मोक्ष में गए हैं और आगे भी जाएंगे ।

(111) श्रावक के 12 व्रतों के समस्त भंग

प्रा. 1	मृ. 1	अ. 1	प्रा.	6	एक संयोग 1	6	6	
2	1	1	प्रा.	6	एक संयोगी 2	12		48
3	1	1	मृ.	36	द्वि संयोगी 1	36		
4	1	1	प्रा.	6	एक संयोगी 3	18		
5	1	1	मृ.	36	द्वि" 3	108		342
6	1	1	अ.	216	त्रि" 1	216		
1	2	1	प्रा.	6	एक संयोगी 4	24		

2	2	1	मृ.	36	द्वि" 6	216		2400
3	2	1	अ.	216	त्रि" 4	864		
4	2	1	मै.	1296	चतु." 1	1296		
5	2	1	प्रा.	6	एक संयोग 1	30		
6	2	1	मृ.	36	द्वि" 10	360		16806
1	3	1	अ.	216	त्रि" 10	2160		
2	3	1	मै.	1296	चतु." 5	6480		
3	3	1	परि.	7776	पंच" 1	7776		
4	3	1						
5	3	1	प्रा.	6	एक संयोगी" 6	36		
6	3	1	मृ.	36	द्वि संयोगी" 15	540		117648
1	4	1	अ.	216	त्रि" 20	4320		
2	4	1	मै.	1296	चतु." 15	19440		
3	4	1	परि.	7776	पंचे." 6	46656		
4	4	1	दिग.	46656	छ" 1	46656		
5	4	1						
6	4	1	प्रा.	36	एक संयोगी 7	42		
1	5	1	मृ.	216	द्वि" 21	756		
2	5	1	अ.	126	त्रि" 35	7560		823542
3	5	1	मै.	1296	चतु." 35	45360		
4	5	1						
5	5	1	प.	776	पंचे" 21	163296		
6	5	1	दिग.	46656	छ" 7	326592		
1	6	1	भोगो.	279936	सात" 1	279936		
2	6	1	प्रा.	6	एक संयोगी 8	48		
3	6	1	मृ.	36	द्वि संयोगी 28	1008		
4	6	1	अ.	216	त्रि" 56	12096		
5	6	1	मै.	1296	चतु." 70	90720		5764800
6	6	1	प.	7776	पंचे." 56	435456		
			दिग.	46656	छ" 28	1306368		
			भोगो.	279936	सात" 8	2239488		
			अनर्थ	1679616	आठ" 1	1679616		
			प्रा.	6	एक संयोग 9	54		

			मृ.	36	द्वि" 36	1296	403560
			अ.	216	त्रि" 84	18144	
			मै.	1296	चतु." 126	163296	
			प.	7776	पंच" 126	979776	
			दिग्.	46656	छा" 84	3919104	
			भोगो.	279936	सात" 36	10077696	
			अनर्थ	1679616	आठ" 9	15116544	
			सामा.	10077696	नौ" 1	10077696	
			प्रा.	6	एक संयोगी 10	60	1977326742
			मृ.	36	दो" 45	1620	
			अ.	216	तीन" 120	25920	
			मै.	1296	चार" 210	172160	
			प.	7776	पांच" 252	1959552	
			दिग्.	46656	छा" 210	9797760	
			भोगो.	279936	सात" 120	33592320	
			अनर्थ	1679616	आठ" 45	75582720	
			सामा.	10077696	नौ" 10	100766960	1977326742
			देशा.	60466176	दस" 1	60466176	
			प्रा.	6	एक संयोगी 11	66	
			मृ.	36	दो" 55	1980	
			अ.	216	तीन" 165	35640	
			मै.	1296	चार" 330	427680	
			प.	7776	पांच" 462	3592512	
			दिग्.	46656	छा" 462	21555072	
			भोगो.	279936	सात" 330	92378880	1977326742
			अनर्थ	1679616	आठ" 165	277136640	
			सामा.	10077696	नौ" 55	554273280	
			देशा.	60466176	दस" 11	665127936	
			पौ.	362797056	ग्यारह" 1	362797056	

प्रा.	6	एक संयोगी 12	72	13841287200
मृ.	36	दो" 66	2376	
अ.	216	तीन" 220	47520	
मै.	1296	चार" 495	641520	
प.	7776	पांच" 792	6158592	
दिग्.	46656	छ" 924	43110144	
भोगो.	279936	सात" 792	221709312	
अनर्थ.	1679616	आठ" 495	831409920	
सामा.	10077696	नौ" 220	2217093120	
देशा.	60466176	दस" 66	3990767616	
पौषध	362797056	ग्यारह" 12	4353564672	
अ०	2176782336	बारह" 1	2176782336	

पहले व्रत के छ भंग, वे ही सात से गुणा करे। कैसे ? छ से गुणने पर 36 तथा दूसरे व पहले व्रत के 6-6 डालने पर 48 होते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र 7 गुणा व छ का प्रक्षेप समझना चाहिये।

प्राणा—1, 2, 3, 4, 5, 6, भंग एक संयोग में	प्राणा—1, 2, 3, 4, 5, 6, 36 मृ. 6, 6, 6, 66, 6
	द्विक् संयोग 2

प्राणा—1, 1, 1, 1, 1, 1, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6, त्रिक संयोग 3	प्राणा—2, 2, 2, 2, 2, 2, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6	प्राणा—3, 3, 3, 3, 3, 3, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6,
---	---	--

प्राणा—4, 4, 4, 4, 4, 4, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6,	प्राणा—5, 5, 5, 5, 5, 5, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6,	प्राणा—6, 6, 6, 6, 6, 6, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6 अ. 6, 6, 6, 6, 6, 6,	इस प्रकार को से गुणने पर इस प्रकार आगे भी समझना चाहिये।
--	--	--	---

प्राणा—1, 1, 1, 1, 1, 1, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6	प्राणा—5, 5, 5, 5, 5, 5, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6	इस प्रकार 36, प्रथमव्रत के 6 व दूसरे व्रत के 6, इस प्रकार 12, इन 36 में 12 जोड़ने पर 48 होते हैं।	प्रा.	9	9	9	9
प्राणा—2, 2, 2, 2, 2, 2, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6	प्राणा—5, 5, 5, 5, 5, 5, मृ. 1, 2, 3, 4, 5, 6		प्रा.	9	9	18	
			मृ.	81	1	81	91
			प्रा.	9	3	27	
			मृ.	81	3	243	999
			अ.	729	1	729	

इस प्रकार आगे आठ कोष्ठक समझने चाहिए ।

3 3 3	2 2 2	1 1 1	कारण	नौ भंग सहित 2 भेद 49 भंग कोष्ठक, म 1
2 2 1	3 2 1	3 2 1	करावण	व 2, का 3, मावा 4, माका 5, वाका 6, मावाका
1 3 3	3 9 9	3 9 9	अनुमोदन लब्ध	7, कर 1, करा 2, कराकरा 3, सप्तत्रि 21, यह इक्कीस भांगे का स्वरूप है ।

नव भंगा तु प्रथमव्रते भंगा 9 द्विकादि व्रते संयोगे दशगुणित नवकप्रक्षेप क्रमेण तावद् गन्तव्यं यावदेकादशवेलायां द्वादशव्रत संयोग भंग संख्या 999999999999, ये सभी नौ भंगी के भांगा हैं ।

2 2 2	1 1 1	करण-करावण	छह भांगी के उत्तर भेद 21 भंग
3 2 1	3 2 1	मन-वचन-काया	
1 3 3	2 6 6		

प्रा.	9	12	108	999999999999
मृ.	81	66	5346	
अ.	729	220	160380	
मै.	6561	495	3247695	
प.	59049	792	46766808	
दि.	531441	924	411051484	
भो.	4782969	792	3788111448	
अ.	43046721	495	21308126895	
सा.	387420489	220	85232507580	
दे.	3486784401	66	230127770466	
पौ.	31381059609	12	376572715308	
अ.	282429536481	1	282429536481	

प्रा.	21	12	252	12855002631049215
मृ.	441	66	29106	
अ.	9261	220	2037420	
मै.	194481	495	96268095	
प.	4084101	792	3234607992	
दि.	85766121	924	792478955804	
भो.	1801088541	792	1426462124472	
अ.	37822859361	495	18722315383696	
सा.	794280046581	220	174741610247820	
दे.	16679880978201	66	1100812144561266	
पौ.	350277500542221	12	4203330006506642	
अ.	7355827511386641	1	7355827511386641	

1 कारण, 2 करावण, 3 अनुमोदन 4 करण- करावण, 5 करण अनु. 6 करा.	प्रा. मृ. अ. मै. प. दि.	49 2401 117649 5764801 282475249 13841287201	12 66 220 495 792 924	588 158466 25882780 2853576495 223720397208 1299349373724	2441406249999 99999999
अनु. 7 कारण- करावण अनु. इन्हें 7-7 से गुणने पर 49 भंग होते हैं।	भो. अ. सा. दे. पौ. अ.	678233072849 33232930569601 1628413597910449 79792266297612001 3909821048582988049 191581231380566414404	792 495 220 66 12 1	537152673696408 16450300631952495 358250991540298780 5266289575642392066 469178852582995856588 191581231380566414401	
147 भंगी	प्रा. मृ. अ. मै. प. दि. भो. अ. सा. देशा पौ. अ.	147 21609 3176523 466948881 68641485507 10090298369529 1483273860320763 218041257467152161 32052064847671367667 471165353260791047049 692613969293330583916203 111815406486119593835681841	12 66 220 495 792 924 792 495 220 66 12 1	1764 1426194 69883560 231339696095 54364056521544 9323435693444796 1174752897374044296 10793042246240319695 7051454266487700886740 310969133152107609105234 83113566831519967006994436 111815406486119593835681841	130443- 9077196- 1153335- 6957695

प्रथम व्रत में 21 भंग, उसे द्विक आदि संयोग से 22 से गुणने व 21 के प्रक्षेप के क्रम से बारह व्रत के संयोग में 11 बार करना चाहिए।

सप्त चत्वारिंशत शत भंगा—प्रथम व्रते सप्तचत्वारिंशत् शतं भंगाः द्विकादि संयोगे अष्ट चत्वारिंशत्शतगुणितं सप्तचत्वारिंशत्शत प्रक्षेपक्रमेण तावद्०।

प्रा.1	मृ.	अ.	मैथुन	परि.	दिग्.	भोगो.	अन.	सामा.	दिशा.	पौषध.	अतिथि
2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	
मन से नहीं करंगा				ए	व	म्					

मन से नहीं कराउंगा	6	36	216	1296	7776	46656	2799 36	1679 616	1007 7696	6046 6176	36379 7056
वचन से नहीं करुंगा	12	72	432	2592	15552	93312	5599 12	3359 232	2015 5392	1209 32352	7255 94112
वचन से नहीं कराउंगा	18	108	648	3888	23328	139968	839 808	5038 848	3023 3088	1813 98528	10883 91168
काय से नहीं करुंगा	24	144	864	5284	31104	186624	1119 744	6718 464	40310 784	24186 4704	14511 88224
काय से नहीं कराउंगा	30	180	1080	6480	38880	232380	1399 680	839 8080	5038 8480	3023 30880	18139 85280
एक संयोगी	द्वि. सं.	तीन सं.	चार सं.	पांच सं.	छ सं.	सात सं.	आठ सं.	नौ स.	दस सं.	ग्यारह सं.	बारह सं.
6	36	216	1296	7776	46656	279936	1679 616	1007 7696	60466 176	36279 7056	21767 82336

एग वए छ भंगा , निदिद्धा सावयाण जे सुत्ते ।
ते च्विय वयवुद्धीए , सत्तगुणा छज्जुया कमसो ।।1।।

॥ इति नवतत्त्व संग्रहे संवर तत्त्वम् षष्ठम् संपूर्णम् ॥

निर्जरा-तत्त्व-7

अब सातवां निर्जरा तत्त्व लिखते हैं ।

निर् अर्थात् अतिशय एवं जृ अर्थात् हानि करना । जिससे कर्मपुद्गल की अतिशय हानि हो, उसे निर्जरा कहते हैं ।

निर्जरा के 12 भेद-

(1) अनशन (2) ऊनोदरी (3) वृत्ति संक्षेप (भिक्षाचरी) (4) रस परित्याग (5) कायक्लेश (6) संलीनता ।

(1) प्रायश्चित्त (2) विनय (3) वैयावृत्य (4) स्वाध्याय (5) ध्यान (6) व्युत्सर्ग ।

प्रथम छह भेद बाह्य निर्जरा (तप) और शेष छह भेद आभ्यन्तर निर्जरा (तप) के हैं । इस प्रकार निर्जरा के भेदों का विस्तार **उववाइ सूत्र** से जान लेना चाहिए । यहां किंचित् मात्र चार ध्यान का स्वरूप श्री जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण विरचित ध्यानशतक से लिखते हैं-

ध्यान स्वरूप-

शुक्लध्यान पावक करी, कर्ममंधन दीये जार ।

वीर धीर प्रणमु सदा, भव जल तारनहार ॥1॥

आर्तध्यान के चार भेद (सर्वईया इकतीसा)-

द्वेष ही के बस पर, अमनोग विसे घर, तिनका विजोग चिंते, फेर मत मिलीयो ।

शूल कुंठ तप रोग, चाहे इनका विजोग, आगे कूं न होय मन, औषधि में भिलियो ॥

राग बस इष्ट विसे, सातासुख माहि लिये, नारी आदि इष्ट के, संजोग भोग किलियो ।

इंद्र चंद्र धरनिंद, नरन को इंद्र थऊं, इत्यादि निदान कर, आरत में झिलियो ॥1॥

स्वामी और लेश्या का कथन (सर्वईया इकतीसा)

राग द्वेष मोह भयों, आरत में जीव पर्यो,

बीज भयो जग गुरु, मन भयो आंधक ।

किसन कपोत नील, लेसा भइ मध मही,

उतकृष्ट जगन में, एक ही न सांध रे ॥1॥

आरत ते बस पर्यो, नर जन्म हार कर्यो,

चलत दिखाइ हाथ, चढ चहुं कांध रे ।

आतम सयाना तोकूं, एही दुखदाना जाना,

दाना मरदाना है, तो अब पाल बांध रे ॥2॥

आर्तध्यान के लिंग-

रोद करे सो करे, गाढ स्वर नाद करे,

हिरदे के कूट मरे, इष्टके विजोग ते ।

चित्त मांजि खेद करे, हाय हाय साद करे,

बदन ते लार गिरे, कष्ट के संजोग ते ॥

निंदे कृत आप पर, रिद्धि देख चित ताप,
चाहे राग फाहे मेरे, ऐसा क्यु न जोग ते ।
विसे का पिया सामन, आसा सासा भाषा वन,
आलसी विसे में गृद्ध, मूढ गति जोग ते ॥३॥ (इति आर्तध्यान)

रौद्रध्यान के चार भेद—

निर्माण चित करी, जीव वध नीत धरी,
वेध बंध दाह अंक, मारण प्रणाम रे ।
माया झूठ पिशुनता, कठन वचन भने,
एक ब्रह्म जग मने, नाना नही काम रे ॥
पंचभूत रूप काया, देवकूं कुदेव गाया,
आतम सरूप भूप, नहीं इन ठाम रे,
छाना पाप करे लरे, दुष्ट परिणाम धरे,
ठग वासी रीत करे, दूजा भेद आम रे ॥४॥
पर धन हरे क्रोध, लोभ चित्त घरे दूर,
दिल दया करे जीव, वध करे राजी है ।
पाप से न डरे कष्ट, नरक के गरे परे,
तिनकी न भीत करे, कहे हम हाजी हैं ॥
मांस मद पान करे, भामनि लगावे गरे,
रात दिन काम जरे, मन हूये राजी हैं ।
नरक की आग जरे, जमन की मार परे
रोय रोय मरे जिहां, अल्ला है न काजी है ॥५॥

चौथा भेद—

साद आद साधन के, धन कूं समार रखे,
कारण विसे के सब, मेलत महान् है ।
वीणा आद साद पूर, पूतरी गंध कपूर,
मोदक अनेक कूर, ललना सुहान है ॥
अमनोग से उदास दुष्ट, मनन विसास पर,
घात मन धरे मलिन अज्ञान है ।
आतम सरूप कोरे, तप जप दान चोरे,
ज्ञान रूप मारे कोरे, टरे रुद्र ध्यान है ॥६॥

अथ स्वामी—

राग द्वेष मोह भरे, चार गति लाभ करे,
नरक में परे जरे, दुख की अगन से ।

किसन कपोत नील, संकलेस लेस तीन,
 उतकिरु कष्ट रूप, भइ गई है जगन से ॥
 मोह की मरोर पगे, कामनी के काम लगे,
 निज गुन छोरे भगे, होर की लगन से ।
 एही रीत जिन टारी, भय है धरम धारी,
 मात तात सुत नारी, जाने है ठगन से ॥7॥

लिंग कथन—

दिव माहे बहु वार, जीव वध आदि चार,
 चिंतन कर करत, लिंग प्रथम कहातु है ।
 बहु दोस एक दोन, तीन चार चिंते सोय,
 मोह में मगन होय, मूढ ललचातु है ॥
 नाना दोस अमुक कूं, अमुक प्रकार करी,
 मार गारु पार डारु, रिदे मे ठरातु है ।
 आमरण दोस फाही, अंतकाल छोडे नाही,
 जग मे रुलाइ भव, भ्रमण करातु है ॥8॥

कर्तव्य—

रुद्र ध्यान पर्यो जीव, पर दुख देख कर,
 मन में आनंद माने, ठाने न दया लगी ।
 पाप करी पछाताप, मन से न करे आप,
 अपर करी ने पाप, चिते मेरिं झालगी ॥
 किसकी न सार करे, निरयी नाम परे ।
 करथी न दान करे, जो कामदा लगी ।
 कही समझाया फिर, जात उर झाया समझे,
 न समझाया मेरे, कहे की कहा लगी ॥9॥ (इति रौद्रध्यान संपूर्णम्)

धर्म ध्यान—

इसके 12 द्वार हैं—(1) भावना (2) देश (3) काल (4) आसन (5) आलंबन (6) क्रम
 (7) ध्यातव्य (8) ध्याता (9) अनुप्रेक्षा (10) लेश्या (11) लिंग (12) फल ।
 प्रथम भावना— (1) ज्ञान (2) दर्शन (3) चारित्र (4) वैराग्य ।

ज्ञान भावना (सवाईया इकतीसा)—

यथावत् जोग वही, गुरुगम्य ज्ञान लही,
 आठ ही आचार ही, ज्ञान सुद्ध धर्यो है ।
 ज्ञान के अभ्यास करी, चंचलता दूर टरी,
 भास वास दूर परी, ज्ञान घट भर्यो है ॥

प्रगट तुरंग रंग, कूदित विहंग खंग,
मन थिर भयो जु, निवात दीप जर्यो है ।
ज्ञान सार मन धार, विमल मति उजार,
आतम संभार थिर, ध्यान जोग कर्यो ॥1॥

दर्शन भावना—

संखा कंखा दूर करी, मूढता सकल हरी,
सम थिर गुन भरी, टरी सब मोहनी ।
मिथ्या रंग भयो भंग, कुगुरु कुसंग फंग,
सत गुरु संग चंग, तत्त वात टोहनी ।
निर्वेद सम मान, दया ने संवेग ठान,
आसति करत जान, राग द्वेष दोहनी ।
ध्यान केरी तान धरे, आतम सरूप भरे,
भावना समक करे, मति सोहनी ॥1॥

चारित्र भावना—

उपादान नूतन, करम कोन करे जीव,
पुव्व भव संचित, दगध करे छारसी ।
सुभ का गहन करे, ध्यान तो धरम धरे,
विना ही जतन जैसे, चाकर जुहारसी ॥
चारत को रूप धार, करम पखार डार,
मार धार मार बूंद, गिरे जैसी ठारसी ।
करम कलंक नासे, आतम सरूप पासे,
सत्ता को सरूप भासे, जैसे देखे आरसी ॥1॥

वैराग्य भावना—

चक्रपति विभो अति, हलधर गदाधर,
मंडलीक रान जाने, फूले अतिमान में ।
रति पति विभो मति, सुख नकू मान अति,
जग में सुहाय जैसे, बादर विहान में ॥
रंभा अनुहार नार, तन में करे सिंगार,
खिनक तमासा जैसे, बीज आसमान में ।
पवन झकोर दीप, बुझत छिनकमा,
जिए से बुझ गए फिर, आए न जिहान में ॥1॥
खासा खाना खाते मन, माना सुख चाते ताते,
जानते न जात दिन, रात तान मान में ।

सुंदर सरूप बने, भूषण में बने वने,
 पोर समे सने अने, वच मद मान में ॥
 गेह नेह देह संग, आस लोभ नार रंग,
 छोर के विहंग जैसे, जात असमान में ।
 पवन झकोर दीप, बुझत छिनक मां,
 जिए से बुझ गए फिर, आये न जिहान में ॥2॥

रोयां रीकी घरे परी, राखत न एक घरी,
 प्रिया मन सोग करी, परीकू ने जाइ रे ।
 माता हूं विहाल कहे, लाल मेरो गयो छोर,
 आसमान माही मेरी, पूरी हुं न काइ रे, ॥
 मिलकर चार नर, अस्थी में घर कर,
 जग मे दिखाइ कर, कूटे सिर माइ रे ।
 पीछे ही तमासा तेरो, देखेगा जगत सब,
 आपना तमासा आप, क्यूं न देखे भाइ रे ? ॥3॥

हाथी आधी छोर करी, धाम वाम परहरी,
 ना तातां तोर करी, घरी न ठराइ रे ।
 खान पीन हार यार, कोउ नहीं चले नार,
 अपने कमाये पाप, आप साथ जाइ रे ॥
 सुंदर सी वपु जरि, छारन में छार परी,
 आतम ठगोरी भोरी, मरी धोखो खाइ रे ।
 पीछे ही तमासा तेरो, देखेगा जगत सब,
 अपना तमासा आप, क्यूं न देखे भाइ रे ? ॥4॥

देश द्वार-कुशील संसर्ग वर्जन (सवईया इकतीसा ।)

भामनि पसु ने षंड, रहित स्थान चंग,
 विजन कुशील जन, संगत रहतु है ।
 द्यूतकार हस्तिपार सवतिकार नार,
 छातर पवनहार, कुट्टिनी सहतु है ॥
 नट विट भांड रांड, पर घर नित हांड,
 एही सब दूर छांडकु, सील कहतु है ।
 ध्यान दृढ मुनि मन, सुन्यगृह ग्राम बन,
 तथा जना कीरण, विसेस न लहतु है ॥1॥
 मन वच काये साधि, होत है जहा समाधि
 तेही देस थानक, धियान जोग कहे है ।

पृथ्वी आप तेज वन, बीज फूल जीव घन,
कीट ने पतंग भंग, जीव वधन हे है ॥
ऐसा ही सथान ध्यान, करने के जोग जान,
संग एकलो बिसेस नहीं लहे है ।
एही देस द्वार मान, ध्यान केरा वान तान,
भिष्ट कर अरि थान, सदा जीत रहे है ॥2॥

काल द्वार—(दोहरा)

जोग समाधि में वसे, ध्यान काल है सोय ।
दिवस घरी के काल को, ताते नियम न कोय ॥1॥

आसन द्वार—(दोहरा)

सोवत बैठे तिष्ठते, ध्यान सवी विध होय ।
तीन जोग थिरता करो, आसन नियम कोय ॥1॥

आलंबन द्वार—(सवईया इकतीसा)

वाचन पूछत कित, बार बार फेरे नित,
अनुपेहा सुद्ध मेहा, धरम सहतु है ।
समक श्रुत समाय, देस सब वृत्ति थाय,
चारो ही समाय धाय, लाभ लहतु है ॥
विषम प्रसाद पर, चर वे को मन पर,
रजु कूं पकर नर, सुख से चरतु है ।
ऐसो 'धर्म' ध्यान सौध, चरवे को भयो बौध,
वाचनादि 'आलंबन' नाम जुं कहतु है ॥1॥

क्रम द्वार—योग निरोध विधि (दोहरा)

प्रथम निरोधे मन सुद्धी, वच तन पीछे जान ।
तन वचन मन रोघे तथा, वचन तन मन इक ठान ॥1॥

ध्याता द्वार—(सवईया इकतीसा)

धरम का ध्याता ज्ञाता, मुनि जन जग त्राता,
जगत कूं देत साता, गाता निज गुण ने ।
छोरे सब परमाद, जारे सब मोह माद,
ज्ञान ध्यान निराबाद, वीर धीर थुण ने ॥
खीण उपसंत मोह, मान माया लोभ कोह,
चारों गेरे खोह जोह, अरि निज मुण ने ।
आलम उजारी टारी, करम कलंक भारी,
महावीर वैन ऐन, नीकी भांत सुण ने ॥1॥

ध्यातव्य द्वार-आज्ञा विचय-

निपुन अनादि हित, मोल तोल के न कित,
कथन निगोद मित, महत प्रभावना ।
भासन सरूप धरे, पाप को न लेस करे,
जगत प्रदीप जिन, कथन सुहावना ॥
जड मति बूझे नहि, नय भंग सूझे नहि,
गमक परिमान गेय, गहन भुलावना ।
आरज आचारज के, जोग विना मति तुच्छ,
संका सब छोर वाद, वारके कहावना ॥1॥

अपाय विचय-

कुटुंब के काज लाज, छोर के निलज्ज भयो,
ठान तअका जतन, सीत घाम सहे है ।
चिंता करी चकचूर, दुषन में भरपूर,
उड गयो तन नूर, मेरो मेरो कहे है ॥
पाप केरी पोटरी, उठाय कर एक रोतूं,
झींक सोग भरे, साथी इहां रहे है ।
नरक निगोद फिरे, पापन को हार गरे,
रोय रोय मरे फेर, ऊन सुख चहे है ॥2॥

विपाक विचय-

करम सभाव थित, रस परदेस मित,
मन वच काय धित, सुभासुभ कर्यो है ।
मूल आठ भेद छेद, एक सो अठावना है,
निज गुण सब दबे, प्राणी भूल पर्यो है ॥
राजन ते रंक होत, ऊँची थकी नीच गोत,
कीट ने पतंग भंग, नाना रूप धर्यो है,
छेदे जिन कर्म भ्रम, ध्यान की अगन गर्म,
मानत अनंग सर्म, धर्म धारी ठर्यो है ॥3॥

संस्थान विचय-

आदि अंत बेहू नही, वीतराग देव कही,
आसति दरब पंच, मय स्वयं सिद्ध है ।
नाम आदि भेद अहु, पुव्व धार कहे वहु,
अधो आदि तीन भेद, लोक केरे किद्ध है ॥
षिति वले दीप वार, नरक विमानाकार,

भवन आकार चार, कलस महिद्ध है ।
आतम अखंड भूप, ज्ञान मान तेरो रूप,
निज दृग् खोल लाल, तोपे सब रिद्ध है ॥4॥

(इस सवईये का भावार्थ आगे यंत्रों में लिखेंगे ।)

अनुप्रेक्षा द्वार—ध्यान के पीछे चिंतन करना उसे अनुप्रेक्षा कहते हैं । (सवईया इकतीसा)

आपने अज्ञान करी, जन्म जरा मीच नीर,
कषाय कलस नीर, उमगे उतावरो ।
रोग ने विजोग सोग, स्वापद अनेक थोग,
धन धान रामा मान, मूढ मति बावरो ॥
मन की घमर तोह, मोह की भमर जोह,
वात ही अज्ञान जिन, तान वीचि धावरो ।
संका ही लघु तरंग, करम कठन द्रंग,
पार नही तर अब, कहूं तो है नावरो ॥1॥

पोत वर्णन—

संत जन वणिग विरतमय महापोत,
पत्तन अनूप तिहा, मोख रूप जानीये ।
अवधि तारणहार, समक बंधन डार,
ज्ञान है करण धार, छिदर मिटानीये ॥
तप वात वेग कर, चलन विराग पंथ,
संका की तरंग न ते, खोभ नहीं मानीये ।
सील अंग रतन, जतन करी सौदा भरी,
अवाबाध लाभ धरी, मोख सौध ठानीये ॥2॥

अनुप्रेक्षा के चार कथन—(सवईया इकतीसा)

जग में न तेरो कोउ, संपत विपत दोउ,
ए करो अनादि सिद्ध, भरम भूलानो है ।
जासो तूं तो माने मेरो, तामे कोन प्यारो तेरो,
जग अंध कूप झेरो, परे दुख मानो है ॥
मात तात सुत भ्रात, भारजा बहिन आत,
कोइ नही त्रात थात, भूल भ्रम ठानो है ।
थिर नहीं रहे जग, जग छोर धम्म लग,
आतम आनंद चंद, मोख तेरो थानो है ॥3॥

लेस्या द्वार—(दोहरा)

पीत पउम ने सुक्क है, लेस्या तीन प्रधान ।
सुद्ध सुद्धतर सुद्ध है, उत्कट मंद कहान ॥1॥

लिंग द्वार—(सवईया इकतीसा)

धमा धम्मा आदि गेय, ज्ञान केरे जे प्रमेय,
सत सरद्धान करे, संका सब छारी है ।
आगम पठन करी, गुरवै न रिदे धरी,
वीतराग आन करी, स्वयं बोध भारी है ॥
चार ही प्रकार करी, मिथ्या भ्रम जार जरी,
सत का सरूप धरी, भय ब्रह्मचारी है ।
आतम आराम ठाम, सुमति को करी वाम,
भयो मन सिद्ध काम, फूलन की बारी है ॥1॥

फल द्वार—

कीरति प्रशंसा दान, विने श्रुतशील मान,
धरम रतन जिन, तिनही को दीयो है ।
नर केरी जो न पाय, सुख सहु मिले धाय,
अंत ही विहाय सब, तोष रस पीयो है ।
आतम अनंत बल, अघ अरि तोर दल,
मोख में अचल फल, सदा काल जीयो है ॥1॥ इति धर्म ध्यान संपूर्णम् ।

शुक्ल ध्यान—आलंबन कथन (दोहरा)

खंति आर्जव मार्दव, मुक्ति आलंबन मान ।
सुकल सौध के चरण को, एही भये सोपान ॥1॥

ध्यान क्रम स्वरूप—(सवईया इकतीसा)

त्रिभुवन फस्यो मन, क्रम सो परमानु विषे,
रोक करी धर्यो मन, भये पीछे केवली ।
जैसे गारुडिक तन, विसकूं एकत्र करे,
डंक मुख आन धरे, फेर भूम ठेवली ॥
ध्यान रूप बल भरी, आगम मंतर करी,
जिन वैद अनु थकी, फारी मन ने वली ।
ऐसे मन रोधन की, रीत वीतराग देव,
करे धरे आतम, अनंत भूप जे वली ॥1॥
जैसे आग इंधन के, घट ते घटत जात,
स्तोक एध दूर की ये, छार होय परी है ।
जैसे धरी कुंड जर, घर नार छेर कर,
सने सने छीज तजु, मन दोर हरी है ॥
जैसे तत्ततवे धर्यो, उदग जर तपस्यो,

तैसे विभु केवली की, मन गति जरी है ।
ऐसे वच तन दोय, रोध के अजोगी भये,
नाम है सेलेस तब, ए जनही करी है ॥2॥

शुक्ल ध्यान के चार भेद (सवईया)

एक ही दख परमानु, आदि चित धरी,
उतपात व्यय ध्रुव-स्थिति भंग करे है ।
पुव्व ज्ञान अनुसार, पर जाय नानाकार,
नय विसतार सात, सात सात सत धरे है ॥
अरथ विजन जोग, सविचार राग विन,
भंग के तरंग सब, मन वीज भरे है ।
प्रथम सुकल नाम, रमत आतमराम,
पृथग वितर्क आम, सविचार परे हैं ॥1॥

एक हि दख मांजि, उतपात व्यय ध्रुव,
भंग नयपरि जाय, एक थिर भयो है ।
निरवात दीप जैसे, जरत अकंप होत,
ऐसे चित धोत जोत, एक रूप ठयो है ॥
अरध विजन जोग, अविचार तत जोग,
नाना रूप गेय छोर, एक रूप छयो है ।
'एकत वितर्क' नाम, अविचार सुख धाम,
करम थिरत आग, पाय जैसे तयो है ॥2॥
विमल विज्ञान कर, मिथ्या तम दूर कर,
केवल सरूप धर, जग ईस भयो है ।
मोख के गमन काल, तोर सब अघ जाल,
ईषत निरोध काम, जोग वस ठयो है ॥
तनु काय क्रिया रहे, तीजा भेद वीर कहे,
करम भरम सब, छोर वे को थयो है ।

सूषम तो होत क्रिया, 'अनिवृत्त' नाम लीया,
तीजा भेद सुकर, मुकर दरसयो है ॥3॥
ईस सब कर्म पीस, मेरु नगरा जईस,
ऐसे भयो थिर धीस, फेर नहीं कंपना ।
कदे हीन परे ऐसो, परम सुकल भेद,
छेद सब क्रिया ऐही, नाम याको जंपना ॥
प्रथम सुकल एक, योग तथा तीन ही में,
एक जोग मांहे दूजा, भेद लेइ ठंपना ।

काय जोग तीजो भेद , चौथ भयो जोग छेद ,
 आतम उमेद मोख , महिल धरंपना ॥4॥
 जैसे छदमस्थ केरो , मनोयोग ध्यान कह्यो ,
 तैसे विभु केवली के , काय छोरे ध्यान ठेरे है ।
 विना मन ध्यान कह्यो , पूरव प्रयोग करी ,
 जैसे कुंभकार , चाक एक वेरे है ॥
 पीछे ही फिरत आप , ऐसे मन करे थाप ,
 मन रुक गयो तो ही , ध्यान रूप लेरे है ।
 वीतराग वैन ऐन , मिथ्या नहीं कहै जैन ,
 ऐसे विभु केवलि ने , कर्म दूर गरे हैं ॥5॥

अनुप्रेक्षा कथन—(सवईया इकतीसा)

पाप के अपथ केरी , नरक में दुख परे ,
 सोग की अगन जरे , नाना कष्ट पायो है ।
 गर्भ के वास वसे , मृत ने पुरीष रसे ,
 जन्म पाय फेर हसे , जरा काल खायो है ॥
 फेर ही निगोद वसे , अंत विन काल फसे ,
 जग में अभव्य लसे , अंत नही आयो है ।
 राजन ते रंक होत , सुख मान देख रोत ,
 आतम अखंड जोत , धोत चित्त ठायो है ॥1॥

लेश्या कथन (दोहरा)

प्रथम भेद दो सुकल में , तीजा परम वखान ।
 लेश्यातीत चतुर्थ है , ए ही जिनमत वान ॥1॥

लिंग कथन (सवईया इकतीसा)

परीसहा आन परे , ध्यान थकी नाहीं चरे ,
 गज मुनि जैसे खरे , ममता कूं छोरे के ।
 देव माया गीत नृत , मूढता न होत चित्त ,
 सूषम प्रमान ज्ञान , धारे भ्रम तोर के ॥
 दीसे जो ही नेत्र को ही , सब ही विनास हो ही ,
 निज गुन टोही तोही , कहूं कर जोर के ।
 घर नर नार यार , धन धान धाम वार ,
 आतम से न्यार धार , डार पार दोर के ॥1॥

फल—

देव इंद चंद खंद , दोनो चर नारविंद ,
पूजन आनंद छंद , मंगल पठतु है ।
नाक नाथ रंभापति , नाटक विबुध रति ,
भयो हे विमानपति , सुखन घटतु है ॥
हलधर चक्रधर , दाम धाम वाम घर ,
रात दिन सुख भर , काल यूं कटतु है ।
जोग धार तप ठये , अघ तोर मोष गये ,
सिद्ध विभुतेरी जय , नाम यूं रटतु है ॥ इति फल ॥

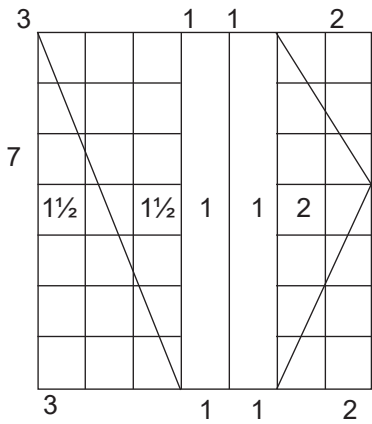
**दोनों सुभ ध्यान धरे , पाप को न लेस करे ,
ताते दोनों नहीं भये , कारण संसार के ।
संवर निज्जर दोय , भाव तप दोनो पोय ,
तप सब अघ खोय , धोय सब छार के ॥
याते दोनों तप भरे , जीव निज चित धरे ,
करम अंधारे टारे , ज्ञानदीप जार के ।
करम करूर भूर , आतम से किए दूर ,
ध्यान करे सूर ने तो , मारे है पछार के ॥१॥**

आत्म कर्म ध्यान दृष्टांत—

वस्त्र लोह मही वंक , मलिन कलंक पंक ,
जलानल सूर नूर , सोधन करतु है ।
अंबर ने लोह मही , आतम सरूप कही ,
करत कलंक पंक , मलिन कहतु है ॥
जलानल सूर ध्यान , आतम अधिष्ट स्थान ,
जलानल ज्ञान मान , मान के रहतु है ।
वसन की मैल झारे , लोह केरी कीटी जरे ,
मही केरो पंक हरे , उपमा लहतु है ॥१॥
**जैसे ध्यान धर करी , मन वच काय लरी ,
ताप सोस भेद परी , ऐसे कर्म कहे है ,
जैसे वेद लंघन , विरेचन उषध कर ,
ऐसे जिन वैद विभु , रीत परढहे है ॥
तप ताप तप सोस , तप ही उषध जोस ,
ध्यान भयो तप को , स रोग दूर थहे है ।
एही उपमान ज्ञान , तप रूप भयो ध्यान ,
मार किर पान भान , केवल को लहे है ॥१॥**

जैसे चिर संचि एध, अगन भसम करे,
तैसे ध्यान छार रूप, करत कर्म को ।
जैसे वात आभ वृंद, छिन मे उड़ाय डारे,
तैसे ध्यान ढाह डारे, कर्म रूप हर्म को ॥
जब मन ध्यान करे, मानसीन पीर करे,
तन को न दुख घरे, धरे निज सर्म को ।
मन में जो मोख वसी, जग केरी तो रसी,
आतम सरूप लसी, धार ध्यान मर्म को ॥१॥

(112) लोक स्वरूप विवरण



घनीकृत लोक स्थापना ज्ञेयम्

लोकस्य एक श्रेणी स्थापना

लोक प्रतर स्थापना 7

घनीकृत लोक स्वरूप – चौदह राज लोक वैशाख संस्थान से खड़े पुरुष की तरह है ।
घनत्व जानने के लिए बुद्धि से संवृत्य—समेटकर घन करते हैं ।

एक रज्जु विस्तीर्ण त्रस नाडी के दक्षिण दिशावर्ती अधोलोक का खंड (स्थापना नं. 1 नं. 6)
जो नीचे देशोन तीन रज्जु विस्तीर्ण है, ऊपर की ओर कम होता ऊपर के भाग में अर्थात् रत्नप्रभा
पृथ्वी के ऊपरी भाग में रज्जु का संख्यातवां भाग चौड़ा और ऊंचा सात हुआ रज्जु से कुछ अधिक
है । उसे उठाकर विपरीत रीति से त्रस नाडी के उत्तर तरफ रख दें ।

(देखें स्थापना नं. 2 में खंड नं. 6) ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर ।
ऐसा करने से अधोवर्ती भाग लोक का आधा हुआ अर्थात् देशोन चार रज्जु विस्तीर्ण और
साधिक सात रज्जु ऊंचा ।

(देखें स्थापना नं. 2 खंड 5 + 6 + आधी त्रस नाडी)

अब ऊपर के लोकार्ध को समेटते हैं—

ऊपर के लोकार्ध की रज्जु प्रमाण त्रस नाडी के दक्षिण दिशा में रहे ब्रह्मलोक के मध्य भाग
से नीचे का और ऊपर का खंड अर्थात् स्थापना नं. 1 के खंड नं. 3 और 4 को, जो ब्रह्मलोक के

मध्य में प्रत्येक 2-2 रज्जु विस्तीर्ण हैं और ऊपर लोकांत के समीप नं. 3 तथा रत्नप्रभा के समीप नं. 4 का खंड अंगुल के हजारवां भाग विस्तृत हैं। इन दोनों खंडों को उठाकर त्रस नाडी के उत्तर भाग में विपरीत रीति से रख दें। देखें स्थापना नं. 2 में खंड नं. 3 और नं. 4) इन दोनों खंडों का प्रत्येक का विस्तार दो रज्जु लंबाई देशोन साढे तीन रज्जु। अब इस प्रकार समेटने से आधी त्रस नाडी के साथ कुल विस्तार अंगुल के हजारवें भाग अधिक तीन रज्जु लंबाई देशोन सात रज्जु बाह्य ब्रह्मलोक के मध्य भाग में पांच रज्जु और अन्यत्र अनियत।

अब इस समेटे हुए ऊर्ध्वलोक को उठाकर समेटे हुए अधोलोक के उत्तर दिशा में रख दें। (स्थापना नं. 3 देखें) इस प्रकार कुल संवर्तित (समेटा हुआ) लोक का विस्तार 7 रज्जु और लंबाई भी सात रज्जु हुई।

अब घनत्व के लिए बाहुल्य मोटाई को देखते हैं—अनुयोग द्वार - टीका के अनुसार ग्रंथकार कहते हैं—कहीं साधिक पांच रज्जु बाहुल्य से तथा कहीं देशोन सात रज्जु बाहुल्य से। इस प्रकार $(5 + 7 = 35 \text{ भाग } 2)$ अर्थात् छह रज्जु + असंख्यातवां भाग अधिक होता है जो व्यवहार से राज रज्जु कहा जाता है।

चौदह राज लोक का विचार सूची, वर्ग, घन से करने के लिए असत कल्पना से रज्जु के चार विभाग।

1	1	1	1
1	1	1	1
1	1	1	1
1	1	1	1

प्रतर रज्जु स्थापना

4	4	4	4
4	4	4	4
4	4	4	4
4	4	4	4

घन रज्जु स्थापना

1	सूची रज्जु स्थापना
1	
1	
1	

1

खंडुक

लंबाई में किए जिसे खंड कहते हैं। लंबाई सूची आकार की होती है। सूची रज्जु अब वर्ग में अर्थात् एक रज्जु लंबा और चौड़ा। रज्जु की स्थापना (4×4) वर्ग 16 होता है, अतः स्थापना वर्ग रज्जु अब इसी को घन बनाने के लिए 16 को 4 से गुणना चाहिए। $16 \times 4 = 64$, जिसे बनाना स्थापना रूप से कठिन है, अतः 4 शीट (वर्ग) को एक के ऊपर एक, इस तरह रखने से घन रज्जु बनता है।

1 रज्जु = असंख्य योजन। अतः सर्वज्ञ गम्य कहा है।

(113) नाम आदि नरक की स्वरूप

नारक का नाम	7 नरक	घमा 1	वंशा 2	शैला 3	अंजना 4	अरिष्टा 5	मघा 6	माघवती 7
सार्थक गोत्र	"	रत्नप्रभा	शर्करा प्रभा	वालुका प्रभा	पंक प्रभा	धूम प्रभा	तम प्रभा	तम तमप्रभा

पृथ्वी पिंड	000 000	180000	132000	128000	120000	118000	116000	108000
घनोदधि	000 000	20000	20000	20000	20000	20000	20000	20000
घनवात	000 000	असंख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन	असंख्य योजन
तनुवात	000 000	असंख्य योजन	" "	" "	" "	" "	" "	" "
आकाश	000 000	"	"	"	"	"	"	"
वलय	000 000	12 योजन	12 1/2	13 1/2	14 यो	14 1/2	15 1/2	16 योजन
घनोदधि वलय	000 000	6 "	6 1/2	6 2/3	7"	7 1/2	7 3/4	8" यो.
घनवात वलय	000 000	4 1/2 "	4 3/4 यो.	5 यो.	5 1/4 यो.	5 1/2 यो.	5 3/4 यो.	6 यो.
तनुवात वलय	000 000	1 1/2 "	1 1/12	1 8/12	1 3/4	1 10/12	1 11/12	2"
आकाश वलय	000 000	अलोक	अलोक	अलोक	अलोक	अलोक	अलोक	अलोक
प्रतर	49	13	12	9	7	5	3	1
शून्य पृथ्वी	000 000	1000 योजन	1000 योजन	1000 योजन	1000 योजन	1000 योजन	1000 योजन	
प्रतर अंतर	000 000	1 1583 1/2 भाग	9700	12374	16166 2/3	25250	52500	000 000
आवलि	000 000	8	8	8	8	8	8	8
नरका- वास	8400000	300 लाख 1/2 भाग	25 लाख	15 लाख	10 लाख 2/3	3 लाख	99994	5 000
दिशा- विदिग्	00 00	49-48	36-35	25-24	16-15	9-8	4-3	1-0

प्रमाण	000 000	असं.-संख्य	असं.-संख्य	असं.-संख्य	असं.-संख्य	असं.-संख्य	असं.-संख्य	असं.-संख्य
उत्सेध	000 000	3000 योजन	3000 योजन	3000 योजन	3000 योजन	3000 योजन	3000 योजन	3000 योजन

(114) दस भवनपति

भवनपति नाम	असुर कुमार	नाग	सुवर्ण	विद्युत्	अग्नि	द्वीप	उदधि	दिक्	पवन	स्तनित
विमान	34 लाख	44 लाख	38 लाख	40 लाख	40 लाख	40 लाख	40 लाख	40 लाख	40 लाख	40 लाख
जघन्य	30	40	34	36	36	36	40	36	46	36
विमान परिमाण	जंबू द्वीप	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.	जं. द्वी.
मध्यम	संख्य योजन	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.	सं. यो.
चिन्ह	असंख्य	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "	अ. "
	चूडामणि	फण	गरुड	वज्र	कलश	सिंह	अश्व	गज	मगर	वर्धमान
वर्ण	काला	पंडुर	कनक	अरुण	अरुण	अरुण	पंडुर	कनक	प्रियंगु	कनक
वस्त्र	लाल	नील	सफेद	नील	नील	नील	नील	सफेद	संध्या वर्ण	सफेद
इन्द्र	चमर	धरण	वेणुदेव	हरिकंत	अग्नि- सिंह	पूरण	जलकांत	अमित- गति	वेलंब	घोष
	वल	भूतानंद	वेनुदालि	हरिसिंह	अग्नि मानव	विशिष्ट	जलप्रभ	अमित वाहन	प्रभंजन	महाघोष
सामा- निक	64000 60000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000	6000 6000
आत्म	256000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000
रक्षक	240000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000	24000
त्रायस्त्रिंश	33	33	33	33	33	33	33	33	33	33

अणिका	7	7	7	7	7	7	7	7	7	7
लोकपाल	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4
अग्र	5	6	6	6	6	6	6	6	6	6
महिषी	6	6	6	6	6	6	6	6	6	6
परिषद्	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3

(115) आठ व्यंतर

व्यंतर नाम	पिशाच	भूत	यक्ष	राक्षस	किन्नर	किंपुरुष	महोरग	गांधर्व
नगर संख्या	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य	असंख्य
नगर परिमाण	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप	जंबूद्वीप
मध्यम	विदेह	विदेह	विदेह	विदेह	विदेह	विदेह	विदेह	विदेह
जघन्य	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र	भरत क्षेत्र
चिन्ह	कलंब	सुलस	वट वृक्ष	खडग	अशोक	चंपग	नाग	तुंबरु
वर्ण	श्याम	श्याम	श्याम	धवल	नील	धवल	श्याम	श्याम
इन्द्र	काल	सरूप	पूर्णभद्र	भीम	किन्नर	सत्पुरुष	अति काय	गीतरति
	महाकाल	प्रतिरूप	माणिभद्र	मध्यनीम	किंपुरुष	महापुरुष	महाकाय	गीतयश
सामानिक	4000	4000	4000	4000	4000	4000	4000	4000
आत्मरक्षक	16000	16000	16000	16000	16000	16000	16000	16000
अनीक	7	7	7	7	7	7	7	7
अग्रमहिषी	4	4	4	4	4	4	4	4
परिषद्	3	3	3	3	3	3	3	3
लघु व्यंतर	अणपन्नी	पणपन्नी	इसिवाइ	भूयवाइ	कंदिय	महाकंदिय	कुहुंड	पयगदेव
इन्द्र	संनिहिय	धाइ	इसि	ईसरप	सुवत्स	हास्य	श्वेत	पयंग
	1	3	5	7	9	11	13	15
	समाणि	विधाइ	इसिपाल	महेश	सुविशाल	हास्यरति	महाश्वेत	पयगे
	2	4	6	8	10	12	14	16

(116) ज्योतिष चक्र स्वरूप

ज्योतिष चक्र अबाधा	मेरु से 1121 योजन	अलोक से 1111 योजन
मेरु पर्वत तक	चंद्र चंद्र के 44820 योजन	सूर्य सूर्य के 44820 योजन
जंबूद्वीप प्रवेश	180 योजन	180 योजन
लवण प्रवेश	330 योजन 56/61 भाग	330 योजन 48/61 भाग
मंडल क्षेत्र	510 योजन 56/61 भाग	510 योजन 48/61 भाग
मंडल संख्या	15	184
पंक्ति	2	2
मंडलांतर	चंद्र 35 योजन 30 भाग (चूर्णि-4 भाग)	सूर्य के दो योजन
जंबू द्वीप में सूर्य-चंद्र की संख्या	2	2

(117)

ज्योतिषी	ज्योतिष चक्र	चंद्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारक
सम भूतल से	790 योजन	880 योजन	800 योजन	888 योजन	884 योजन	790 योजन
विष्कंभ	1 राज	56/61	48/61	1/2	1/4	1/8
उच्चत्व	110	28/61	24/61	1/4	1/8	1/16
अंतर	जघन्य-	99640	99640	3	2	266 यो. 500 धनु.
	उत्कृष्ट	100660	100660	3	2	12242 यो. 400 धनु.
गति	000	1 मंद	1 शीघ्र	3 शीघ्र	4 शीघ्र	5 शीघ्र
ऋद्धि	000	5 महा	4 महा	3 महा	2 महा	1 अल्प
विमान वाहक	000	16000	16000	8000	4000	2000
अल्प बहुत्व	00	1 स्तोक	1 स्तोक	3 संख्येय	2 संख्येय	4 संख्येय

(118)

	योजन	धनुष	अंगुल	यव	जूका	लीख
अंदर के मंडल का परिधि	315089	2768	45 1/2	0	0	0
अंदर के मंडल का चक्षुस्पर्श	47263	3215	26	0	4	0
अभ्यंतर की चाल	5251	3915	77	4	4	0
चक्षु स्पर्श की हानि-वृद्धि	83	3607	41	7	2	1

मुहूर्त चाल की हानि-वृद्धि	0	2350	10	2	7	3III
परिधि की हानि-वृद्धि	17	5006	46	0	0	0
बाह्य मंडल की परिधि	318314	6954	15 1/2	0	0	0
बाह्य मंडल की चाल (मुहूर्त में)	5305	1982	54	5	1/2	0
बाह्य मंडल का चक्षु स्पर्श	31831	3895	39	6	3	0

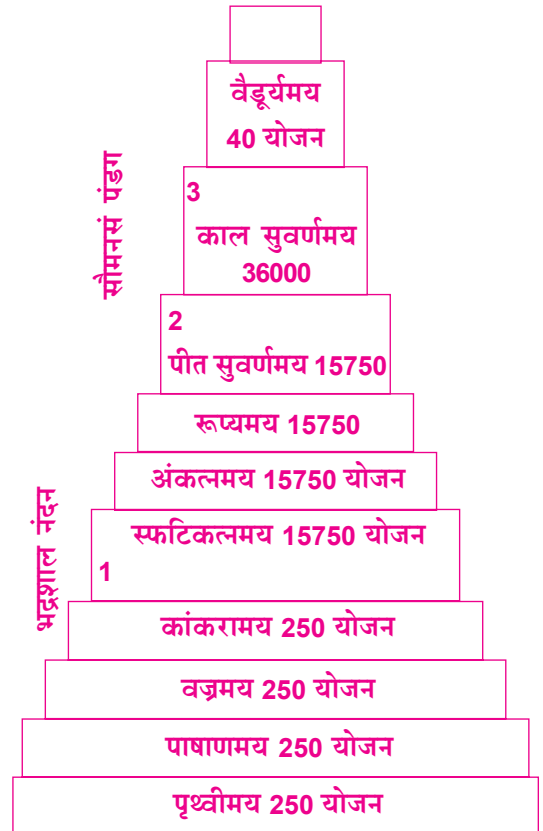
(119)

संख्या	जंबूद्वीप	लवण	धातकी	कालोदधि	पुष्कर	द्वीपोदधि	श्रेणिगां	चंद्र सूर्य
चंद्र-सूर्य	2	4	12	42	72	जंबू	1	2
नक्षत्र	56	112	336	1176	2016	लवण	2	4
ग्रह	176	352	1055	3696	6336	धातकी	6	12
तारे	133950	267900	803700	282950	4822270	कालोदधि	21	42
तारों की सर्वत्र कोठा कोटि संख्या समझें					पुष्कर	36	72	

कर्क संक्रांति (प्रायः 21 जुलाई) में सूर्य आभ्यंतर मंडल में आता है तब की यह स्थिति है । मेरु से जंबू द्वीप की जगती का क्षेत्र 45000 योजन है तथा लवण समुद्र में 33333 1/3 योजन तक प्रकाश पहुंचता है । अतः प्रकाश की लंबाई 78333 1/3 योजन है । विस्तार क्षेत्र लाने के लिए जंबूद्वीप की कुल परिधि (100000 + 3.16228)=316228 योजन का 3/10 प्रकाश क्षेत्र 94868 4/10 योजन एक सूर्य का एवं अंधकार क्षेत्र 2/1063245 6/10 योजन । दूसरे सूर्य का भी इतना ही समझना चाहिए ।

कर्क संक्रांति के बाद सूर्य ज्यों ज्यों बाहर की ओर घूमने लगता है तब दिन घटने लगता है और रात्रि बढ़ने लगती है । (यह ताप क्षेत्र सिर्फ जंबूद्वीप के क्षेत्र की अपेक्षा से समझना चाहिये, लवण समुद्र का अन्तर्भाव नहीं है) तप क्षेत्र कम होता जाता है और अंधकार क्षेत्र बढ़ता जाता है ।

कर्क संक्रांति के अहोरात्र में दिन 18 मुहूर्त का व रात्रि 12 मुहूर्त की होती है, इसी से ताप क्षेत्र



एक सूर्य का 3/10 और अंधकार क्षेत्र 2/10 लिया है, जो कुल परिधि का $(3/10 + 2/10) = 1/2$ हो जाता है। शेष आधा दूसरे सूर्य की अपेक्षा से ताप क्षेत्र और अंधकार क्षेत्र समझना चाहिए।

मेरुपर्वत

मेरुपर्वत का क्षेत्र प्रमाण इस प्रकार है—इसके तीन कांड है, एक चूलिका है। पहला भद्रशाल वन, दूसरा नंदन वन और तीसरा सौमनस वन और चौथा पांडुक वन है।

भूतल पर मेरु का विष्कंभ 10000 योजन है। इसे 3.1623 से गुणने पर 31623 योजन की परिधि हुई। मेरु के तीन कांड हैं—प्रथम **1000 योजन, दूसरा 63000 योजन व तीसरा 36000 योजन ऊंचाई है और चूलिका 40 योजन की ऊंचाई पर नंदन वन है। भद्रशाल वन भूतल पर है। 500 योजन की ऊंचाई पर नंदन वन है। पर्व की ऊंचाई पर आए नंदन वन और सौमनस वं की दो परिधियां आती हैं—एक बाह्य व एक मध्य की, क्योंकि विष्कंभ भी दो हैं। नंदनवन की परिधि 31479 योजन है।**

नंदनवन का विष्कंभ 99548/11 योजन है, नंदन वन के मध्य में विष्कंभ 89548 11 योजन है।

सौमनस वन की परिधि 13511 9/11 योजन है, सौमनस वन के मध्य की परिधि 10349 2/11 योजन है। सौमनस वन का विष्कंभ 4272 8/11 योजन है, सौमनस वन के मध्य का विष्कंभ 3272 8/11 योजन है।

चूलिका के मूल से पंडक वन का वलयाकार विष्कंभ 494 योजन का है। जिन प्रासाद आधा कोश चौड़ा, एक कोश लंबा व 1440 धनुष ऊंचा है।

पांडुक वन में चार शिलाएं 500 योजन लंबी, 200 योजन चौड़ी व चार योजन ऊंची है।

अर्ध चंद्राकार श्वेत स्वर्णमयी, शिला के प्रमाण से 8000 वें भाग प्रमाण सिंहासन है। पूर्व-पश्चिम शिला के ऊपर दो-दो सिंहासन है और दक्षिण-उत्तर की शिला पर 1-1 सिंहासन है। इन शिलाओं के ऊपर इन्द्र अरिहंत परमात्मा का अभिषेक करते हैं।

(120)

0	महाकलश	लघु कलश	0
संख्या	4	7884	कलश
वलय संख्या	एक वलय	9 वलय	वलय
विष्कंभ	10000	100	मुख
"	1 लाख योजन	1000	मध्य
"	10000	100	तल भाग में
ठीकरी (दीवाल की मोटाई)	1000	10	मोटाई
त्रिभाग	जल	जल	ऊपर
"	1 जल 2 वायु	1 जल 2 वायु	मध्य
"	वायु	वायु	तल भाग में

(121) हैमवंत और शिखरी की 4-4 दाढ़ाओं के ऊपर 7-7 अन्तर्द्वीप

0	1	2	3	4	5	6	7
जगती का परस्पर अंतर	300	400	500	600	700	800	900
विष्कंभ	300	400	500	600	700	800	900
परिधि	949 योजन	1258 यो.	1581 यो.	1897 यो.	2213 यो.	2529 यो.	2845 यो.
जल उपरि	2 1/2 2 95	2 1/2 90 95	3 65 95	4 40 95	5 15 95	5 85 95	6 अभ्यंतर 60 95
2 योजन	2 यो.	2 यो.	2	2	2	2	2 बाह्य

(122)

0	वेलंधर	अनु वेलंधर	0
संख्या	4	4	0
दिग्	4 दिग्	4 दिग्	0
समुद्र में	42000	42000	0
विष्कंभ	424	424	शिखर
0	1022	1022	0
0	1721	1721	0
दिखे	9694095	9694095	ज. दिसा
	9697795	9697795	"

नंदीश्वरद्वीपे यतः अजनगिरिवृत्तस्यामः (?) वापीमध्ये दधिमुखाः वृताः श्वेताः, वाप्यन्तरे द्वौ द्वौ रतिकरौ अस्तौ (स्तः?) एवं अष्टौ रतिकराः चत्वारो दधिमुखाः, एकोजनगिरिः, एवं एकाभ्यां (कस्यां ?) दिशि त्रयोदश पर्वताः स्युः चतुर्दिक्षौ (क्षु) च द्विपंचाशदिति विदिक्षु च इन्द्राणीनां राजधानी (?) सन्ति नंदीश्वरे । अग्रे सर्वाणां स्थाना (नि) चित्रात् ज्ञेयं (ज्ञेयानि)

(123) नंदीश्वर द्वीप कोष्टक (स्थानांगसूत्र चौथे स्थान से)

1	नाम	आयाम	विष्कंभ	परिधि	ऊंचाई	अधः	संस्थान
2	अंजनगिरि	0	10000 मूल 10000 ऊपर	यथा योग्य	84000 यो.	1000 यो.	गो पुच्छ
3	वापी	1 लाख यो.	50000 यो.	0	0	"	आयाम
4	दधिमुख	0	10000 "	यथा योग्य	64000 यो.		पल्लक
5	रतिकर	0	10000 "	"	1000 यो.	250 यो.	
6	राजधानी	0	जंबू द्वीप	जंबू द्वीप	0	0	चंद्र

(124) ऊर्ध्व लोक स्वरूप चिंतन (बारह देवलोक)

देव लोक के नाम	सौधर्म 1	ईशान 2	सनत् कुमार 3	माहेन्द्र 4	ब्रह्म 5	लांतिक 6	शुक्र 7	सहस्रार 8	आनत प्राणत 10	आरण अच्युत 12
संस्थान	अर्द्धचंद्र	अर्द्धचंद्र	अर्द्धचंद्र	अर्द्धचंद्र	पूर्णचंद्र	पूर्णचंद्र	पूर्णचंद्र	पूर्णचंद्र	अर्द्धचंद्र	अर्द्धचंद्र
आधार	घनोदधि	घनोदधि	घनवात	घनवात	घनवात	2	2	2	आकाश	आकाश
विमान संख्या	32 लाख	28 लाख	12 लाख	8 लाख	4 लाख	50 हजार	40 हजार	6000	400	300
पृथ्वीपिंड	2700	2700	2600	2600	2500	2400	2400	2400	2300	2300
विमान की	500 यो.	500 यो.	600 यो.	600 यो.	700 यो.	700 यो.	800 यो.	800 यो.	900 यो.	900 यो.
ऊंचाई										
विष्कंभ	संख्येय	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.	सं.
विमान	असंख्य	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.	अ.
विमान वर्ण	5	5	4	4	3	3	2	2	1	1
62 प्रतर	2	3	1	2	6	5	4	4	4	4
आवलि	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4
चिह्न	मृग	महिष	वराह	सिंह	व्याघ्र	शालूर	घोडा	हाथी	सर्प चंद्र	वृषभ बिडाल
शरीर वर्ण	कनक	पद्म	पद्म	पद्म	श्वेत	श्वेत	श्वेत	श्वेत	श्वेत	श्वेत
यान विमान	पालक	पुष्कर								
इन्द्र	सुधर्म	ईशान	सनत् कुमार	माहेन्द्र	ब्रह्म	शुक्र	लांतिक	सहस्रार	प्राणत	अच्युत
समा- निक	84000	80000	72000	70000	60000	50000	40000	3000	20000	10000
आत्म- रक्षक	चार गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे	4 गुणे

त्रायस्त्रिंश	33	33	33	33	33	33	33	33	33	33
लोकपाल	4	4	4	4	4	4	4	4	4	4
अनीक	7	7	7	7	7	7	7	7	7	7
अग्रमही षी देवी	8	8	0	0	7	7	7	7	7	7
परिषद्	3	3	3	3	3	3	3	3	3	3
कंदर्प किल्बि- षिक आधि- योगिक षी देवी	3	2	2	2	2	2	1	1	1	1
	3	2	2	2	2	2	1	1	1	1

सौधर्म देव लोक में अपरिगृहिता देवी के 6 लाख विमान ।

(125) अपरिगृहिता देवी का भोग

सनत् कुमार	10 पल्योपम	स्पर्श भोगी
ब्रह्म	20 "	रूप दर्शन
महाशुक्र	30 "	शब्द श्रवण
आनत	40 "	मानसिक विकार
आरण	50 "	मानसिक चिंतन

(126) ईशान देव लोक में अपरिगृहिता देवी के चार लाख विमान अपरिगृहिता देवी का भोग

माहेन्द्र	15 पल्योपम	स्पर्श भोगी
लांतक	25 "	रूप दर्शन
सहस्रार	35 "	शब्द श्रवण
प्राणत	45 "	मानसिक विकार
अच्युत	55 "	मानसिक चिंतन

(127) नौ ग्रैवेयक एवं 5 अनुत्तर

	अधोत्रिक	मध्यत्रिक	ऊपरित्रिक	4 अनुत्तर	सर्वार्थ सिद्ध
संस्थान	पूर्णचंद्र	पूर्णचंद्र	पूर्णचंद्र	असं.	वृत्त
विमान संख्या	111	107	100	4	1
पृथ्वी पिंड	2200	2200	2200	2100	2100
विमान की ऊंचाई	1000	1000	1000	1100	1100
विष्कंभ	संख्य असंख्य	संख्य असंख्य	संख्य असंख्य	असंख्य	संख्य
प्रतर	3	3	3	1	0
पदवी	अहमिन्द्र	अहमिन्द्र	अहमिन्द्र	अहमिन्द्र	अहमिन्द्र

62 प्रतरों के नाम—

(1) उड्डु प्रतर (2) चंद्र (3) रजत (4) वालू (5) वीर्य (6) वारुण (7) आनंद (8) ब्रह्म (9) कांचन (10) रुचिर (11) चंद्र (12) अरुण (13) दिशि (14) वैडूर्य (15-16) रुचक (?) (17) अंक (18) मेघ (19) स्फटिक (20) तपनीय (21) अर्घ (22) हरि (23) नलिन (24) सोहिता (25) वज्र (26) अंजन (27-28) ब्राह्मण्य (29) हव (30) सौम्य (31) लांगल (32) बलभद्र (33) बक्र (34) गदा (35) स्वस्तिक (36) व्यर्वत (37) आरंभ (38) गृद्धि (39) केतु (40) गरुड (41) ब्रह्मि (42) ब्रह्म (43) ब्रह्मोत्तर (44) लांतक (45) महाशुक्र (46) सहस्रार (47) आनत (48) प्राणत (49) पुष्प (50) अलका (51) आरण (52) अरुण (53) सुदर्शन (54) सुप्रबद्ध (55) मनोहर (56) सर्वतो (57) विशाल (58) सुमनस (59) सौमनस (60) प्रीतिकार (61) आदित्य (62) सर्वतोभद्र ।

(128) असज्झाय (स्थानांग, निसीथ तथा प्रवचन सारोद्धार-द्वार. 268 से)

1. उल्कापात, तारे टूटें, प्रकाश हो और आकाश में रेखा पड़े	जिस क्षेत्र में हो	रुक जाने के बाद एक प्रहर तक सूत्र न पढ़ें ।
2. जहां रेखा हो किंतु प्रकाश न हो	" "	" "
3. दिग् दाह से सभी दश दिशाएं लाल हो	" "	" "
4. आकाश में देवता कृत गंधर्व नगर दिखाई दें	" "	" "
5. आकाश में से सूक्ष्म रज गिरे ।	" "	जब तक पड़े तब तक
6. मांस रुधिर की वृष्टि	" "	रुकने के बाद एक अहोरात्र
7. केश व पाषाण वृष्टि	" "	रुकने के बाद स्वाध्याय कर सकते हैं ।
8. अकाल गर्जना	" "	दो प्रहर

9. अकाल बिजली चमके	" "	एक प्रहर
10. आसो सुद-5 के दो प्रहर से लेकर कार्तिक वदी-1 तक	सर्वत्र "	11 दिन अस्वाध्याय
11. अषाढी चातुर्मास-प्रतिक्रमण से श्रावण वद-1	"	2, 2 1/2 दिन
12. उपरोक्त प्रकार से कार्तिक चौमासी	"	" "
13. चैत्र सुद-5 से वैशाख वद-1	"	11 दिन
14. राजा का युद्ध	जिस क्षेत्र में	रुकने बाद स्वाध्याय करें
15. म्लेच्छ का भय	"	" "
16. उपाश्रय के पास स्त्री-पुरुष का झगड़ा हो	उपाश्रय के पास	" "
17. होली पर्व में रज उड़े	जिस क्षेत्र में हो	" "
18. निर्घात बादल या बिना बादल के कड़ कड़ शब्द हों	" "	एक प्रहर
19. यूपक-शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया व तृतीया को रात्रि के प्रथम प्रहर में (योगोद्वहन में नोतरा नहीं देते हैं)	सर्वत्र	एक प्रहर रात्रि
20. अग्नि यक्ष के प्रभाव में	जिस क्षेत्र में हो	1 प्रहर
21. काली सफेद धुम्मस (कुहरा) (कार्तिक से माघ मास तक छा जाती है)	"	जब तक पड़े तब तक सभी क्रियाएं न करें ।
22. पंचेन्द्रिय तिर्यच की हड्डी मांस, रक्त व चमड़ी	60 हाथ दूर	तीन प्रहर
23. उपाश्रय में बिल्ली चूहे को मार दे	उपाश्रय में	एक अहोरात्र
24. मनुष्य की हड्डी, मांस, खून, चमड़ी	100 हाथ तक	1 अहोरात्र
25. मासिक धर्म	उपाश्रय में	तीन दिन
26. स्त्री जन्म	"	आठ दिन
27. पुरुष जन्म	"	सात दिन
28. हड्डी पुरुष से अलग की हो	1000 हाथ	12 वर्ष
29. मल मूत्र	जब तक गंध आए	गंध आए तब तक
30. श्मशान के पास	चारों ओर 1000 हाथ	सदा
31. राजा की मृत्यु	जब तक आज्ञा	नया राजा स्थापित न हो तब तक
32. गांव के कलह-वाक् युद्ध हो	जिस गांव में	अहोरात्र ।

33. सात घर में कोई प्रसिद्ध पुरुष मरे	जिस क्षेत्र में	आठ प्रहर
34. सात घर तक कोई सामान्य पुरुष मरे	" "	क्लेवर निकालन का बाद स्वाध्याय करें
35. अंडा फूटे, गाय की प्रसूति हो	जिस क्षेत्र में	1 प्रहर
36. भूमि कंपन		8 प्रहर
37. वर्षा की बूंदे गिरे		अहोरात्र उपरांत अस्वाध्याय
38. मंद-मंद वर्षा निरंतर बरसती हो		7 दिन
39. पक्ष की रात्रि (प्रायः चतुर्दशी)		चार प्रहर अस्वाध्याय
40. 1. प्रभात, 2. मध्याह्न, 3. सूर्यास्त, 4. अर्ध रात्रि	"	दो घड़ी
41. 1. आसो, 2. कार्तिक, 3. चैत्र, 4. असाढ़ी पूर्णिमा	"	अहोरात्र
42. 1. कार्तिक, 2. मगसर, 3. वैशाख, 4. श्रवण वदी-1	सब जगह	8 प्रहर
43. चंद्र ग्रहण में	"	8 प्रहर, 12 प्रहर
44. सूर्य ग्रहण में	"	16 प्रहर, 12 प्रहर, 4 प्रहर

चंद्र ग्रहण में उगता चंद्र ग्रसित हुआ हो तो चार प्रहर दिन रात्रि । अहोरात्र आगे, इस प्रकार 12 प्रहर ! रात्रि के अंत में ग्रसित हुआ हो तो 8 प्रहर आगे तथा बीच में ग्रसित हुआ हो तो 8 प्रहर । उगते सूर्य का ही ग्रहण हुआ हो तो चार प्रहर दिन के, चार प्रहर रात्रि के तथा एक अहोरात्र । अस्त होते हुए ग्रसित हुआ हो तो कुल 12 प्रहर तथा मध्याह्न में ग्रसित हुआ हो तो रात्रि के चार प्रहर ।

इति निर्जरा तत्त्वं संपूर्णम् ॥

बंध-तत्त्व-8

अब आठवां बंध तत्त्व लिखते हैं
सर्व प्रथम सर्व बंध और देश बंध का स्वरूप लिखते हैं—

(129) औदारिक शरीर के सर्व बंध-देश की स्थिति

	सर्व बंध स्थिति	देश बंध स्थिति
समुच्चय से औदारिक शरीर के प्रयोगबंध की स्थिति	1 समय	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट से एक समय न्यून तीम पल्योपम
एकेन्द्रिय औदारिक	" "	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-एक समय न्यून 22000 वर्ष
पृथ्वी के औदारिक	" "	जघन्य-तीन समय न्यून क्षुल्लक भव उत्कृष्ट-एक समय न्यून 22000 वर्ष
अपकाय, तेऊकाय, वनस्पति, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय तथा चउरिन्द्रिय औदारिक	" "	जघन्य-तीन समय न्यून क्षुल्लक भव, उत्कृष्ट-जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है उत्कृष्ट सो 1 समय न्यून कहणी
वायुकाय औदारिक शरीर प्रयोगबंध	" "	जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-एक समय न्यून 3000 वर्ष
तिर्यच पंचेन्द्रिय मनुष्य औदारिक शरीर	" "	जघन्य-एक समय, उत्कृष्ट-तीन समय न्यून 3 पल्योपम

(130) औदारिक शरीर के सर्व बंध-देश का अंतर

2	सर्व बंध का अन्तर	देश बंध का अन्तर
समुच्चय औदारिक	जघन्य से-तीन समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से-एक समय अधिक 33 सागरोपम व पूर्व कोटि वर्ष सागरोपम	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट से तीन समय अधिक 33
समुच्चय एकेन्द्रिय औदारिक	जघन्य से तीन समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से एक समय अधिक 22000 वर्ष	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-एक अन्तर्मुहूर्त
पृथ्वीकाय औदारिक	जघन्य से तीन समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से एक समय अधिक 22000 वर्ष	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-3 समय
अप्, तेउ, वसन्पति बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय औदारिक	जघन्य से तीन समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से जिसती जितनी स्थिति है, उससे 1 समय अधिक	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-3 समय

वायुकाय औदारिक	जघन्य से दो समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से एक समय अधिक 3000 वर्ष	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-एक अन्तर्मुहूर्त
पंचेन्द्रिय तिर्यच मनुष्य	जघन्य से तीन समय न्यून एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से एक समय छोड़कर पूर्व करोड़ वर्ष	जघन्य-एक समय उत्कृष्ट-एक अन्तर्मुहूर्त

**(131) जीव एकेन्द्रिय को छोड़कर नोएकेन्द्रिय होकर पुनः
एकेन्द्रिय हो तब सर्वबंध-देशबंध का अंतर**

3	सर्व बंधान्तर	देश-बंधान्तर
एकेन्द्रिय, नोएकेन्द्रिय होकर पुनः एकेन्द्रिय बने ।	जघन्य से तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव । उत्कृष्ट से संख्यात वर्ष अधिक 2000 सागरोपम	जघन्य के एक समय अधिक एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से संख्यात वर्ष अधिक 2000 सागरोपम
पृथ्वी, अप् तेउ, वायु, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय, मनुष्य	जघन्य से तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव । उत्कृष्ट से संख्यात पुद्ग परावर्त वनस्पतिकाल	जघन्य के एक समय अधिक एक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से असंख्य पुद्ग परावर्त वनस्पतिकाल
वनस्पति	जघन्य से तीन समय न्यून दो क्षुल्लक भव । उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल	जघन्य के एक समय अधिक तक क्षुल्लक भव उत्कृष्ट से असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी

(132) औदारिक शरीर के सर्वबंध-देशबंध व अबंधक का अल्प बहुत्व

देश बंध	सर्व बंध	अबंधक
असंख्य गुणा (3)	सबसे थोड़ा (1)	विशेषाधिक (2)

(133) वैक्रिय शरीर के सर्वबंध-देशबंध की स्थिति

1	सर्व बंध की स्थिति	देश बंध की स्थिति
समुच्चय वैक्रिय	जघन्य १ समय उत्कृष्ट – दो समय	जघन्य 1 समय उत्कृष्ट एक समय न्यून 33 सागरोपम
वायु वैक्रिय	जघन्य 1 समय	जघन्य-1 समय उत्कृष्ट-एक अन्तर्मुहूर्त
रत्नप्रभा वैक्रिय	" "	जघन्य-तीन समय न्यून 10000 वर्ष उत्कृष्ट-1 समय न्यून एक सागरोपम

शेष 6 नरक, 10 भवनपति, व्यंतर ज्योतिष वैमानिक	" "	जघन्य-जिसकी जितनी स्थिति है उसमें तीन समय न्यून । उत्कृष्ट-उत्कृष्ट स्थिति में एक समय न्यून
तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य	" "	जघन्य-1 समय उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त

(134) वैक्रिय शरीर प्रयोग बंधांतर

2	सर्व-बंधांतर	देश-बंधांतर
ओघ वैक्रिय	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट-वनस्पति काल	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट-वनस्पति काल
वायु वैक्रिय	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पल्योपम का असंख्यातावां भाग	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पल्योपम का असंख्यातावां भाग
पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पृथक् पूर्व कोटि वर्ष	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पृथक् पूर्व कोटि वर्ष

(135) एक बार जीव वायुकाय होकर नो वायुकाय हो और फिर वायुकाय हो उसका अंतर

3	सर्व-बंधांतर	देश-बंधांतर
वायु, पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-वनस्पति काल	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-वनस्पति काल

(136) वायु, मनुष्य, तिर्यच पंचेन्द्रिय वैक्रिय-कोष्टक

3	सर्व-बंधांतर	देश-बंधांतर
रत्नप्रभा पुनः रत्नप्रभा	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त अधिक 10000 वर्ष उत्कृष्ट-वनस्पति काल	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-वनस्पति काल
शेष 6 नरक, भवनपति, आदि यावत् सहस्रार	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त अधिक जिसकी जितनी जघन्य स्थिति उत्कृष्ट-वनस्पति काल	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-वनस्पति काल
आनत से ग्रैवेयक पर्यंत	जघन्य से पृथक् वर्ष अधिक, जिसकी जितनी जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से वनस्पति काल	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-वनस्पति काल
चार अनुत्तर वैमानिक	जघन्य से पृथक् वर्ष अधिक 31 सागरोपम उत्कृष्ट-संख्यात सागरोपम	जघन्य-पृथक् वर्ष अधिक उत्कृष्ट-संख्यात सागरोपम

(137) वैक्रिय के सर्वबंधादि संबंधी अल्प बहुत्व

अल्प बहुत्व	देश बंध	सर्व बंध	अबंधक
0	असंख्य गुणा 2	1 स्तोक	अनंत गुणा 3

(138) आहारक शरीर के प्रयोग बंध की स्थिति

1	सर्व-बंध स्थिति	देश-बंध स्थिति
आहारक मनुष्य	जघन्य-1 समय	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त

(139) अंतर

2	सर्व-बंधांतर	देश बंधांतर
आहारक मनुष्य	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-देशोन अर्द्ध पुद्ग परावर्त	जघन्य-अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-देशोन अर्द्धपुद्ग परावर्त

(140) अल्प बहुत्व

आहारक का अल्प बहुत्व	देश बंध	सर्व बंध	अबंधक
	संख्यात गुणा (2)	सबसे थोड़े (1)	अनंत गुणे (3)

(141) तैजस शरीर

1	देश बंध स्थिति	
तैजस शरीर	अनादि अपर्यवसित अनादि सपर्यवसित	
2	देश बंधांतर	
तैजस	दोनों का अंतर नहीं	
3	देश	अबंधक
तैजस शरीर	अनंत गुणा (2)	सबसे कम (1)
अल्प बहुत्व	0	

(142) कर्मण शरीर

1	देश बंध स्थिति	
कर्मण शरीर स्थिति	अनादि अपर्यवसित अनादि सपर्यवसित	
2	देश बंधांतर	
कर्मण	दोनों का अंतर नहीं	
3	देश बंध	अबंधक
7 कर्म अल्प बहुत्व	अनंत गुणा (2)	सबसे कम (1)
आयु अल्प बहुत्व	1 स्तोक	संख्यात गुणा

(143) आपस में नियम भजने का कोष्ठक

1	औदारिक 1	वैक्रिय 2	आहारक 2	तैजस 1	कर्मण
औदारिक सर्व देश 3	0	नास्ति	नास्ति	भजना	भजना
वैक्रिय सर्व 1 देश 2	नास्ति	नियमा	"	"	"
आहारक सर्व 1 देश 2	"	नास्ति	0	"	"
तैजस देश बंध 1	नियमा	नियमा	नियमा	0	"
कर्मण देश बंध 1	"	"	"	नियमा	"

(144) अल्प बहुत्व कोष्ठक

अल्प बहुत्व	देशबंध	सर्व बंध	अबंधक
औदारिक	असंख्य 8	अनंत 6	विशेषाधिक 7
वैक्रिय	" 4	असंख्य 3	" 10
आहारक	संख्यात 2	स्तोक 1	" 11
तैजस	विशेषाधिक 9	0	अनंत 5
कर्मण	तुल्य "	0	तुल्य "

(145) परस्पर अल्प बहुत्व

औदारिक	1 स्तोक	3 असंख्य	2 विशेषाधिक
वैक्रिय	"	2 "	3 अनंत
आहारक	"	2 संख्येय	3 असंख्य
तैजस	0	2 अनंत	1 स्तोक
कार्मण	0	2 "	" "
आयु कर्म	0	1 स्तोक	2 संख्येय

भगवती सूत्र के शतक 8, उद्देश 9 से सर्वबंध व देशबंध का अधिकार जान लें और विशेष स्वरूप टीका से समझ लें ।

टीका में स्वरूप कथन –

जीवा य लेस्स पक्खी दिट्ठी अन्नाण नाण सन्नाओ ।

वेद कसाय – उवओग – जोग एगारस जीवट्ठाणा ॥१॥♦

(भगवती शतक 26, उद्देश 1)

(1) बंधी बंधइ बंधिस्सइ (2) बंधी बंधइ न बंधिस्सइ (3) बंधी न बंधइ बंधिस्सइ
(4) बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ—ये चार भंग समझने चाहिए ।

(146) पाप कर्म आदि आश्रित भंग

जीव मनुष्य 1, 2, 3, 4	पाप कर्म 1 ज्ञानावरणीय 2 दर्शनावरणीय 3 मोहनीय 4 नाम 5 गोत्र 6 अंतराय आश्रित
1 3 2 4 भंग	1 सलेशी 2 शुक्ल लेशी 3 शुक्ल पक्षी 4 सम्यग् 5-9 सज्ञान आदि यावत मनः पर्यव ज्ञानी 10 नो संज्ञोपयुक्त 11 अवेदी 12 सजोगी 13 मन 14 वाक् 15 काया 16 साकारोपयुक्त 17 अनाकारोपयुक्त
1	1-5 कृष्ण आदि लेश्या 6 कृष्ण पक्षी 7 मिथ्या दृष्टि 8 मिश्र दृष्टि 9-12 चार संज्ञा, 13 –
2	16 चार अज्ञान 17-20 चार सवेद आदि, 21 क्रोध 22 मान, 23 माया
4	1 अलेशी 2 केवली 3 अयोगी
3	1 अकषायी – इस प्रकार 46 बोल

♦ छाया – जीवाश्च लेश्याः पक्षी दृष्टिज्ञान ज्ञानसंज्ञाः ।

वेदः कषाय उपयोगो योग एकादश जीव स्थानानि ॥

(147) वेदनीय आश्रित भंग

जीव मनुष्य	वेदनीय कर्म आश्रित बंध भंग 124
1, 2, 4	1 सलेशी 2 शुक्ल लेशी 3 शुक्ल पक्षी 4 सम्यग् दृष्टि 5 ज्ञानी 6 केवली ज्ञानी 7 नो संज्ञोपयुक्त 8 अवेदी 9 अकषायी 10 साकारोपयुक्त 11 अनाकारोपयुक्त
4 1, 2	1 अलेशी 2 अयोगी 1-5 कृष्ण आदि 5 लेश्याः 6 कृष्ण पक्षी 7 मिथ्या दृष्टि 8 मिश्र दृष्टि 4-12 चार अज्ञान आदि 14-16 चार संज्ञा 4-20 चार ज्ञान 4-24 सवेद आदि 5-29 सकषाय आदि 4-33 सयोग आदि इस प्रकार कुल 46 बोल हुए ।

(148) आयु आश्रित भंग

जीव मनुष्य	आयु कर्म आश्रित बंध भंग 1234
1 3 2 4	सलेशी आदि 7 शुक्ल पक्षी 8 मिथ्या दृष्टि 9 अज्ञान आदि चार 12, संज्ञा चार 17, सवेद आदि चार 21, सकषाय आदि पांच 26, सयोग आदि चार 30, साकारोपरयुक्त 31, अनाकारोपरयुक्त 32
1, 2, 3	मनः पर्यव 1, नो संज्ञोपयुक्त 2
4	अलेशी 1, केवली 2, अयोगी 3
1, 3	कृष्ण पक्षी
3 4	मिश्र दृष्टि 1, अवेदी 2, अकषायी 3 इस प्रकार कुल बोल 41 हुए ।

1 परंपरोववन्नगा 2 परं. गाढा 3 परंपरो आहारगा 4 परं. पज्जत्तगा 5 चरम — ये पांच उद्देशा जीव-मनुष्य के प्रथम की तरह समझ लेने चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि चरम मनुष्य को आयुष्य के बंध आश्रित एक चौथा भंग होता है और भंग नहीं । यह अर्थ श्रीमद् अभयदेवसूरिजी ने भगवतीजी की टीका में लिखा है, यदि चौथा भंग आदि सभी भंग हों तो चरमत्व कैसे ? इसलिए चौथा भंग होता है ।

(149) 1 पापकर्म, 2 मोह, 3 ज्ञाना, 4 दर्शना, 5 वेदनीय, 6 नाम, 7 गोत्र, 8 अंतराय आश्रित

34	36	26	25	30	39	36	33	35
नरक	भवनपति	1 पृथ्वी 2 अप् 3 वनस्पति	1 तेज. 2 वायु.	विकलेन्द्रिय	तिर्यच	व्यंतर	ज्योतिषी	वैमानिक
1-2	1-2	1-2	1-2	1-2	1-2	1-2	1-2	1-2

(150) आयु आश्रित कोष्टक

कृष्ण लेशी	1, 3 भंग	0	तेजोलेख्या में तीसरा भंग 3, शेष 25	समदिद्वी	4 ज्ञानी में 3 भंग	सम. 1 ज्ञानी में 4 1, 3, 4	0	0	0
कृष्ण पक्षी	1,3	1,3	1,3	1,3	1,3	1,3	1,3	1,3	1,3
मिश्र	3,4	3,4	0	0	0	3,4	3,4	3,4	3,4
शेष बोल	1,2,3,4	1,2,3,4	1,2,3,4	1,2,3,4	3	1,2,3,4	1,2,3,4	1,2,3,4	1,2,3,4

मनुष्य अनंतरो. में नहीं	1 अलेशी 2 मनःपर्यव 3 केवल 4 नो संज्ञोपयुक्त 5 अवेदी 6 अकषायी 7 अयोगी-ये 7 नहीं ऊपर के 7 मूल से नहीं	मिश्र दृष्टि नहीं	मन-वचन योग नहीं	विभंग नहीं	अवधि है
नरक, देव	" "	0	0	है	है
तिर्यच	" "	0	0	0	0
विकले- न्द्रिय	" "	मूल में नहीं	वचन नहीं	मूल में नहीं	मूल में नहीं

नारक आदि 24 दंडक में आयु छोड़कर शेष ज्ञानावरण । पापकर्म आदि 8 बोल आश्रित जिसमें जितने बोल लेख्या आदि हो, उन सब में 1-2 भंग जानने चाहिये ।

आयु आश्रित 23 दंडक में एक तीसरा भंग, मनुष्य में आयु आश्रित 3,4 भंग अनंतरोवन्नागा, 2 अनंतरोगाढा 3 अनंतर आहारगा 4 अनंतर पज्जत्तगा ये चारु उद्देश एक समान हैं । इस प्रकार कुल 10 उद्देश हुए ।

अचरम का ग्यारहवां उद्देश – मनुष्य को छोड़कर 23 दंडक में आयु छोड़कर पाप कर्म आदि 8 आश्रित सर्व बोल में 1-2 भंग होते हैं ।

आयु आश्रित 1 नरक 2 तिर्यच 3 देव में मिश्र दृष्टि में तीसरा भंग ।

1 पृथ्वी 2 अप् 3 वनस्पति तेजो लेख्या वाले में तीसरा भंग ।

विकलेन्द्रिय में सम्यक्त्य 1 ज्ञानादि 3 इन चार में तीसरा भंग ।

मनुष्य अचरम में अलेश्यी 1, अकेवली 2, अयोगी 3 – ये तीन नहीं ।

शेष बोल 43 में जहां चौथा भंग है, वह नहीं कहना और सर्व प्रथम उद्देश की तरह समझना चाहिए ।

(151) अतीतादि आश्रित भंग

भंग	अतीत	वर्तमान	अनागत
1	बंध	बंध	बंध
2	"		न
3	"	न	बंध
4	"	न	न
5	न	बंध	बंध
भंग	अतीत	वर्तमान	अनागत
6	न	बंध	न
7	न	न	बंध
8	न	न	न

(152) भव आश्रित भंग

अनेक भव की अपेक्षा से	एक भव की अपेक्षा से
1. श्रेणी के गिरकर पुनः ग्यारहवें	1. कुछ समय में उपशांत
2. पूर्व भव में 11 वें, वर्तमान में क्षीण मोह	2. संयोगी के अंतिम समय में
3. पूर्व भव में 11 वां, वर्तमान नहीं, भविष्य में 11 वां होगा	3. 11 वें से गिरकर फिर श्रेणी नहीं पावें
4. सिद्ध	4. 14 वें गुणस्थान
5. उपशांत पहले ही पाया है	5. उपशांत मोह के प्रथम समय में
6. क्षपक श्रेणी चढ़ा हो, उपशम कभी नहीं	60
7. भव्य मोक्षार्ह	710 वें गुणस्थान वाला भव्य
8. अभव्य	8. मिथ्या दृष्टि या अभव्य

(153) संपराय के बंध भंग

SSS	अभव्य या भव्य		SIS	उपशांत मोह गुणस्थान
SS I	भव्य		S I I S	क्षीणमोह आदि

ये दोनों कोष्ठक भगवती में हैं ।

(154) कर्म समुच्चय जीव मनुष्य आश्रित

कर्म	बंध-बंध 1	बंध-वेदन 2	वेदन-बंध 3	वेदन-वेदन 4
1	8,7,6	8	8,7,6	8,7
2	8,7,6	8	8,7,6	8,7
3	8,7,6,1	8,7,4	8,7,6,1	8,7,6
4	8,7	9	8,7,6	8
5	8	8	8,7,6,1	8,7,4
6	8,7,6	8	8,7,6,1	8,7,6
7	8,7,6	8	8,7,6,1	8,7,4
8	8,7,6	8	8,7,6,1	8,7

(155) शेष 23 दंडक आश्रित 4 भंग

1	8,7	8	8,7	8
2	8,7	8	8,7	8
3	8,7	8	8,7	8
4	8,7	8	8,7	8
5	8	8	8,7	8
6	8,7	8	8,7	8
7	8,7	8	8,7	8
8	8,7	8	8,7	8

(156) आयु कोष्टक (श्री प्रज्ञापना पद)

द्वार	देव नरक युगल	निरुपक्रमी	सोपक्रमी	संख्या
अबंध काल	6 मास न्यून स्व स्व भव स्थिति	अपने अपने आयुष्य का 2/3	जघन्य 2/3 उत्कृष्ट-अन्तर्मुहूर्त न्यून भव	1
बंध काल	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	2
आबाधा	६ मास	अपने आयु का 1/3	ज. अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट-पूर्व करोड़ का 1/3	3

सोपक्रम आयु टूटने के 7 कारण :-

1. **अध्यवसाय** – भय आदि सोमिल ब्राह्मण की तरह ।
2. **निमित्त** – शस्त्र आदि से मृत्यु पाते हैं ।
3. **आहार** – अजीर्ण आदि से मृत्यु पाते हैं ।
4. **वेदना** – शूल आदि की पीडा से मृत्यु पाते हैं ।
5. **पराघात** – ठोकर आदि खाकर गिर जाना ।

6. स्पर्श – सर्प आदि के दंश से ।

7. आनप्राण – श्वासोच्छ्वास रोकना ।

इन सात प्रकारों से सोपक्रमी का आयु टूटता है, निरुपक्रमी का नहीं । यह कोष्ठक स्थानांग व भगवती से जानना चाहिये ।

(157) आठ कर्म आश्रित 50 बोल (भगवती सूत्र)

		ज्ञाना० व दर्शना० अंतराय	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम-गोत्र
1-3	स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा
4	अवेदी संयत	भ.	भ.	भ.	0	भ.
5	संयती	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
6	असंयती	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.
7	श्रावक संयतासंयत	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा	नियमा
8	नो संयत, नो असंयत नो संयतासंयत	0	0	0	0	0
9	सम्यत् दृष्टि	भजना	भजना	भजना	भजना	भजना
10	मिथ्या दृष्टि	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.
11	मिश्रदृष्टि	नि.	नि.	नि.	0	नि.
12	संज्ञी	भ.	नि.	नि.	भ.	नि.
13	असंज्ञी	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.
14	न संज्ञी न असंज्ञी	0	0	0	0	0
15	भव्य	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
16	अभव्य	नि.	नि.	नि.	भ.	भ.
17	न भव्य न अभव्य	0	0	0	0	0
18-20	चक्षु आदि तीन दर्शन	भ.	नि.	भ.	भ.	भ.
21	केवल दर्शन	0	भ.	0	0	0
22	पर्याप्ता	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
23	अपर्याप्ता	नि.	नि.	नि.		नि.
24	न पर्याप्तान अपर्याप्ता	0	0	0	0	0
25	भाषक	भ.	नि.	भ.	भ.	भ.
26	अभाषक	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
27	परत संसारी	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
28	अपरत संसारी	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.

29	न परत न अपरत	0	0	0	0	0
30-33	मति आदि चार ज्ञान	भ.	नि.	भ.	भ.	भ.
34	केवल ज्ञान	0	भ.			
35-37	मति आदि तीन अज्ञान	नि.	नि.	नि.	भ.	नि.
38-40	मन, वचन, काया, योग	भ.	नि.	भ.	भ.	भ.
41	अयोगी	0	0	0	0	0
42-43	साकार अनाकार उपयोग	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
44	आहारक	भ.	नि.	भ.	भ.	भ.
45	अणाहारी	भ.	भ.	भ.	0	भ.
46	सूक्ष्म	नि.	नि.	नि.	भ.	भ.
47	बादर	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.
48	न सूक्ष्म न बादर	0	0	0	0	0
49-50	चरम-अचरम	भ.	भ.	भ.	भ.	भ.

वेय संजय दिट्ठी सन्नी भविए दंसण पज्जत्त ।

भासय, पस्ति नाण जोगो इ उवओग आहारग सुहम्म चरम बद्धे य अप्पाबहु । ♦

मार्गणा ऊपर बंध द्वार—

धम्मा आदि तीन नरक, गुणस्थान—चार, बंध-प्रकृति 101 है । 1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर, 3 आतप, 4 सूक्ष्म, 5 अपर्याप्त, 6 साधारण, 7-9 विकलत्रय, 10-12 नरकत्रिक, 13-15 देवत्रिक, 16-17 वैक्रिय द्विक, 18-19 आहारक द्विक—ये 19 प्रकृतियां नहीं हैं ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	100	तीर्थंकर नाम कर्म घटती है और मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसक वेद, सेवार्त-इन चार का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी आदि 25 प्रकृतियों का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्य आयु घटता है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु और तीर्थंकर नाम ये दो जुड़ती है ।

♦ छाया - वेदः संयमो दृष्टिः संज्ञी भविको दर्शनं पर्याप्तो भाषकः परीतोज्ञानं योगश्चोपयोग आहारकः सूक्ष्मश्चरमबद्धे चात्पबहुत्वम् ॥

अंजना आदि तीन (4-6) नरक-गुणस्थान-चार, प्रकृति बंध - 100 पूर्वोक्त 19 और तीर्थकर नाम कर्म ये 20 प्रकृतियां नहीं हैं ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	100	मिथ्यात्व हुंडक, नपुंसक वेद, सेवार्त-इन चार का विच्छेद ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी आदि 25 प्रकृतियों का विच्छेद । (सास्वादन गुण स्थान की तरह)
3	मिश्र	70	मनुष्य आयु घटती है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु जुड़ती है ।

माघवी 7वीं नरक-गुणस्थान 4, बंध प्रकृति 19, पूर्वोक्त 20 व मनुष्यायु नहीं है ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	96	मनुष्यद्विक व ऊंच गोत्र ये तीन घटती है व मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसक, सेवार्त व तिर्यचायु-इन पांच का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	91	अनंतानुबंधी आदि 24 का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्य द्विक व ऊंच गोत्र जुड़ता है ।
4	अविरति	70	0 0 0

तिर्यच गति – गुणस्थान—पांच, बंध प्रकृति 117, तीर्थकर नाम कर्म व आहारक द्विक नहीं है ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	117	1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक, 4 सेवार्त, 5 एकेन्द्रिय, 6 स्थावर 6 आतप 8 सूक्ष्म 9 अपर्याप्त 10 साधारण 11-13 विकलत्रिक 14-16 नरकत्रिक-इन 16 नरकत्रिक-इन 16 का विच्छेद ।
2	सास्वादन	101	अनंतानुबंधी आदि 25 तो सास्वादन की भांति तथा 1 वज्रऋषभ 2-3 औदारिक द्विक 4-6 मनुष्यत्रिक 25 + 6 इन 31 का विच्छेद ।
3	मिश्र	69	देवायु घटती है ।
4	अविरति	70	देवायु जुड़ती है तथा अप्रत्याख्यानीय चार का विच्छेद ।
5	देश विरति	66	0

अपर्याप्त तिर्यच—गुणस्थान—तीन (1,2,4) बंधप्रकृति—111 है । 1 तीर्थकर नाम कर्म 2-3 आहारक द्विक 4-7 चार आयु तथा 8-9 नरक द्विक—ये 9 प्रकृतियां नहीं है ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	1-2 देव द्विक 3-4 वैक्रिय द्विक—ये चार घटती हैं तथा 1 मिथ्यात्व 2 हुंडक 3 नपुंसक 4 सेवार्त 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7 आतप 8 सूक्ष्म 9 अपर्याप्त 10 साधारण 11-13 विकलत्रिक—इन 13 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	1-4 अनंतानुबंधी चार, 5-7 थीणद्वित्रिक 8 दुर्भग 9 दुःस्वर 10 अनादेय 11-14 मध्य के चार संस्थान, 15-18 मध्य के चार संघयण, 19 अप्रशस्त गति 20 स्त्री वेद 21 नीच गोत्र 22-23 तिर्यच द्विक 24 उद्योत 25 वज्रऋषभ 26-27 औदारिक 28-29 मनुष्य द्विक—इन 29 का विच्छेद ।
3	अविरति		69 देव द्विक व वैक्रिय द्विक – ये चार जुड़ती है ।

तिर्यच अलब्धि पर्याप्त – गुणस्थान—1, बंध प्रकृति 109 हैं ।

1 तीर्थकर नाम कर्म 2-3 आहारक द्विक 4-6 देवत्रिक 7-8 वैक्रिय द्विक 0-11 नरकत्रिक ये 11 प्रकृतियां नहीं हैं ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	109	0

मनुष्य – गुणस्थान—14, बंध प्रकृति 120, आदि के चार गुणस्थान निम्नोक्त कोष्टक से वे शेष 5 से 14 तक-सर्व गुणस्थान समुच्चय की तरह जान लें ।

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	117	आहारक द्विक व तीर्थकर नाम कर्म—ये तीन प्रकृतियां घटती है तथा मिथ्यात्व आदि 16 प्रकृतियों का विच्छेद मिथ्यात्व गुण स्थान रचनानुसार समझ लें ।
2	सास्वादन	101	अनंतानुबंधी आदि 25 तथा 1 वज्रऋषभनाराच, 2-3 औदारिक द्विक 4-6 मनुष्यत्रिक—इन 31 का विच्छेद ।
3	मिश्र	69	देवायु घटती है ।
4	अविरति	71	देवायु व तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

अलब्धि पर्याप्त मनुष्य—गुण स्थान 1 मिथ्यात्व, बंध प्रकृति 109, 1 तीर्थकर 2-3 आहारक द्विक 4-6 देवत्रिक 7-9 नरकत्रिक 10-11 वैक्रियद्विक—ये 11 नहीं हैं ।

भवन पति, व्यंतर, ज्योतिषी तथा ये तीन देवियां और वैमानिक देवी—

गुणस्थान—चार, बंध प्रकृति—103 है ।

1-3 सूक्ष्मत्रिक, 4-6 विकलत्रिक 7-9 नरकत्रिक 10-12 देवत्रिक 13-14 वैक्रियद्विक 15-16 आहारक द्विक 17 प्रकृतियां नहीं है—

गुणस्थान क्रम	गुणस्थान नाम	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	103	1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक वेद, 4 सेवार्त 5 एकेन्द्रिय, 6 स्थावर 7 आतप-इन सात का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी आदि 25 का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्या आयु घटती है ।
4	अविरति	75	मनुष्य आयु जुड़ती है ।

अपर्याप्ति रचना में यथा संभवित गुणस्थान । उसमें मनुष्य आयु व तिर्यच आयु नहीं है ।

सौधर्म—ईशान—गुणस्थान—चार, बंध प्रकृति 164 है । 1-3 सूक्ष्मत्रिक, 4-6 विकलत्रिक 7-9 नरकत्रिक, 10-12 देवत्रिक 13-14 वैक्रिय द्विक 15-16 आहारक द्विक — ये 16 प्रकृतियां नहीं है ।

बंध—भवनपति की तरह समझ लें, सिर्फ चौथे गुणस्थान में तीर्थकर नाम कर्म जोड़ दें ।

अपर्याप्त — गुणस्थान—तीन 1, 2, 4 बंध 102 का होता है । पूर्वोक्त 16 और मनुष्य आयु तथा तिर्यच आयु ये दो अर्थात् कुल 18 नहीं होती हैं । पहले गुणस्थान में 101, दूसरे में 94 व चौथे में 71 ऊपर की समझ लें ।

सनत् कुमार आदि 6 कल्प —

गुणस्थान-चार, बंध प्रकृति—101 है । पूर्वोक्त सौधर्म—ईशान वाली 16 तथा 1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर तथा 3 आतप—ये 19 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	100	तीर्थकर घटती है । 1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक 3 सेवार्त इन चार का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी आदि 25 का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्या आयु घटती है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु व तीर्थकर जुड़ती है ।

अपर्याप्त — गुणस्थान 3, (1, 2, 4)

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	96	तीर्थकर घटती है, मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसक वेद तथा से सेवार्त संघयण इन चार का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	92	1-4 अनंतानुबंधी, 5-7 स्त्यानगृद्धित्रिक, 8 दुर्भग 9 दुःस्वर, 10 अनादेय, 11-14 मध्य के चार संस्थान, 15-18 मध्य के चार संहनन, 11 अप्रशस्त गति, 20 स्त्री वेद तथा 21 नीच गोत्र का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	70	मनुष्य आयु घटती है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु व तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

आनत आदि ग्रैवेयक पर्यंत—गुणस्थान—चार, बंध प्रकृति 97 है ।

पूर्वोक्त सनतकुमार आदि की 19 तथा तिर्यचत्रिक, उद्योत, ये 23 नहीं होती हैं । तीसरे गुणस्थान की रचना बहुश्रुत से समझ लें ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	96	तीर्थकर घटती है, मिथ्यात्व, हुंडक, नपुंसक वेद तथा से सेवार्त संघयण इन चार का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	92	1-4 अनंतानुबंधी, 5-7 स्त्यानगृद्धित्रिक, 8 दुर्भग 9 दुःस्वर, 10 अनादेय, 11-14 मध्य के चार संस्थान, 15-18 मध्य के चार संहनन, 11 अप्रशस्त गति, 20 स्त्री वेद तथा 21 नीच गोत्र का आयु घटती है ।
3	मिश्र	70	मनुष्या आयु घटती है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु व तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

अपर्याप्ति रचना — गुणस्थान तीन, 1, 2, व 4 बंध प्रकृति 16 है ।

पूर्वोक्त 23 और मनुष्य आयु नहीं है । पहले गुणस्थानक में 95 दूसरे में 91 तथा चौथे में 71 का बंध है ।

पांच अनुत्तर — गुणस्थान—एक (चौथा) है, बंध प्रकृति 72 है । आनत आदि की पूर्वोक्त 23 तथा 1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक 3 नपुंसक 4 सेवार्त संघयण 5-8 अनंतानुबंधी कषाय, 9-11 स्त्यानगृद्धि, 12 दुर्भग 13 दुःस्वर 14 अनादेय 15-18 मध्य के चार संस्थान, 19-22 मध्य के चार संघयण, 23 अप्रशस्त विहायोगति, 24 स्त्रीवेद 25 नीच गोत्र—इस प्रकार $23 + 25 = 48$ प्रकृतियां नहीं हैं ।

अपर्याप्त रचना — एक मनुष्य आयु नहीं है, शेष पूर्वोक्त की तरह समझ लें ।

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-अपर्याप्त— इनके दो गुणस्थान हैं—1,2 बंध प्रकृति 107 है ।

1-2 आहारक द्विक, 3 तीर्थकर 4-6 देवत्रिक 7-8-9 नरकत्रिक 10-11 वैक्रिय द्विक, 12 मनुष्य आयु, 13 तिर्यच आयु — ये 23 प्रकृतियां नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक वेद, 4 सेवार्त संघयण, 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर, 7 आतप, 8 सूक्ष्म, 9 अपर्याप्त, 10 साधारण 11-13 विकलत्रिक इन तेरह का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	0 0 0

एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय त्रिक-पर्याप्त – गुणस्थान 1 है, बंध प्रकृति 109 है । पूर्वोक्त 107 तथा मनुष्य आयु व तिर्यच आयु ये दो बढ़ती हैं ।

एकेन्द्रिय०विकलेन्द्रिय त्रिक-अलब्धि पर्याप्त – गुणस्थान 1, बंध-109 । पंचेन्द्रिय की रचना, गुणस्थान, (सामान्य) की तरह बंध प्रकृति समझ लें ।

पृथ्वी, अप्, वनस्पति अपर्याप्त रचान – एकेन्द्रिय, विकलत्रय पर्याप्त की तरह समझ लें ।

तेज-वायु रचना – गुण स्थान 1 है, बंध प्रकृति 105 हैं ।

1-2 आहारक द्विक, 3 तीर्थकर 4-6 देवत्रिक, 7-8-9 नरकत्रिक, 10-11 वैक्रिय द्विक, 12 उच्च गोत्र 13-15 मनुष्यत्रिक-ये 15 प्रकृतियां नहीं हैं ।

त्रस काय रचना – मनुष्य रचना गुणस्थान की तरह समझ लें ।

चार मनोयोग चार वचन योग रचना – मनुष्य रचना गुणस्थान की तरह समझ लें ।

दो औदारिक योग रचना – गुणस्थान 1 से 14, बंध प्रकृति 120 हैं ।

मनुष्य रचना गुणस्थान की तरह सब समझ लेना चाहिये ।

औदारिक मिश्र योगी रचना – गुणस्थान 4 (1,2,4,13) बंध प्रकृति 114 हैं । 1 देवायु, 2-4 नरकत्रिक 5-6 आहारक द्विक, इन छ का बंध नहीं है ।

यहां कार्मण से मिला हुआ मिश्र समझना चाहिये ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	109	1-2 वैक्रिय द्विक 3-4 देव द्विक व 5 तीर्थकर घटती है, 1 मिथ्यात्व 2 हुंडक 3 नपुंसक 4 सेवार्त 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7 सातप 8-10 सूक्ष्मत्रिक 11-13 विकलत्रिक 14 मनुष्य आयु तथा 15 तिर्यचायु का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी आदि 29 का विच्छेद होता है । तिर्यच अर्याप्त रचना सास्वादन गुणस्थान की तरह विस्तार से समझ लेना चाहिये ।
4	अविरति	70	1-2 वैक्रिय द्विक 3-4 देव द्विक व 5 तीर्थकर जुड़ती है । 1-4
			अप्रत्याख्यान कषाय, 5-8 प्रत्याख्यान कषाय आठ की 34, छ
			की 6, आहाराकद्विक 2 रहित नवम की 5, दस की 16, इस प्रकार
			61 का विच्छेद हुआ ।
13	स	1	0 0 0

देवगति वैक्रिय मिश्र योग रचना – गुणस्थान 3 (1,2,4) बंध प्रकृति 102 है । 1-3 सूक्ष्मत्रिक 4-6 विकलत्रिक 7-9 नरकत्रिक 10-12 देवत्रिक 13-14 वैक्रिय द्विक 15-16 आहारक द्विक 17 तिर्यचायु 18 मनुष्य आयु का बंध नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	101	तीर्थकर घटती है, मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक 4 सेवार्त 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर और 7 आतप का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी से उद्योग तक की 24 का विच्छेद ।
4	अविरति	71	तीर्थकर नाम की प्रकृति जुडती है ।

देवगति वैक्रिय रचना – गुणस्थान 1 से 4, बंध प्रकृति 104 है ।

पूर्वोक्त सूक्ष्म आदि आहारक द्विक पर्यंत 16 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	103	तीर्थकर घटती है, 1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक 4 सेवार्त 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर और 7 आतप का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी उद्योग तक आदि 24 का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्य आयु जुडती है ।
4	अविरति	72	मनुष्य आयु व तीर्थकर जुडती है ।

नरक गति वैक्रिय मिश्र रचना – गुणस्थान 2 (1,4) बंध प्रकृति 99 हैं । 1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर, 3 आतप 4-6 सूक्ष्मत्रिक, 7-9 विकलत्रिक 10-12 नरकत्रिक 13-15 देवत्रिक 16-17 वैक्रियद्विक 18-19 आहारक द्विक, 20 मनुष्य आयु तथा 21 तिर्यच आयु इन 21 का बंध नहीं होता है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	18	तीर्थकर नाम कर्म घटती है, 1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक 4 सेवार्त तथा अनंतानुबंधी आदि 4, इस प्रकार 28 का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	71	तीर्थकर नाम कर्म जुडती है ।

नरक गति वैक्रिय मिश्र रचना – गुणस्थान 1 से 4, बंध प्रकृति 101 है ।

पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि आहारक द्विक पर्यंत 19 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	100	तीर्थकर नाम कर्म घटती है, 1 मिथ्यात्व, 2 हुंडक, 3 नपुंसक तथा 4 सेवार्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	96	अनंतानुबंधी आदि 25 का विच्छेद ।
3	मिश्र	70	मनुष्य आयु जुडती है ।
4	अविरति	72	तीर्थकर आयु व तीर्थकर जुडती है ।

आहारक काय योग तथा आहारक मिश्र रचना – गुणस्थान 1 (प्रमत्त) बंध प्रकृति 63 हैं ।

1 मिथ्यात्व 2 हुंडक 3 सेवार्त 4 एकेन्द्रिय 5 स्थावर 6 आतप 7-9 सूक्ष्मत्रिक 10-12 विकलत्रिक 13-15 नरकत्रिक 16-11 अनंतानुबंधी चार 20-22 थीणद्वित्रिक 23 दुर्भग 24 दुःस्वर 25 अनादेय 26-29 मध्य के चार संस्थान 30-33 मध्य के चार संघयण , 34 अप्रशस्त गति 35 स्त्री वेद 36 नीचगोत्र 37-38 तिर्यच द्विक 39 उद्योत 40 तिर्यच आयु 41-44 प्रत्याख्यान चार 45 वज्रऋषभ 46-47 औदारिक द्विक 48-49 मनुष्य द्विक 50 मनुष्य आयु 51-54 प्रत्याख्यान चार 55-56 आहारक द्विक—इन 57, बंध नहीं हैं ।

पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि आहारक द्विक पर्याप्त 19 नहीं है ।

कर्मण योग रचना – गुण स्थान 4, (1,2,4, 13) बंध प्रकृति 112 है । 1 देव आयु, 2 नरक आयु, 3-4 नरक द्विक, 5-6 आहारक द्विक 7 मनुष्य आयु और 8 तिर्यच आयु—ये आठ नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	1-2 देव द्विक, 3-4 वैक्रिय द्विक 5 तीर्थकर – ये 5 घटती है, मिथ्यात्व से विकल त्रय पर्यंत 13 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी से उद्योत पर्याप्त 24 का विच्छेद ।
4	अविरति	75	1-2 देव द्विक 3-4 वैक्रिय द्विक 5 तीर्थकर – ये 5 जुड़ती हैं । 4 अप्रत्याख्यान, 1 वज्रऋषभ, 2 औदारिक, 2 मनुष्यद्विक, प्रत्याख्यान 4, छ की 6, आहारक द्विक रहित आठवें गुणस्थानक की 34, नवम की 5, दसवें की 16 इस प्रकार 74 का विच्छेद हुआ ।
13	स	1	0 0 0

अनंतानुबंधि चतुष्क रचना गुणस्थान 2 आदि की बन्धप्रकृति 117 है । आहारकद्विक 2, तीर्थकर 1 और 3 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थानक	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	117	मिथ्यात्व आदि नरक आयु पर्यन्त 16 विच्छिन्ति ।
2	सास्वादन	101	0 0 0

अप्रत्याख्यान का बंध आदि के चार गुणस्थान, प्रत्याख्यान आदि के पांच गुणस्थान, संज्वलन क्रोध 1, मान 2, माया । नौ तक पहले के समान और संज्वलन लोभ आदि के दस गुणस्थान ।

अज्ञान रचना गुणस्थान 2 आदि के प्रथम बन्ध प्रकृति 117 और दूसरे 101 पहले के समान ।

मति, श्रुत, अवधिज्ञान रचना चौथे से लेकर बारहवें तक समुच्चय गुणस्थानक के समान । मनः पर्यवज्ञान छठे से लेकर बारहवें तक रचना समुच्चय के समान । केवलज्ञान 13वें और 14वें

के समान । सामायिक, छेदोपस्थापनीय छट्टे, सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान के समान । परिहारविशुद्धि 6 और 7वें के समान, सूक्ष्मसंपराय दसवें के समान, यथाख्यात 11, 12, 13, 14 के समान, देश संयम पांचवें के समान और असंयती आदि के चार गुणस्थान के समान ।

चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन अवधिज्ञान के समान बारहवें तक के गुणस्थान के समान । केवलदर्शन केवलज्ञान के समान ।

कृष्ण 1, नील 2, कापोत 3, लेश्या की बन्धप्रकृति 118 है । इसमें आहारकद्विक नहीं है । चौथा गुणस्थापक तीर्थकर को छोड़कर पहले 117 और अगले तीन गुणस्थान समुच्चय गुणस्थान के समान । तेजोलेश्या और गुणस्थान 7 आदि की 111 बन्ध प्रकृतियां हैं । सूक्ष्मत्रिक 3, विकलत्रिक 3, नरकत्रिक 3, और नौ नहीं हैं । तीर्थकर 1, आहारकद्विक 2, इन तीनों से रहित पहले 108 और आगे 6 गुणस्थानों में समुच्चयगुणस्थानक के समान । पद्मलेश्या और सातवें गुणस्थानक की 108 बन्ध प्रकृतियां हैं । एकेन्द्रिय 1, स्थावर 1, आतप 1, सूक्ष्मत्रिक 3, विकलत्रिक 3, नरकत्रिक 3 और 12वां नहीं है । तीर्थकर 1, आहारकद्विक 2, इन तीनों के अतिरिक्त पहले 105 अगले गुणस्थानक के समान 1 शुक्ललेश्या और 13वें गुणस्थानक आदि 104 बन्धप्रकृतियां हैं । पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि 12 और तिर्यचत्रिक 3, उद्योत 1, और 16 नहीं है । तीर्थकर 1, आहारद्विक 2 के बिना पहले 101 के आगे सभी गुणस्थानक के समान ।

भवी जीव का गुणस्थान 14वां के समान है और अभवी का प्रथम गुणस्थान समझना चाहिए ।

क्षायिक सम्यक्त्व का गुणस्थान 11वां अविरति सम्यग्दृष्टि की बन्ध प्रकृतियां, 79 हैं । मिध्यात्व आदि 36, अनंतानुबंधी आदि 25 और 41 नहीं है । आहारकद्विक से रहित चौथे 77 के आगे समुच्चयगुणस्थान द्वार के समान है । क्षयोपशम, सम्यक्त्व का गुणस्थान 4 अविरतिसम्यग् दृष्टि आदि बन्ध पूर्वोक्त 79 क्षायिक के समान । चारों गुणस्थान इसी तरह समझ लें । उपशम सम्यक्त्व का गुणस्थान 8 अविरति सम्यग्दृष्टि की बन्ध प्रकृतियां 77 है । पूर्वोक्त 41 क्षायिक युक्त और मनुष्य आयु 1, देव-आयु 1, और 43 नहीं है । पूर्वोक्त 41 क्षायिकयुक्त और मनुष्य आयु 1, देव-आयु 1, और 43 नहीं है । क्षायिक के समान बन्ध परंतु दोनों की आयु सातवें तक कम करें सास्वादन गुणस्थान के समान, मिश्र-मिश्र गुणस्थान के समान ।

संज्ञी का गुणस्थान रचना के समय 1 असंज्ञी का दूसरे गुणस्थान आदि बन्ध पहले और दूसरे 117,101 के समान ।

आहारक का गुणस्थान 13 तक, अनाहारक का गुणस्थान 4-1, 2, 4 और 13 की बन्ध प्रकृतियां 112 है । आयु 4, आहारकद्विक 2 और नरकद्विक 2 और 8 नहीं ।

क्रम	गुणस्थान	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	वेदद्विक 2, वैक्रिय द्विक 2, तीर्थकर 1 और 5 घटाएं। मिथ्यात्व आदि विकलत्रिक 3 तक 13 की विच्छिति।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी आदि उद्योत तक 24 विच्छित।
4	3	75	देवद्विक 2, वैक्रिय द्विक 2, तीर्थकर 1 और 5 मिलते हैं। अप्रत्याख्यान आदि 1, प्रत्याख्यान 4, अस्थिर आदि 6, आहारक द्विक रहित 34 अपूर्वकरण की, अनिवृत्तिकरण की 5, सूक्ष्म संपराय की 16 और 74 की विच्छिति।
13	स	1	एक साता वेदनीय रही।

इति श्री बन्ध अधिकार सम्पूर्ण ।

उदय अधिकार

नरक गति रचना – गुणस्थान 1 से 4, उदय प्रकृति 76 हैं।

1-3 स्त्यानगृद्धि त्रिक 4 पुरुषवेद 5 स्त्री वेद 6-8 नरक बिना 3 आयुष्य, 9 उच्च गोत्र 10-12 नरक बिना तीन गति, 13-16 पंचेन्द्रिय सिवाय चार जाति, 17-18 औदारिक द्विक, 19-24 छ संहनन, 25-29 हुंडक को छोड़ पांच संस्थान, 30 प्रशस्त गति 31-33 नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी, 34 स्थावर 35 सूक्ष्म 36 अपर्याप्त 37 साधारण 38 सुभग 39 सुस्वर 40 आदेय 41 यश 42 आतप 43 उद्योत 44 तीर्थकर नाम कर्म 45-46 आहारक द्विक- ये 46 प्रकृतियां उदय में नहीं हैं।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	74	मिश्र मोहनीय सम्यक्त्व मोहनीय घटती है।
2	सास्वादन	72	नरकानुपूर्वी घटती है, मिथ्यात्व का विच्छेद होता है।
3	मिश्र	69	मिश्र मोहनीय जुडती है, अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है।
4	अविरति	70	सम्यक्त्व मोहनीय व नरकानुपूर्वी जुडती है। मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है।

सामान्य तिर्यच रचना – गुणस्थान 1 से 5, उदय प्रकृति 107, 1-3 तिर्यच को छोड़ तीन आयु, 4-5 मनुष्य द्विक, 6 उच्च गोत्र 7-8 आहारक द्विक, 9-14 वैक्रिय षट्क, 15 तीर्थकर नाम कर्म ये 15 प्रकृतियां नहीं हैं।

क्रम	गुणस्थान	बंध प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	105	मिश्र मोहनीय सम्यक्त्व मोहनीय घटती है, 1 मिथ्यात्व, 2 आतप 3 सूक्ष्म 4 अपर्याप्त 5 साधारण-इन पांच का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	100	1-4 अनंतानुबंधी 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7-9 विकलत्रय इन 9 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	91	तिर्यचानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	92	सम्यक्त्व मोहनीय व तिर्यचानुपूर्वी जुडती है 1-4 अप्रत्याख्यान, 5 तिर्यचानुपूर्वी, 6 दुर्भग, 7 अनादेव, 8 अपयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	84	0 0 0

तिर्यच पंचेन्द्रिय रचना – गुणस्थान 1 से 5, उदय प्रकृति 99 है । 1-3 तिर्यच बिना तीन आयु, 4-5 मनुष्य द्विक, 6-7 आहारक द्विक 8 उच्च गोत्र 9-14 वैक्रिय षट्क, 15 तीर्थकर 16 एकेन्द्रिय 17 स्थावर 18 सूक्ष्म 19 साधारण 20 आतप 21-23 विकलत्रय—ये 23 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	97	मिश्र मोह. सम्यक्त्व मोह. घटती है, 1 मिथ्यात्व 2 अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	95	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	91	तिर्यचानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	92	सम्यक्त्व मोहनीय व तिर्यचानुपूर्वी जुडती है 1-4 अप्रत्याख्यान, 5 तिर्यचानुपूर्वी, 6 दुर्भग, 7 अनादेव, 8 अपयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	84	0 0 0

पर्याप्त तिर्यच रचना – गुणस्थान 1 से 5, उदय प्रकृति 97 है ।

पूर्वोक्त 23 तथा स्त्रीवेद व अपर्याप्त ये 25 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	95	मिश्र मोहनीय सम्यक्त्व मोहनीय घटती है, 1 मिथ्यात्व का विच्छेद ।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	90	मिश्र मोहनीय जुडती है, तिर्यचानुपूर्वी घटती है ।
4	अविरति	91	सम्यक्त्व मोहनीय व तिर्यचानुपूर्वी जुडती है, 1-4 अप्रत्याख्यान, 5 तिर्यचानुपूर्वी, 6 दुर्भग, 7 अनादेय, 8 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	83	0 0 0

अलब्धि पर्याप्त तिर्यच – गुणस्थान 1, उदय प्रकृति 71 है । 1-3 तिर्यच को छोड़ तीन आयु, 4 उच्च गोत्र, 5-6 मनुष्य द्विक, 7-8 आहारक द्विक, 9-14 वैक्रिय षट्क, 15 तीर्थकर, 16 स्थावर 17 सूक्ष्म 18 साधारण 11 आतप 20 एकेन्द्रिय 21 बेइन्द्रिय 22 तेइन्द्रिय 23 चउरिन्द्रिय 24 पराघात 25 उच्छ्वास 26 उद्योत 27 प्रशस्तगति 28 अप्रशस्त गति 29 यश 30 आदेय

31 सुभग 32-36 हुंडक छोड़ 5 संस्थान, 37-41 सेवार्त छोड़ 5 संहनन, 42 स्त्री वेद, 43 पुरुषवेद 44-46 स्त्यानगृद्धित्रिक, 47 पर्याप्त 48 सुस्वर 49 दुःस्वर 50 मिश्रमोहनीय 51 सम्यक्त्व मोहनीय-ये 52 प्रकृतियां उदय में नहीं हैं ।

सामान्य मनुष्य रचना—गुणस्थान 1 से 14 उदय प्रकृति 102 है ।

1 स्थावर 2 सूक्ष्म 3-5 तिर्यचत्रिक 6-8 नरकत्रिक 9-11 देवत्रिक 12 आतप 13 उद्योत 14 एकेन्द्रिय 15-17 विकलत्रिक 12 साधारण 19-20 वैक्रिय द्विक, ये 20 प्रकृतियां नहीं हैं—

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	97	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोहनीय 3-4 आहारक द्विक तथा 5 तीर्थंकर ये 5 घटती हैं । 1 मिथ्यात्व 2 अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	95	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद ।
3	मिश्र	91	1 मनुष्यानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोह. जुड़ती है ।
4	अविरति	92	सम्यक्त्व मोहनीय व मनुष्यानुपूर्वी जुड़ती है, अप्रत्याख्यान, चार कषाय, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेव और अपयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	84	प्रत्याख्यान चार कषाय एवं नीच गोत्र का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	81	आहारक द्विक जुड़ती है ।

सात से लेकर आगे के सभी समुच्चय गुणस्थान की तरह समझ लें ।

पर्याप्त मनुष्य रचना — गुणस्थान 1 से 14, उदय प्रकृति 100 हैं ।

पूर्वोक्त 20 तथा स्त्रीवेद व अपर्याप्त नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	95	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोहनीय 3-4 आहारक द्विक तथा 5 तीर्थंकर ये 5 घटती हैं और मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	94	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	90	मनुष्यानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोहनीय जुड़ती है ।
4	अविरति	91	सम्यक्त्व मोहनीय व मनुष्यानुपूर्वी जुड़ती है । 1-4 अप्रत्याख्यानीय कषाय, 5 मनुष्यानुपूर्वी 6 दुर्भग 7 अनादेव 8 अपयश इन आठ का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	83	प्रत्याख्यानीय चार कषाय और नीच गोत्र का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	80	आहारक द्विक जुड़ती है आहारक द्विक और स्त्यानगृद्धि त्रिक का विच्छेद होता है ।
7	अप्रमत्त	75	सम्यक्त्व मोहनीय और अंतिम तीन संघयण का विच्छेद होता है ।
8	अपूर्वकरण	71	हास्य आदि छ का विच्छेद होता है ।
9	अनिवृत्ति-करण	65	नपुंसक वेद, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया का विच्छेद होता है ।

शेष गुणस्थानों में समुच्चय गुणस्थान की तरह समझना चाहिये ।

अलब्धि पर्याप्त मनुष्य- गुणस्थान 1, उदय प्रकृति 71 हैं ।

1-5 ज्ञानावरणीय पांच, 6-9 दर्शनावरणीय चार, 10 निद्रा, 11 प्रचला, 12 मिथ्यात्व, 13-28 सोलह कषाय, 29-34 हास्य षट्क, 35 नपुंसक वेद, 36-38 मनुष्यत्रिक 39 नीचगोत्र, 40-41 औदारिक द्विक 42-43 शाता-अशाता वेदनीय, 44 हुंडक 45 सेवार्त 46 पंचेन्द्रिय 47 तैजस 48 कर्मण 49-52 वर्ण चतुष्क 53 अपर्याप्त 54 अस्थिर 55 अशुभ 56 दुर्भग 57 अनादेय 58 अयश 59 त्रस 60 बादर 61 प्रत्येक 62 स्थिर 63 शुभ 64 अगुरुलघु 65 उपघात 66 निर्माण और 67-71 पांच अंतराय ये 71 प्रकृतियां हैं ।

सामान्य देव रचना - गुणस्थान 1 से 4, उदय प्रकृति 77 हैं ।

1-5 ज्ञानावरणीय, 6-9 चार दर्शनावरणीय, 10 निद्रा 11 प्रचला 12-38 मोहनीय की 27 प्रकृतियां, 39-40, 41 देवायु 42-43 देवद्विक 44-45 वैक्रिय द्विक, 46 पंचेन्द्रिय 47 तैजस 48 कर्मण 49 समचतुरस्र 50 प्रशस्त गति 51-54 वर्ण चतुष्क, 55 अगुरुलघु 56 उपघात 57 पराघात 58 उच्छ्वास 59 निर्माण 60 अस्थिर 61 अशुभ 62-71 त्रस दशक 72 उच्च गोत्र 73-77 पांच अंतराय-ये 77 प्रकृतियां हैं, शेष 45 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	75	मिश्र मोहनीय व सम्यक्त्व मोहनीय घटती है । मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	74	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	70	देवानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोहनीय जुड़ती है, मिश्र मोहनीय एक का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	71	देवानुपूर्वी व सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति जुड़ती है ।

सौधर्म आदि 9 ग्रैवेयक रचना - गुणस्थान 1 से 4, उदय प्रकृति 76 हैं । स्त्रीवेद को छोड़ पूर्वोक्त प्रकृतियां । इसी प्रकार भवन पति आदि तीन में भी हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	74	मिश्र मोहनीय व सम्यक्त्व मोहनीय घटती है । मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	73	अनंतानुबंधी 4 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	69	देवानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोहनीय जुड़ती है और मिश्र एक का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	70	देवानुपूर्वी व सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति जुड़ती है ।

पांच अनुत्तर रचना - गुणस्थान 1 (चौथा) उदय प्रकृति 70 है ।

पूर्वोक्त सामान्य देव की 77 प्रकृति में से मिथ्यात्व, मिश्र मोहनीय, अनंतानुबंधी चार व स्त्रीवेद- ये 7 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
4	अविरति	70	0 0 0

एकेन्द्रिय रचना – गुणस्थान 2, उदय प्रकृति 80 हैं ।

ज्ञानावरणीय 5, दर्शनावरणीय 4, वेदनीय 2, मोहनीय 24, मिश्र मोहनीय 1, सम्यक्त्वमोहनीय 1, स्त्री वेद से रहित 1, तिर्यच आयु 1, तिर्यच द्विक 2, औदारिक शरीर 1, हुंडक 1, तैजस 1, कर्मण 1, वर्णचतुष्क 4, अपर्याप्त 1, अस्थिर 1, अशुभ 1, दुर्भग 1, अनादेय 1, अयश 1 बादर 1, प्रत्येक 1, स्थिर 1, शुभ 1, अगुरुलघु 1, उपघात 1, निर्माण 1, थावर 1, एकेन्द्रिय 1, पराघात 1, उच्छ्वास 1, आतप 1, उद्योत 1, पर्याप्त 1, साधारण 1, सूक्ष्म 1, यश 1, नीचगोत्र 1, अंतराय 5, शेष 42 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	80	1 मिथ्यात्व 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक 6-8 स्त्यानगृद्धि त्रिक 9 पराघात 10 उच्छ्वास 11 उद्योत इन 11 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	69	0 0 0

विकल त्रय रचना – गुणस्थान 1-2, उदय प्रकृति 81 है ।

1-5 ज्ञानावरणीय, 6-14 नौ दर्शनावरणीय, 15-16 वेदनीय-शाता-अशाता 17 मिथ्यात्व 18-33 सोलह कषाय, 34-39 हास्यादि षट्क, 40 नपुंसक वेद 41 तिर्यच आयु 42-43 तिर्यच द्विक 44-45 औदारिक द्विक 46 हुंडक 47 सेवार्त 48 स्वकीय इन्द्रिय 49 तैजस 50 कर्मण 51-54 वर्ण चतुष्क 55 अपर्याप्त 56-61 अस्थिर आदि छह, 62-67 त्रस आदि छह, 68 अगुरुलघु 68 उपघात 70 पराघात 71 निर्माण 72 उच्छ्वास 73 उद्योत 74 यश 75 अप्रशस्त गति 76 नीच गोत्र 77-81 पांच अंतराय-ये 81 हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	81	1 मिथ्यात्व 2 अपर्याप्त 3-5 स्त्यानगृद्धि त्रिक, 6 पराघात 7 उच्छ्वास, 8 उद्योत 9 दुःस्वर 10 अप्रशस्त गति इन-10 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	71	0 0 0

पंचेन्द्रिय रचना – गुणस्थान 1 से 14 उदय प्रकृति 114 है ।

1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर 3 सूक्ष्म 4 साधारण 5-6 विकलत्रय, 8 आतप ये आठ प्रकृतियां उदय में नहीं होती हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	109	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोहनीय 3-4 आहारक द्विक 5 तीर्थकर-ये पांच घटती है और मिथ्यात्व व अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	106	नरकानुपूर्वी घटती है, अनंतानुबंधी चार का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	तीन आनुपूर्वी घटती हैं, मिश्र मोहनीय जुड़ती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	"	चार आनुपूर्वी व सम्यक्त्व मोहनीय ये 5 जुड़ती है ।

5 से शेष में गुणस्थान समुच्चय की तरह समझना चाहिये ।

पृथ्वीकाय रचना – गुणस्थान 1-2, उदय प्रकृति 79 हैं ।

1-5 ज्ञानावरणीय, 6-14 दर्शनावरणीय नौ, 15-16 दो वेदनीय, 17 मिथ्यात्व 18-33 सोलह कषाय, 34-39 हास्यादि षट्क, 40 नपुंसक वेद, 41 तिर्यच आयु, 42-43 तिर्यच द्विक, 44 औदारिक 45 हुंडक 46 तैजस 47 कार्मण 48-51 वर्णचतुष्क 52 अपर्याप्त 53 अस्थिर 54 अशुभ 55 दुर्भग 56 अनादेय 57 अयश 58 बादर 59 प्रत्येक 60 स्थिर 61 शुभ 62 अगुरुलघु 63 उपघात 64 पराघात 65 निर्माण 66 उच्छ्वास 67 आतप 68 उद्योत 69 पर्याप्त 70 एकेन्द्रिय 71 यश 72 स्थावर 73 सूक्ष्म 74 नीच गोत्र 75-79 पांच अंतराय—ये 79 हैं, शेष 43 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	79	1 मिथ्यात्व 2 अपर्याप्त 3 आतप 4 सूक्ष्म 5-7 थीणद्वित्रिक 8 पराघात 9 उच्छ्वास 10 उद्योत-इन 10 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	69	0 0 0

अप्काय रचना – गुणस्थान 1-2, उदय प्रकृति 78 हैं ।

पूर्वोक्त 79 में से आतप को छोड़कर ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	78	1 मिथ्यात्व 2 अपर्याप्त 3 सूक्ष्म 4-6 थीणद्वित्रिक 7 पराघात 8 उच्छ्वास 9 उद्योत-इन 10 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	69	0 0 0

तेउ-वाउकाय रचना— गुणस्थान 1, उदय प्रकृति 77 हैं ।

पूर्वोक्त 71 में से आतप व उद्योत को छोड़कर ।

वनस्पतिकाय रचना – गुणस्थान 1-2, उदय प्रकृति 79 हैं । 1-5 ज्ञानावरणीय 6-14 दर्शनावरणीय नौ, 15-19 पांच अंतराय, 20 मिथ्यात्व 21-36 सोलह कषाय, 37-42 हास्य षट्क, 43 नपुंसक 44-46 तिर्यचत्रिक, 47 नीच गोत्र 48 औदारिक 49 हुंडक 50 तैजस 51 कार्मण 52-55 वर्ण चतुष्क, 56 अपर्याप्त 57 अस्थिर 58 अशुभ 59 दुर्भग 60 अनादेय 61 अयश 62 बादर 63 प्रत्येक 64 स्थिर 65 शुभ 66 अगुरुलघु 67 उपघात 68 निर्माण 69 पराघात 70 उच्छ्वास 71 उद्योत 72 पर्याप्त 73 साधारण 74 एकेन्द्रिय 75 यश 76 स्थावर 77 सूक्ष्म 78-79 दो वेदनीय—ये 79 प्रकृतियां हैं, शेष 43 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	79	1 मिथ्यात्व 2-4 सूक्ष्मत्रिक 5-7 थीणद्वित्रिक 8 पराघात 9 उच्छ्वास 10 उद्योत-इन 10 का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	69	0 0 0

त्रसकाय रचना – गुणस्थान 1 से 14, उदय प्रकृति 117 हैं ।

1 स्थावर, 2 सूक्ष्म 3 साधारण 4 एकेन्द्रिय 5 आतप-ये 5 प्रकृतियां नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	112	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोहनीय 3-4 आहारक-द्विक 5 तीर्थकर-ये पांच घटती हैं, मिथ्यात्व व अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	109	नरकानुपूर्वी घटती है, अनंतानुपूर्वी चार व विकलत्रय का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	शेष आनुपूर्वी तीन घटती हैं, मिश्र मोहनीय जुड़ती है और मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	104	चान आनुपूर्वी व सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है ।

मन चतुष्क व वचनत्रिक योग रचना – गुणस्थान 1 से 12, उदय प्रकृति 101 है । 1 एकेन्द्रिय 2 स्थावर 3-5 सूक्ष्मत्रिक 6 आतप 7-9 विकलत्रय 10-13 चार आनुपूर्वी ये 13 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	104	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोह. 3-4 आहारक-द्विक 5 तीर्थकर-ये पांच घटती हैं ।
2	सास्वादन	103	अनंतानुबंधी चार का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	मिश्र मोहनीय जुड़ती है ।
4	अविरति	100	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है, अप्रत्याख्यानीय चार, 5-6 वैक्रिय द्विक, 7 नरक गति 8 देवायु 9 नरकायु 10 दुर्भग 11 अनादेय 12 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	87	0 0 0

आगे के गुणस्थानों में गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लें ।

व्यवहार वचन योग रचना – गुणस्थान 1 से 13, उदयप्रकृति 112 हैं ।

1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर, 3-5 सूक्ष्मत्रिक 6 आतप और 7-10 आनुपूर्वी चार ये 10 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	1 मिश्र मोहनीय 2 सम्यक्त्व मोह. 3-4 आहारक-द्विक 5 तीर्थकर-ये पांच घटती हैं । और मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	106	अनंतानुबंधी चार व विकलत्रय का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	मिश्र मोहनीय जुड़ती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	100	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है, 1-4 अप्रत्याख्यानीय 5-6 वैक्रिय द्विक, 7 देव गति 8 देवायु 9 नरक गति 10 नरक आयु 11 दुर्भग 12 अनादेय 13 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	87	0 0 0

आगे के गुणस्थानों में गुणस्थान की तरह समझ लें ।

औदारिक काययोग रचना – गुणस्थान 1 से 13, उदय प्रकृति 109 हैं ।

1-2 आहारक द्विक, 3-4 वैक्रिय द्विक, 5-8 चार आनुपूर्वी, 9 देवगति 10 देवायु 11 नरक गति 12 नरक आयु 13 अपर्याप्त—ये 13 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	106	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह. व तीर्थकर-ये पांच घटती हैं मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, साधारण का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	102	1-4 अनंतानुबंधी चार, 5 एकेन्द्रिय, 6 स्थावर 7-9 विकलत्रय इन 9 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	94	मिश्र मोहनीय जुड़ती है और मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	94	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है, अप्रत्याख्यानीय चार, 5 दुर्भग 6 अनादेव 7 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	87	1-4 प्रत्याख्यानीय, तिर्यच गति, तिर्यच आयु, नीच गोत्र और उद्योत इन 8 का विच्छेद होता है ।
6	प्रमत्त	79	0 0 0

आगे के गुणस्थानों में गुणस्थान समुच्चय की तरह समझना चाहिये ।

औदारिक मिश्रयोग रचना—गुणस्थान 1, 2, 4, 13 उदयप्रकृति 18 हैं ।

1-2 आहारक द्विक, 3-4 वैक्रिय द्विक, 5-8 चार आनुपूर्वी, 9 देवगति 10 देवायु 11 नरक गति 12 नरक आयु 13 मिश्र मोह 14-16 थीणद्वित्रिक 17 दुःस्वर 18 प्रशस्त गति 19 अप्रशस्त गति 20 पराघात 21 उच्छ्वास 22 आतप 23 उद्योत ये नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	96	सम्यक्त्व मोहनीय व तीर्थकर घटती है, सूक्ष्मत्रिक का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	92	अनंतानुबंधी चार, 5 एकेन्द्रिय, 6 स्थावर 7-9 विकलत्रय 10 दुर्भग 11 अनादेव 12 अयश 13 नपुंसकवेद व 14 स्त्री वेद का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	79	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है, अप्रत्याख्यानीय चार, 5-8 प्रत्या. चार कषाय 9 तिर्यच गति 10 तिर्यच आयु 11 नीच गोत्र 12 सम्यक्त्व मोह. 13-15 अंतिम तीन संघयण, 16-21 हास्यादि षट्क, 22 पुंवेद 23-26 संज्वलन कषाय 27 ऋषभ-नाराच 25 नाराच 29 निद्रा 30 प्रचला 31-39 दर्शनावरण की 9, 40-44 पांच अंतराय का विच्छेद होता है ।
13	सयोगी	36	तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

वैक्रिययोग रचना – गुणस्तान 1 से 4, उदयप्रकृति 86 हैं ।

1-5 ज्ञानावरण, 6-11 थीणद्वित्रिक को छोड़ 6 दर्शनावरण, 12-13 शाता अशाता वेदनीय, 14-40 मोहनीय की 28, 41-45 पांच अंतराय, 46-47 दो गोत्र 48 देवगति 49 देवायु 50-51 वैक्रिय द्विक 52 पंचेन्द्रिय 53 तैजस 54 कार्मण 55 समचतुरस्त्र 56 हुंडक 57 प्रशस्तगति 58 अप्रशस्तगति 59-62 वर्ण चतुष्क, 63 अगुरुलघु 64 उपघात 65 उच्छ्वास 66 निर्माण 67 अस्थिर 68 अशुभ 69-78 त्रस दश 79 दुःस्वर 80 अनादेय 81 अयश 82 नरक आयु 83 नरक गति 84 दूर्भग 85-86 है शेष 36 नहीं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	84	मिश्र मोहनीय व सम्यक्त्व मोह. घटती है, मिथ्यात्व का विच्छेद
2	सास्वादन	83	अनंतानुबंधी चार का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	80	मिश्र मोहनीय जुड़ती है मिश्र मोह. का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	80	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है ।

वैक्रिय मिश्र योग रचना – गुणस्थान 3 (1,2,4) उदयप्रकृति 79 है । पूर्वोक्त 86 में से 1 मिश्रमोहनीय, 2 पराधात 3 उच्छ्वास 4 सुस्वर 5 दुःस्वर 6 प्रशस्त गति 7 अप्रशस्त गति – ये 7 नहीं होती हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	78	सम्यक्त्व मोह. घटती है, मिथ्यात्व का विच्छेद ।
2	सास्वादन	69	1 नरक गति 2 नरक आयु 3 नीच गोत्र 4 हुंडक 5 नपुंसक 6 दुर्भग 7 अनादेय 8 अयश घटती हैं तथा अनंतानुबंधी चार व स्त्रीवेद का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	73	1 सम्यक्त्व मोहनीय 2 नरक गति 3 नरक आयु 4 नीच गोत्र 5 हुंडक 5 नपुंसक वेद 7 दुर्भग 8 अनादेय और 9 अयश जुड़ती हैं ।

आहारक योग रचना – गुणस्थान 1 (प्रमत्त) उदय प्रकृति 61 है । 1 मिथ्यात्व 2 मिश्र मोह. 3 आतप 4-6 सूक्ष्मत्रिक 7-10 अनंतानुबंधी चार 11 एकेन्द्रिय 12 स्थावर 13-15 विकलत्रय 16-19 अप्रत्याख्यान कषाय 20-21 वैक्रिय द्विक 22 देव गति 23 देवायु 24 नरक गति 25 नरकायु 26-29 चार आनुपूर्वी 30 दुर्भग 31 अनादेय 32 अयश 33-36 प्रत्या-चार, 37 तिर्यच आयु 38 नीच गोत्र 39 तिर्यचगति 40 उद्योत और 41 तीर्थकर नाम कर्म – ये 41 नहीं है, शेष 61 छट्टे गुणस्थान में है । उसके मध्य में धीण. त्रिक 3, नपुंसक वेद 1, स्त्रीवेद 1, अप्रशस्त गति 1, दुःस्वर 1, संहनन 6, औदारिक द्विक 2, संस्थान 5, समचतुरस्त्र रहित और 20 नहीं है । शेष 61 हैं ।

आहारक मिश्र योग रचना – गुणस्थान 1 (प्रमत्त) उदय प्रकृति 57 हैं । पूर्वोक्त 61 में से 1 सुस्वर 2 पराधात 3 उच्छ्वास 4 प्रशस्त गति – ये चार नहीं हैं ।

कार्मण योग रचना – गुणस्थान 4 (1, 2, 4, 13) उदय प्रकृति 89 हैं ।

1 सुस्वर 2 प्रशस्त गति 3 अप्रशस्त गति 4 प्रत्येक 5 साधारण 6-7 आहारक द्विक

8-9 औदारिक द्विक 10 मिश्र मोह 11 उपघात 12 पराघात 13 उच्छ्वास 14 आचप 15 उद्योत 16-17 वैक्रिय द्विक 18-20 थीण . त्रिक 21-26 छह संस्थान , 27-32 छह संघयणा इस प्रकार 33 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	87	सम्यक्त्व मोह. व तीर्थकर घटती है, मिथ्यात्व, सूक्ष्म, अपर्याप्त का विच्छेद ।
2	सास्वादन	81	नरकत्रिक घटती है, 4 अनंतानुबंधी चार 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7-9 विकलत्रय 10 स्त्रीवेद का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	75	सम्यक्त्व मोहनीय व नरकत्रिक जुड़ती है, 1-4 अप्रत्या. कषाय, 5-7 देवत्रिक 8-10 नरकत्रिक 11-13 तिर्यचत्रिक 14 मनुष्यानुपूर्वी 15 दुर्भग 16 अनादेय 17 अयश 18-21 प्रत्या. चार 22 नीच गोत्र 23 निद्रा 24 प्रचला 25 आवरण 9 अंतराय 5 इस प्रकार 51 का विच्छेद ।
13	सयोगी	25	तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

पुरुष वेद रचना – गुणस्थान 1 से 9, उदय प्रकृति 107 है ।

1 स्थावर 2-4 सूक्ष्मत्रिक 5-7 नरकत्रिक 8-0 विकलत्रिक 11 एकेन्द्रिय 12 स्त्रीवेद 13 नपुंसकवेद 14 आतप और 15 तीर्थकर ये 15 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	103	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह. आहारक द्विक घटती हैं, मिथ्यात्व का विच्छेद ।
2	सास्वादन	102	अनंतानुबंधी चार का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	96	नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी घटती हैं, मिश्र मोह. जुड़ती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	देश विरति	99	सम्यक्त्व मोहनीय, नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी-ये चार जुड़ती है, 1-4 अप्रत्या चार 5-6 वैक्रिय द्विक 7-9 देवत्रिक, 10 मनुष्यानुपूर्वी, 11 तिर्यचानुपूर्वी 12 दुर्भग 13 अनादेय 14 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	85	4 प्रत्या. कषाय 5 तिर्यच आयु 6 नीच गोत्र 7 उद्योत 8 तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	79	आहारकद्विक जुड़ती है थीणद्वित्रिक व आहारक द्विक का विच्छेद ।
7	अप्रमत्त	74	सम्यक्त्व मोह व अंतिम तीन संघयण का विच्छेद ।
8	अपूर्वकरण	70	हास्य आदि छ का विच्छेद ।
9	अनिवृत्ति करण	64	0 0 0

स्त्रीवेद रचना – गुणस्थान 1 से 9, उदय प्रकृति 105 है ।

पूर्वोक्त 107 में स्त्री वेद जुड़ती है और उसमें से आहारक द्विक व पुरुषवेद की प्रकृति घटती है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	103	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह घटती हैं मिथ्यात्व का विच्छेद ।
2	सास्वादन	102	अनंतानुबंधी चार, नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी-इन 7 का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	96	मिश्र मोहनीय जुड़ती है मिश्र मोह. का विच्छेद ।
4	अविरति	96	सम्यक्त्व मोहनीय व जुड़ती है, 4 अप्रत्या. चार, 5 देवगति 6 देरायु 7-8 वैक्रिय द्विक 9 दुर्भग 10 अनादेय 11 अयश का विच्छेद ।
5	देश विरति	85	प्रत्या. चार, तिर्यच आयु, उद्योत, नीच गोत्र व तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	77	शीणद्धित्रिक का विच्छेद ।
7	अप्रमत्त	74	सम्यक्त्व मोह. व अंतिम तीन संघयण का विच्छेद ।
8	अपूर्वकरण	70	हास्य आदि छ का विच्छेद ।
9	अनिवृत्ति करण	64	0 0 0

नपुंसक वेद रचना – गुणस्थान 1 से 9 तक उदय प्रकृति 114 है ।

आहारक द्विक, देवत्रिक, तीर्थकर, स्त्रीवेद व पुरुषवेद – ये 8 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	112	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह घटती है, मिथ्यात्व, आतप व सूक्ष्मत्रिक का विच्छेद ।
2	सास्वादन	106	नरकानुपूर्वी घटती है, अनंतानुबंधी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी – इन 11 का विच्छेद ।
3	मिश्र	96	मिश्र मोहनीय जुड़ती है, मिश्र मोह. का विच्छेद ।
4	अविरति	97	सम्यक्त्व मोहनीय व नरकानुपूर्वी जुड़ती है, अप्रत्याख्यानीय चार कषाय, 5-7 नरक त्रिक 8-9 वैक्रिय द्विक, 10 दुर्भग 11 अनादेय व 12 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	85	प्रत्या. चार, तिर्यचायु, उद्योत, नीच गोत्र व तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	77	शीणद्धित्रिक का विच्छेद ।
7	अप्रमत्त	74	सम्यक्त्व मोह. व अंतिम तीन संघयण का विच्छेद ।
8	अपूर्वकरण	70	हास्य आदि छ का विच्छेद ।
9	अनिवृत्ति करण	64	0 0 0

क्रोध चतुष्क रचना – गुणस्थान 1 से 9 उदय प्रकृति 109 है ।

1 तीर्थकर नाम, 2-5 चार मान, 6-9 चार माया, 10-13 चार लोभ नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	105	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह आहारक घटती हैं, मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मत्रिक का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	99	नरकानुपूर्वी घटती है, अनंतानुबंधी क्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय-इन छ का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	91	नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी घटती है, मिश्र मोह जुड़ती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	95	सम्यक्त्व मोहनीय व चार आनुपूर्वी जुड़ती है । अप्रत्या. क्रोध, वैक्रिय अष्टक मनुष्यानुपूर्वी तिर्यचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश-इन 14 का विच्छेद ।
5	देश विरति	81	प्रत्या. क्रोध तिर्यचायु, नीच गोत्र, उद्योत, तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	78	आहारकद्विक जुड़ती है, थीणद्वित्रिक व आहारक द्विक का विच्छेद ।
7	अप्रमत्त	73	सम्यक्त्व मोह. व अंतिम तीन संघयण का विच्छेद ।
8	अपूर्वकरण	69	हास्य आदि छ का विच्छेद ।
9	अनिवृत्ति करण	63	0 0 0

इसी प्रकार मान चतुष्क, माया चतुष्क व लोभ चतुष्क में समझना चाहिये । फर्क इतना है कि अपने-अपने चतुष्क में अपनी अपनी प्रकृति समझें, लोभ 10वें गुणस्थान तक होता है । नौवें गुणस्थान की 63 प्रकृति में से तीन वेद का विच्छेद करने पर 60 का उदय होता है ।

मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान रचना – गुणस्थान 1-2, उदय प्रकृति पहले गुणस्थानक में 117 व दूसरे में 111 हैं ।

विभंग ज्ञान रचना – गुणस्थान 1-2 हैं । उदय प्रकृति 106 है ।

1 एकेन्द्रिय, 2 आतप, 3-5 विकलत्रय 6-9 स्थावर चतुष्क 10 मनुष्यानुपूर्वी 11 तिर्यचानुपूर्वी 12 मिश्रमोह, 13 सम्यक्त्व मोह, 14-15 आहारक द्विक व 16 तीर्थकर ये 16 प्रकृतियां नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	106	मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी का विच्छेद ।
2	सास्वादन	104	0 0 0

ज्ञानत्रय रचना – गुणस्थान 9 (4 से 12) उदय प्रकृति 106 हैं ।

1 मिथ्यात्व, 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक 6-9 अनंतानुबंधी चार, 10 एकेन्द्रिय 11 स्थावर 12-14 विकलत्रय 15 मिश्र मोहनीय 16 तीर्थकर-ये 16 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	अविरति	104	आहारक द्विक घटती है, 1-4 अप्रत्या. कषाय, 5-12 वैक्रिय अष्टक, 13 मनुष्यानुपूर्वी, 14 तिर्यचानुपूर्वी, 15 दुर्भग, 16 अनादेय, 17 अयश का विच्छेद
5	देश विरति	87	0 0 0

आगे सर्वत्र समुच्चय गुणस्थान की तरह समझना चाहिये ।

मनःपर्यव ज्ञान छट्टे गुणस्थान से पूर्वोक्त की तरह समझना चाहिये । केवल ज्ञान 13-14वें गुणस्थान की तरह समझना चाहिये ।

सामायिक व छेदोपस्थापनीय में छट्टे व नौवें तक समुच्चय गुणस्थान की तरह समझना चाहिये ।

परिहार विशुद्धि रचना – गुणस्थान 2 (प्रमत्त-अप्रमत्त) उदयप्रकृति 78 हैं । पूर्वोक्त छट्टे गुणस्थान की 81 प्रकृति में से स्त्रीवेद व आहारक द्विक ये तान नहीं है । सातवें गुणस्थान में थीणद्वित्रिक न होने से 75 हैं ।

सूक्ष्म संपराय रचना – दसवें गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लेना चाहिये ।

यथाख्यात रचना – 11, 12, 13 व 14वें गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लेना चाहिये ।

असंयम रचना – 1 से 4 गुणस्थान समुच्चय की तरह समझना चाहिये ।

चक्षु दर्शन रचना – गुणस्थान 1 से 12, उदय प्रकृति 109 हैं ।

1 तीर्थकर, 2 साधारण, 3 आतप 4 एकेन्द्रिय 5 स्थावर 6 सूक्ष्म 7 बेइन्द्रिय 8 तेइन्द्रिय 9-12 चार आनुपूर्वी व 13 अपर्याप्त ये 13 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	105	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह., आहारक द्विक ये चार घटती हैं, मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	104	अनंतानुबंधी चार व चउरिन्द्रिय का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	मिश्र मोहनीय जुड़ती है, मिश्र मोहनीय का विच्छेद ।
4	अविरति	100	सम्यक्त्व मोहनीय जुड़ती है ।

आगे समुच्चय गुणस्थान की तरह समझ लेना चाहिये ।

अचक्षु दर्शन – गुणस्थान 1 से 12, उदय प्रकृति 121 हैं ।

तीर्थकर नाम कर्म नहीं है । गुणस्थान समुच्चय की तरह सर्वत्र समझलें ।

अवधि दर्शन – अवधि ज्ञान की तरह समझलें ।

केवल दर्शन – केवल ज्ञान की तरह समझलें ।

कृष्ण नील कापोत लेश्या रचना – गुणस्थान 1 से 4, उदय प्रकृति 119 हैं ।

आहारक द्विक और तीर्थकर नाम कर्म नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	117	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह., घटती हैं । 1 मिथ्यात्व 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक व नरकानुपूर्वी का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	111	1-4 अनंतानुबंधी 5 स्थावर 6-8 विकलत्रय 9 देवानुपूर्वी 10 तिर्यचानुपूर्वी व 11 एकेन्द्रिय का विच्छेद होता है ।
3	मिश्र	100	मनुष्यानुपूर्वी घटती है, मिश्र मोह. जुड़ती है और मिश्र मोहनीय का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	104	चार आनुपूर्वी और सम्यक्त्व मोहनीय जड़ती है ।

तेजो लेख्या रचना – गुणस्थान 1 से 7, उदय प्रकृति 101 हैं ।

1 आतप, 2-4 विकल त्रय 5-7 सूक्ष्मत्रय 8-10 नरक त्रय 11 तीर्थकर—ये 11 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	107	1 मिश्र मोहनीय, 2 सम्यक्त्व मोह., 3-4 आहारक द्विक घटती हैं, मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	106	अनंतानुबंधी चार, एकेन्द्रिय व स्थावर का विच्छेद ।
3	मिश्र	98	तीन आनुपूर्वी घटती हैं, मिश्र मोह. जुड़ती है और मिश्र मोह. का विच्छेद ।
4	अविरति	101	सम्यक्त्व मोह. व तीन आनुपूर्वी जुड़ती हैं, वैक्रियद्विक, 3-6 अप्रत्याख्यानीय कषाय, 7-9 देवत्रिक 10-12 तीन आनुपूर्वी 13 अनादेव व 14 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	87	प्रत्याख्यानीय चार कषाय, 5 तिर्यच आयु, 6 नीच गोत्र, 7 उद्योत 8 तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	81	आहारक द्विक जुड़ती है, शीणद्वि त्रिक व आहारक द्विक का विच्छेद ।

पद्म लेख्या रचना – गुणस्थान 1 से 7, उदय प्रकृति 109 हैं ।

1 आतप, 2 एकेन्द्रिय 3-6 स्थावर चतुष्क 7-9 विकलत्रय 10-12 नरकत्रिक तथा 13 तीर्थकर—ये 13 नहीं है ।

उदय क्रमशः 105, 104, 98, 101, 87, 81 और 76 का है ।

शुक्ल लेख्या रचना – गुणस्थान 1 से 13, उदय प्रकृति 110 है ।

1 आतप, 2 एकेन्द्रिय 3-5 विकलत्रय 6-9 स्थावर चतुष्क 10-12 नरकत्रिक—ये 12 नहीं है ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	105	1 मिश्र मोहनीय, 2 सम्यक्त्व मोह., 3-4 आहारक द्विक, 5 तीर्थकर—ये पांच घटती है और मिथ्यात्व का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	104	अनंतानुबंधी चार का विच्छेद ।
3	मिश्र	98	तीन आनुपूर्वी घटती हैं, मिश्र मोह. जुड़ती है और मिश्र मोह. का विच्छेद होता है ।
4	अविरति	101	सम्यक्त्व मोहनीय व तीन आनुपूर्वी जुड़ती हैं ।

इसके आगे गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लेना चाहिये ।

भव्य रचना – सभी 14 गुणस्थानों में गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लें ।

उभव्य रचना – प्रथम गुणस्थान की तरह समझ लेना चाहिये ।

उपशम रचना – गुणस्थान 8 (चौथे से ग्यारहवां) उदय प्रकृति 100 हैं ।

1 मिथ्यात्व, 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक मोह, 6-9 अनंतानुबंधी चार 10 एकेन्द्रिय 11 स्थावर 12-14 विकलत्रय 15 मिश्र मोह 16 सम्यक्त्व मोह, 17-19 देव छोड़ तीन आनुपूर्वी 20-21 आहारक द्विक तथा 22 तीर्थकर नाम – ये 22 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
4	अविरति	100	1-4 अप्रत्याख्यान कषाय, 5-6 वैक्रिय द्विक 7-9 देवत्रिक 10 नरक गति 11 नरक आयु 12 दुर्भग 13 अनादेव 14 अयश का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	86	चार प्रत्या. कषाय, 5 तिर्यचायु, 6 नीच गोत्र 7 उद्योत 8 तिर्यच गति का विच्छेद ।
6	सर्व विरति	78	शीणद्वित्रिक का विच्छेद ।
7	अप्रमत्त	75	0 0 0

आगे के गुणस्थान में गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लें ।

क्षयोपशम सम्यक्त्व रचना – गुणस्थान 4, (4,5,6,7) उदय प्रकृति गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लें ।

क्षायिक सम्यक्त्व रचना – गुणस्थान 11 (चौथे से चौदहवें तक) उदय प्रकृति 106 हैं ।

1 मिथ्यात्व, 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक, 6-9 अनंतानुबंधी चार 10 एकेन्द्रिय 11 स्थावर 12-14 विकलत्रय 15 मिश्र मोह 16 सम्यक्त्व मोह ये 16 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
4	अविरति	103	1-2 आहारक द्विक 2 तीर्थकर घटती है । 1-4 अप्रत्या. कषाय, 5-12 वैक्रिय अष्टक 13 मनुष्यानुपूर्वी 14 तिर्यचानुपूर्वी 15 तिर्यच आयु 16 उद्योत 17 तिर्यच गति 12 दुर्भग 19 अनादेय 20 अयश इन 20 का विच्छेद होता है ।
5	देश विरति	83	प्रत्याख्यानीय चार व नीचे गोत्र का विच्छेद ।
6	प्रमत्त	80	आहारक द्विक जुडती है और शीणद्वित्रिक व आहारक द्विक का विच्छेद होता है ।
7	अप्रमत्त	75	0 0 0

आगे गुणस्थान समुच्चय की तरह समझना चाहिये ।

सास्वादन सम्यक्त्व व मिश्र सम्यक्त्व रचना – अपने अपने गुणस्थान की तरह समझ लेना चाहिए ।

संज्ञी रचना – गुणस्थान 1 से 12, उदय प्रकृति 113 हैं ।

1 एकेन्द्रिय, 2 स्थावर 3 सूक्ष्म 4 साधारण 5 आतप 6-8 विकलत्रय 9 तीर्थकर – ये नौ प्रकृतियां नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	109	1 मिश्र मोहनीय, 2 सम्यक्त्व मोह. व 3-4 आहारक के चार घटती हैं । 1 मिथ्यात्व व अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	106	नरकानुपूर्वी घटती है व अनंतानुबंधी चार का विच्छेद ।
3	मिश्र	100	नरक को छोड़ तीन आनुपूर्वी घटती है मिश्र मोह. जुड़ती है ।

आगे गुणस्थान समुच्चय की तरह समझ लें ।

असंज्ञी रचना – गुणस्थान 2(1,2) उदय प्रकृति 94 हैं ।

1 उच्च गोत्र 2-7 वैक्रिय षट्क, 8-12 सेवार्त को छोड़कर पांच संघयण, 13-17 हुंडक को छोड़ पांच संस्थान, 18 प्रशस्त गति 19-21 सुभगत्रिक 22 देवायु 23 नरकायु 24-25 आहारक द्विक 26 तीर्थकर व 27 मिश्रमोह, 28 सम्यक्त्व मोह० ये 28 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	94	1 मिथ्यात्व, 2 आतप 5-6 सूक्ष्मत्रिक, 6-8 थीणद्वित्रिक 9 पराघात 10-12 मनुष्यत्रिक 13 उच्छ्वास 14 उद्योत 15 दुःस्वर 16 अप्रशस्त गति का विच्छेद ।
2	सास्वादन	78	0 0 0

आहारक रचना – गुणस्थान 1 से 13, उदय प्रकृति 118 हैं । चार आनुपूर्वी नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	113	मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोह. आहारक द्विक व तीर्थकर घटती है । 1 मिथ्यात्व 2 आतप 3-5 सूक्ष्मत्रिक का विच्छेद ।
2	सास्वादन	108	अनंतानुबंधी चार, 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7-9 विकलत्रय का विच्छेद ।
3	मिश्र	100	मिश्र मोहनीय जुड़ती है व मिश्र मोहनीय का विच्छेद ।
4	अविरति	100	सम्यक्त्व मोह. जुड़ती है ।

अनाहारक रचना – गुणस्थान 4 (1,2,4,13) उदय प्रकृति 89 हैं ।

1 दुःस्वर 2 सुस्वर 3 प्रशस्तगति 4 अप्रशस्त गति 5 प्रत्येक 6 साधारण 7-8 आहारक द्विक 9-10 औदारिक द्विक 11 मिश्र मोह० 12 उपघात 13 पराघात 14 उच्छ्वास 15 आतप 16 उद्योत 17-18 वैक्रिय द्विक 19-21 थीणद्वित्रिक, 22-27 छह संघयण व 28-333 छह संस्थान ये 33 नहीं हैं ।

क्रम	गुणस्थान	उदय प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	87	सम्यक्त्व मोह, व तीर्थकर नाम कर्म घटती हैं, 1 मिथ्यात्व 2 सूक्ष्म व 3 अपर्याप्त का विच्छेद होता है ।
2	सास्वादन	81	नरकत्रिक घटती है, अनंतानुबंधी चार, 5 एकेन्द्रिय 6 स्थावर 7-9 विकल त्रय 10 स्त्री वेद का विच्छेद ।
4	अविरति	75	सम्यक्त्व मोह. व नरकत्रय जुड़ती है, अप्रत्याख्यान आदि अंतराय पर्यंत 51 का विच्छेद । विशेष कर्मण रचना की तरह समझ लें ।
23	सयोगी	25	तीर्थकर एक मिलती है ।

सत्ता अधिकार

धर्मा आदि तीन नरक रचना – गुणस्थान 1 से 4, सत्ता प्रकृति 147 (देवायु नहीं)

क्रम	गुणस्थान	सत्ता प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	147	0
2	सास्वादन	146	तीर्थकर नाम कर्म घटती है ।
3	मिश्र	146	0
4	अविरति	147	तीर्थकर नाम कर्म जुड़ती है ।

अंजना आदि तीन में देवायु व तीर्थकर नाम कर्म नहीं है । सातवीं में देवायु, तीर्थकर व मनुष्य आयु ये तीन नहीं हैं ।

अंजना आदि तीन में 146 की सत्ता व 7 वीं नरक में 145 की सत्ता है ।

सामान्य तिर्यच रचना – गुणस्थान 1 से 4, सत्ता प्रकृति 147 हैं—तीर्थकर नाम कर्म नहीं । पहले – दूसरे – तीसरे व चौथे गुणस्थान में 147 की सत्ता ।

मनुष्य रचना – सामान्य 14 गुणस्थान की तरह है ।

सौधर्म से सहस्रार देवलोक तक रचना—गुणस्थान 1 से 4, सत्ता प्रकृति 147 नरकायु नहीं है ।

आनत से नौ ग्रैवेयक पर्यंत – सत्ता 146 हैं, तिर्यच आयु नहीं है ।

पांच अनुत्तर रचना – गुणस्थान 1 (चौथे) सत्ता 146, नरकायु व तिर्यचायु नहीं है ।

भवनपति, ब्यंतर, ज्योतिषी, सर्व देवी रचना – गुणस्थान 1 से 4, सत्ता 146, तीर्थकर व नरकायु ये दो नहीं है ।

एकेन्द्रिय विकलत्रय रचना – गुणस्थान 1, 2 सत्ता प्रकृति 145 है । तीर्थकर, नरकायु व देवायु नहीं है ।

पंचेन्द्रिय रचना – सामान्य गुणस्थान की तरह है ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय रचना – एकेन्द्रिय विकलत्रय की तरह है ।

तेजो-वायुकाय रचना—गुणस्थान 1 (मिथ्यात्व) सत्ता प्रकृति 144 हैं । तीर्थकर, देवायु, मनुष्य आयु व नरकायु नहीं है ।

त्रसकाय रचना – सामान्य गुणस्थान की तरह है ।

मनोयोग चतुष्क, वचन योग चतुष्क व औदारिकाययोग – (9 योग)—सामान्य गुणस्थान की तरह है ।

वैक्रियकाय योग रचना – गुणस्थान 1 से 4, सत्ता प्रकृति 148 है । पहले गुणस्थान में 148, दूसरे में 147, तीसरे में 147 व चौथे में 148 है ।

आहारक, आहारक मिश्र रचना – गुणस्थान 1 (प्रमत्त) सत्ता प्रकृति 148 है ।

औदारिक मिश्र योग रचना – गुणस्थान 4 (1,2,4, 13) सत्ता 146 देवायु-नरकायु नहीं है ।

सौधर्म से सहस्रात्र

क्रम	गुणस्थान	प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	146	तीर्थकर एक घटती है ।
2	सास्वादन	146	0
3	मिश्र	146	0
4	अविरति	147	तीर्थकर एक जुड़ती है ।

आनत से 9 ग्रैवेयक

क्रम	गुणस्थान	प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	145	तीर्थकर एक घटती है ।
2	सास्वादन	146	0
3	मिश्र	145	0
4	अविरति	146	तीर्थकर एक जुड़ती है ।

क्रम	गुणस्थान	प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	145	तीर्थकर घटती है ।
2	सास्वादन	145	0 0 0
4	अविरति	146	तीर्थकर एक जुड़ती है । सातवें-नौवें-दसवें-बारहवें गुणस्थान की 61 प्रकृतियों का विच्छेद होने से 13 वें गुण में 85 शेष रहती हैं ।
13	सहयोगी	85	0 0 0

नरकगति मिश्र वैक्रिय रचना – गुणस्थान 2 (पहला व चौथा) सत्ता 145, मनुष्यायु, तिर्यचायु व देवायु ये तीन नहीं है । पहले व चौथे में सत्ता 145 है ।

देवगति संबंधी वैक्रिय मिश्र योग रचना – गुणस्थान तीन, (1,2,4) सत्ता 145, मनुष्य आयु, तिर्यच आयु व नरकायु नहीं है ।

कार्मण रचना – गुणस्थान चार (1, 2, 4, 13) सत्ता 148 है ।

क्रम	गुणस्थान	प्रकृति	परिवर्तन
1	मिथ्यात्व	148	0
2	सास्वादन	146	तीर्थकर व नरकायु जुड़ती है ।
3	अविरति	148	तीर्थकर व नरकायु जुड़ती है ।
4	सहयोगी	85	सामान्य गुणस्थान की तरह ।

तीन वेद रचना – 1 से 9 गुणस्थान, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

अनंतानुबंधी चतुष्क रचना – गुणस्थान दो (1,2) सत्ता पहले में 148 व दूसरे में 147 की होती है ।

अप्रत्याख्यान चार रचना – गुणस्थान 1 से 4, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

प्रत्याख्यान रचना – गुणस्थान 1 से 5, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

संज्वलन क्रोध-मान-माया, नौवें तक लोभ – समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

अज्ञानत्रय रचना – गुणस्थान 1, 2, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

ज्ञानत्रय रचना – गुणस्थान 4 से 12, सत्ता 148-समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

मनःपर्यवज्ञान रचना – गुणस्थान 7, प्रमत्त आदि, सत्ता 148 समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

केवल ज्ञान रचना – गुणस्थान 13, 14 सत्ता 85 ।

सामायिक छेदोपस्थापनीय रचना – 6 से 9 (चार) सत्ता 148-समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

सूक्ष्म संपराय चारित्र – गुणस्थान 10वां की तरह ।

यथाख्यात रचना – 11, 12, 13 व 14 गुणस्थान की तरह ।

देशविरति रचना – पांचवें गुणस्थान की तरह ।

असंयम रचना – 1 से 4 गुणस्थान की तरह ।

अचक्षु, चक्षुदर्शन रचना – गुणस्थान 1 से 12 गुणस्थान समुच्चय की तरह ।

अवधिदर्शन रचना – अवधिज्ञान की तरह ।

केवल दर्शन रचना – केवलज्ञान की तरह ।

कृष्ण, नील, कापोत लेख्या रचना – गुणस्थान 1 से 4 पूर्ववत् ।

तेजो पद्म रचना – गुणस्थान 1 से 7, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

शुक्ल लेख्या रचना – गुणस्थान 1 से 13, सत्ता 148, समुच्चय गुणस्थान की तरह ।

भव्य रचना – गुणस्थान समुच्चय की तरह ।

अभव्य रचना – गुणस्थान 1 (मिथ्यात्व) सत्ता प्रकृति 141 (मिश्रमोह, सम्यक्त्व मोहनीय, तीर्थकर, आहारक द्विक, आहारक बंधन, आहारक संघातन को छोड़कर ।

उपशम सम्यक्त्व रचना – गुणस्थान 8 (4 से 11) सत्ता 148 ।

क्षयोपशम सम्यक्त्व रचना – गुणस्थान 4 (4 से 7) सत्ता 148 ।

क्षायिक सम्यक्त्व रचना – गुणस्थान 11 (4 से 14) सत्ता 141 (अनंतानुबंधी चार, मिथ्यात्व, मिश्रमोह व सम्यक्त्व मोहनीय नहीं है।

क्रम	गुणस्थान	प्रकृति	परिवर्तन
4	अविरति	141	
5	देश विरति	141	
6	सर्व विरति	141	
7	अप्रमत्त	141	तीन आयुष्य का विच्छेद।
8	अपूर्वकरण	138	0
9	अनिवृत्तिकरण	138	नौ भाग में 36 प्रकृतियों का विच्छेद।
10	सूक्ष्मसंपराय	102	संज्वलन लोभ का विच्छेद।
11	उपशांत मोह	101	0
12	क्षीणमोह	101	निद्रा, प्रचला, ज्ञानावरणीय 5, दर्शना, 1 वर्ण 4, अंतराय 5 का विच्छेद
13	सयोगी	85	0
14	अयोगी	85	85 के विच्छेद में मुक्ति

मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र में – गुणस्थान समुच्चय की तरह।

संज्ञी रचना – गुणस्थान 12, समुच्चय गुणस्थानक की तरह।

असंज्ञी रचना – गुणस्थान 2, (1,2) सत्ता 147, तीर्थकर नाम की नहीं। पहले दूसरे में 147।

आहारक रचना – गुणस्थान 13, गुणस्थान समुच्चयवत्।

अनाहारक रचना – कर्मणयोग रचना की तरह।

(सत्ता अधिकार समाप्त)

(158) उत्कृष्ट प्रकृति बंध कोष्टक

प्रकृति	स्वामी
तीर्थकर नाम कर्म	4 गुणस्थान
आहारक द्विक और देव आयु	7 अप्रमत्त
1-3 विकल त्रिक, 4-6 सूक्ष्म त्रिक, 7 नरकायु, 8 तिर्यच आयु, 9 मनुष्य आयु 10-11 सुरद्विक 12-13 वैक्रिय द्विक 14-15 नरक द्विक – ये 15	तिर्यच मनुष्य व मिथ्यात्व
एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप	ईशानांत मिथ्यात्वी
तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, औदारिक द्विक, उद्योत और सेवार्त	देवता, नारकी मिथ्यात्वी चारों गति के मिथ्यात्वी
शेष 92 प्रकृति	मिथ्यात्वी चार गति

(159) जघन्य प्रकृति बंध स्वामी कोष्ठक

प्रकृति	बंध स्वामी
आहारक द्विक व तीर्थकर	8 गुणस्थान
संज्वलन चार व पुरुषवेद	9वां गुणस्थान
1 शाता, 2 यश, 3 उच्च गोत्र, 4-8 ज्ञानावरणीय पांच, 9-12 दर्शनावरणीय चार 13-17 अंतराय पांच ये 17 1-2 नरकद्विक, 3-4 वैक्रिय द्विक 5-6 देव द्विक	सूक्ष्म संपराय गुणस्थानवाला संज्ञी तिर्यच पर्याप्त
चार आयु	संज्ञी-असंज्ञी
शेष 85 प्रकृति	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त

(160) स्थिति बंध-अल्प बहुत्व संख्या

प्रकृति	बंध स्वामी
यति सूक्ष्म संपराय जघन्य	स्तोक 1
बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त	असं. 2
सूक्ष्म " "	वि. 3
बादर " अपर्याप्त	वि. 4
सूक्ष्म " "	वि. 5
सूक्ष्म " उत्कृष्ट	वि. 6
बादर " "	" 7
सूक्ष्म " पर्याप्त	" 8
बादर " "	" 9
बेइन्द्रिय " जघन्य	सं. 10
" अपर्याप्त	वि.शेषा. 11
बेइन्द्रिय अपर्याप्त उत्कृष्ट	वि.शेषा. 12
" पर्याप्त	" 13
तेइन्द्रिय " जघन्य	" 14
" अपर्याप्त	" 15
" उत्कृष्ट	" 16
" पर्याप्त	" 17
चउरिन्द्रिय अपर्याप्त जघन्य	" 18
चउरिन्द्रिय अपर्याप्त जघन्य	" 19
" उत्कृष्ट	" 20

"	पर्याप्त	"	" 21
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	पर्याप्त	जघन्य	सं. 22
"	अपर्याप्त	"	वि. 23
"	"	"	" 24
"	पर्याप्त	"	" 25
यति का उत्कृष्ट	स्थिति बंध		सं 26
देश विरति जघन्य	" "		" 27
" उत्कृष्ट	" "		" 28
अविरति सम्यग्दृष्टि	पर्याप्त	जघन्य	" 29
" "	अपर्याप्त	"	" 30
" "	अपर्याप्त	उत्कृष्ट	" 31
" "	पर्याप्त	"	" 32
संज्ञी	"	जघन्य	" 33
संज्ञी	अपर्याप्त	"	" 34
"	अपर्याप्त	उत्कृष्ट	" 35
"	पर्याप्त	"	" 36

(161) 41 प्रकृति का अबंध काल

प्रकृति	अबंध काल
1-3 नरक त्रिक, 4-6 तिर्यच त्रिक 7 उद्योत	163 सागरोपम, 4 पल्योपम तथा साधिक युगलिक मनुष्य भव
स्थावर चतुष्क 5 एकेन्द्रिय, 6-8 विकलत्रिक और 8 आतप	185 सागरोपम, 4 पल्योपम मनुष्य भाव अधिक नारक को ।
1-5 प्रथम संघयण छोड़ 5 संघयण, 6-10 प्रथम संस्थान छोड़ 5 संस्थान 11 अशुभ गति 12-15 अनंतानुबंधी चार कषाय 16 मिथ्यात्व 17 दुर्भग 18 दुःस्वर 19 अनादेय 20-22 थीणद्धित्रिक 23 नीच गोत्र 24 नपुंसक वेद 25 स्त्री वेद	132 सागरोपम, मनुष्य भव में अधिक यति भव आदि पंचेन्द्रिय को अबंध स्थिति

कोष्ठक 168 में अबंधकाल 132, 163 व 185 सागरोपम का कहा है, वह कैसे व कहां पूरा होता है ? उसका जवाब है—विजयादिक में दो बार $33 \times 2 = 66$ सागरोपम तथा अच्युत में तीन बार $22 \times 3 = 66$ कुल 132 सागरोपम का अबंध काल प्राप्त होता है। उपरोक्त में त्रैवेयक के 31 सागरोपम जोड़ने पर 163 तथा 1 अच्युत के 22 सागरोपम जोड़ने पर 185 सागरोपम होते हैं।

(162) 73 अधुवबंध का जघन्य-उत्कृष्ट निरंतर बंध

प्रकृति नाम	निरंतर बंध
1-2 सुर द्विक 3-4 वैक्रिय द्विक	तीन पल्योपम
1 तिर्यच गति, 2 तिर्यतानुपूर्वी 3 नीच गोत्र	तीन पल्योपम
चार आयु	एक अन्तर्मुहूर्त
औदारिक शरीर	असंख्य पुद्गल परावर्त काल
शाता वेदनीय	देश न्यून पूर्व करोड़ वर्ष
1 पराघात 2 उच्छ्वास 3 पंचेन्द्रिय 4-7 त्रस चतुष्क	132 सागरोपम
शुभ विहायोगति, पुरुष वेद, सुभगत्रिक, उच्चगोत्र, समचतुरस्र संस्थान, अशुभ विहायोगति, चार जाति, 5 अशुभ संघयण, 5 अशुभ संस्थान, आहारक द्विक, नरक गति, नरकानुपूर्वी, उद्योत, आतप, स्थिर, शुभ, यश, स्थावर दशक, नपुंसक वेद, स्त्री वेद, हास्य, रति, अरति, शोक अशाता वेदनीय	जघन्य-उत्कृष्ट-एक समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त
मनुष्य द्विक, जिन नाम, वज्रऋषभ नाराच, औदारिक अंगोपांग	33 सागरोपम, जघन्य-अन्तर्मुहूर्त

(163) उत्कृष्ट रसबंध स्वामी कोष्टक

प्रकृति का नाम	रस बंध के स्वामी
एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप	ईशानांत मिथ्यात्वी देवता बांधते हैं ।
1-3 विकलत्रिक, 4-6 सूक्ष्मत्रिक, 7 तिर्यच आयु 8 मनुष्य आयु 9-11 नरकत्रिक	मिथ्यात्वी तिर्यच, मनुष्य
तिर्यच गति, तिर्याचानुपूर्वी, सेवार्त संघयण	देवता, नरक
1-2 वैक्रिय द्विक, 3 देवगति 4 देवानुपूर्वी 5-6 आहारक द्विक 7 शुभ विहायोगति 8-11 शुभ वर्ण चतुष्क 12 तैजस 13 कार्मण 14 अगुरुलघु 15 निर्माण 16 जिन नाम 17 साता वेदनीय 18 समचतुरस्र 19 पराघात 20-21 त्रस दशक 30 पंचेन्द्रिय 31 उच्छ्वास 32 उच्च गोत्र	क्षपक श्रेणी में अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध करता है ।
उद्योत	सम्यक्त्व के अभिमुख 7वीं नरक का नारक
1 मनुष्य गति 2 मनुष्यानुपूर्वी 3-4 औदारिक द्विक 5 वज्रऋषभ नाराच संघयण	सम्यग् दृष्टि देवता
देवायु	7 अप्रमत्त
शेष प्रकृति	चार गति के मिथ्यात्वी

(164) जघन्य रस बंध

प्रकृति का नाम	रस बंध के स्वामी
1 स्त्यानर्द्धि, 2 प्रचला, 3 निद्रा निद्रा 4-7 अनंतानुबंधी कषाय 8 मिथ्यात्व	संयम सन्मुख मिथ्यात्वी
चार अप्रत्याख्यान	संयम सन्मुख अविरत सम्यग्दृष्टि
चार प्रत्याख्यान	देश विरति
अरति, शोक	प्रमत्त यति
आहारक द्विक	अप्रमत्त यति
31 उच्छ्वास 32 उच्च गोत्र	
1 निद्रा, 2 प्रचला, 3-6 शुभ वर्ण चतुष्क, 7 हास्य, 8 रति, 9,10, भय 11 उपघात	अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती
पुरुषवेद, संज्वलन चतुष्क	नौवें गुणस्थान वाला
5 अंतराय, 5 ज्ञानावरणीय 4 दशनावरणीय	क्षपक-10 वें गुणस्थान में
1-3 सूक्ष्मत्रिक 4-6 विकलत्रिक 7 आयु 8-13 वैक्रिय षट्क	मनुष्य, तिर्यच
1 उद्योत 2 आतप 3-4 औदारिक द्विक	देवता, नारकी
तिर्यच गति, तिर्यचानुपूर्वी, नीच गोत्र	उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख 7वीं नरक का नारक
जिन नाम	अविरत सम्यग्दृष्टि
एकेन्द्रिय, स्थावर	नरक छोड़ तीन गति वाले
आतप	सौधर्म के देवता
शाता, आशाता, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यश, अयश	सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि परावर्तमान मध्यम परिणाम
1 त्रस 2 बादर 3 पर्याप्त 4 प्रत्येक 5-8 अशुभ वर्ण-चतुष्क 9 तैजस 10 कार्मण 11 अगुरुलघु 12 निर्माण 13 मनुष्यगति 14 मनुष्यानुपूर्वी, 15 शुभविहायोगति 16 अशुभ विहायोगति 17 पंचेन्द्रिय 18 उच्छ्वास 19 पराघात 20 उच्चगोत्र 21-26 छ संघयण 27-32 छ संस्थान 33 नपुंसक वेद 34 स्त्री वेद 35 सुभग 36 सुस्वर 37 आदेय 38 दुर्भग 39 दुःस्वर 40 अनादेय	चार गति के मिथ्यात्वी

रस बंध समाप्त ।

**(165) प्रदेश बंध कोष्टक (मूल प्रकृति के उत्कृष्ट प्रदेश बंध के स्वामी)
शतक कर्मग्रंथ से**

मोहनीय	1,4,5,6,7 गुणस्थानवर्ती
आयु व मोहनीय को छोड़ शेष छ कर्म	10 गुणस्थानवर्ती ।

(166) उत्तर प्रकृति के उत्कृष्ट प्रदेश बंध का कोष्टक (शतक कर्म ग्रंथ से)

प्रकृति	गुणस्थान
1-5 पांच ज्ञानावरणीय, 6-9 चार दर्शनावरणीय 10 शाता वेदनीय 11 यश, 12 उच्च गोत्र 13-17 पांच अंतराय	10 गुणस्थानवर्ती
चार अप्रत्याख्यान कषाय	चार गुणस्थान में
चार प्रत्याख्यान	देश विरति गुणस्थान में
पुरुष वेद व संज्वलन कषाय	9वें गुणस्थान में
शुभ विहायोगति, 2 मनुष्य आयु 3 देव आयु 4 देवगति 5 देवानुपूर्वी 6 सुभग 7 सुस्वर 8 आदेय 9-10 वैक्रिय द्विक 11 समचतुरस्र 12 अशाता 13 वज्रऋषभ नाराच संघयण	सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि
निद्रा 2 प्रचला 3-8 हास्य षट्क तीर्थकर	अविरत सम्यग्दृष्टि
आहारक द्विक	अप्रमत्त
शेष 66 प्रकृति	मिथ्यात्वी

(167) जघन्य प्रदेश बंध स्वामी

प्रकृति	गुणस्थान
आहारक द्विक	अप्रमत्त यति
1-3 नरक त्रिक 4 देवायु	असंज्ञी पर्याप्त जघन्य योगी
देवद्विक 3-4 वैक्रिय द्विक 5 जिन नाम	मिथ्यात्व के अभिमुख सम्यग्दृष्टि
शेष 109 प्रकृति	अपने भव के प्रथम समय में सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जघन्य योगी

(168) सात बोल का अल्प बहुत्व

योगस्थान	स्तोक 1
प्रकृति भेद	असंख्य 2
स्थिति भेद	" 3
स्थिति बंध अध्यवसाय	" 4
अनुभाग स्थानक	" 5
कर्म प्रदेश	अनंत 6
रसच्छेद	" 7

(169) जीव बंध वर्गणा ग्रहण के बाद उसके कर्म का विभाजन

कर्म	विभाग
आयु	स्तोक
नाम	वि. 2
गोत्र	तुल्य 2
अंतराय	वि 3
ज्ञानावरणीय 1, दर्शनावरणीय 1 वि 4	वि 4
मोहनीय	" 5
वेदनीय	" 6

(170)

चार बंध भेद	प्रकृति	स्थिति बंध	अनुभाग बंध	प्रदेश बंध
अर्थ	स्वभाव	काल	रस	दल
दृष्टांत	वात आदि शमन	माह, अर्धमास आदि	खंड, शर्करा आदि	तोला, दो तोला
कारण	योग	कषाय	कषाय	योग
भेद संख्या	असंख्य	असंख्य	अनंत	अनंत
प्रमाण	श्रेणी का असंख्य भाग	श्रेणी का असंख्य भाग	अनंत	अनंत

(171)

संख्य	बंध प्रकृति 8	मूल प्रकृति 8	ज्ञाना. 1	दर्शना. 2	वेदनीय 3	मोहनीय 4	आयु 5	नाम 6	गोत्र 7	अंतराय 8
1	बंधस्थान	8,7 6,1	5	9,6,4	1	22,21 17,13,9 5,4,1	1	23,25 26,28 29,30,31	1	5
2	भुयस्कार	6,7,8	0	6,9	0	2,3,4,5 9,13,17 21,22	0	6	0	0
3	अल्पतर	7,6,1	0	6,4	0	17,13,9 5,4,3,2,1	0	7	0	0
4	अवस्थित	8,7 6,1	1	9,4	1	10	1	8	1	1
5	अवतत्त्व	0	1	4,6	0	1,17	1	3	1	1

अधिक बंध करे उसे 'भुयस्कार' कहते हैं, अल्प बंध करे उसे अल्पतर बंधक कहते हैं, जितने हो उतने ही बंध करे उस अवस्थित बंध कहते हैं और अबंधक होकर फिर बंध करे उसे अवक्तव्य कहते हैं— शेष अपनी बुद्धि से सोच लें ।

बंध कारण (कर्मग्रंथानुसार)	
ज्ञानावरणीय कर्म	मति आदि 5 ज्ञान. ज्ञानी साधु आदि, ज्ञान के साधन पुस्तक आदि का बुरा सोचना, गुरु के नाम को छिपाना, सर्वथा विनाश करना, अंतरंग अप्रीति, अंतराय करना, भोजन-पान, वस्त्र आदि में विघ्न डालना, अति आशातना करना, ज्ञान का अवर्णवाद करना, आचार्य-उपाध्याय का अविनय करना, अकाल में स्वाध्याय करना, छ काय की हिंसा करना ।
दर्शनावरणीय	दर्शन-चक्षु आदि चार, दर्शनी-साधु आदि, दर्शन-साधन-श्रोत्र, नयन आदि अथवा संमति-अनेकांत जय पताका आदि प्रमाण शास्त्र के पुस्तक आदि के विरुद्ध प्रवृत्ति, पूर्वोक्त ज्ञानावरण की तरह 10 बोल जान लें ।
शाता वेदनीय	1 गुरु-माता-पिता, धर्माचार्य की भक्ति 2 क्षमावान् 3 दयावान् 4 महाव्रतधारी 5 दशविध समाचारी वाला 6 बाल, वृद्ध, ग्लान की वैयावच्च करने वाला 7 भगवान् की पूजा में तत्पर, 8 सराग संयम 9 देश संयम 10 अकाम निर्जरा, 11 बाल तप ।
अशाता वेदनीय	1 गुरु की अवज्ञा करने वाला, 2 क्रोधी 3 निर्दयी 4 उत्कृष्ट कषाय वाला 5 कृपण 6 प्रमादी 7 हाथी, घोड़े, बैल आदि का निर्दयता से दमन, वाहन, लांछन आदि करने वाला 8 स्व-पर को दुःख, शोक, बंध, ताप, कंठ करने वाला । दर्शन मोहनीय ।
अदर्शन मोहनीय	1 उन्मार्ग उपदेशक 2 सन्मार्ग नाशक 3 देव द्रव्य का हरण करने वाला, 4 वीतराग-श्रुत-संघ-धर्म देवता का अवर्णवाद बोलने वाला, 5 जगत् में सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा बोलने वाला, 6 धर्म में दोष निकालने वाला 7 गुरु आदि का अपमान करने वाला ।
कषाय	कषाय कर परवश चित्त वाला होकर सोलह कषाय बांधता है ।
हास्य	1 उत्प्रासन, 2 कंदर्प, 3 प्रहास 4 उपहास 5 अश्लील बोलना 6 दीन वचन बोलना ।
रति	1 देश आदि देखने में उत्सुकता 2 चित्र, क्रीड़ा 3 परचित्तावर्जन ।
अरति	पाप शील, परकीर्ति नाशक, झूठी वस्तु में उत्साह ।
शोक	पर शोक प्रगट करने वाला, शोक करना, रोना ।
भय	1 स्वयं भय करना 2 दूसरे को भयभीत करना 3 संत्रास देना 4 निर्दय ।
जुगुप्सा	1 चतुर्विध संघ की जुगुप्सा करना, 2 सदाचार जुगुप्सा 3 समुच्चय जुगुप्सा ।
स्त्री वेद	1 ईर्ष्या 2 विषाद 3 गृद्धि 4 मृषावाद 5 वक्रता 6 परस्त्रीगमन ।
पुरुषवेद	1 स्वदार संतोष 2 अनीर्ष्या 3 मंद कषाय 4 अवक्रचारी ।
नपुंसकवेद	1 अनंग सेवी 2 तीव्र कषाय 3 तीव्र काम 4 पाखंडी 5 स्त्री का व्रत खंडन करने वाला ।
नरक आयु	1 महारंभ 2 महा परिग्रह 3 पंचेन्द्रिय वध 4 मांसाहार 5 रौद्र ध्यान 6 मिथ्यात्व 7 अनंतानुबंधी कषाय 8 कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, 9 अमृत भाषण 10 पर द्रव्यापहरण 11 बार बार मैथुन सेवन 12 इन्द्रिय वशवर्ती 13 अनुग्रह रहित 14 दीर्घकाल तक रोष रखने वाला ।

तिर्यच आयु	1 गूढ हृदय 2 शठ-मुंह से मीठा बोले व भीतर से भयंकर 3 शल्य सहित 4 उन्मार्ग देशक 5 सत्मार्ग नाशक 6 आर्तध्यानी 7 माया 8 आरंभ 9 लोभी 10 शीलव्रत में अतिचार 11 अप्रत्याख्यान कषाय 12 तीन अधम लेश्या ।
मनुष्य आयु	1 मध्यम गुण 2 अल्य परिग्रह 3,4 मार्दव 5 आर्जव स्वभाव 6 धर्म ध्यान में रागी 7 प्रत्याख्यान कषाय 8 संविभाग करने वाला, 9 देव-गुरु का पूजक 10 प्रिय बोले 11 प्रज्ञापनीयता वाला 12 लोक व्यवहार में मध्य परिणाम-स्वभाव में मंद कषाय, 13 क्षमावान् ।
देव आयु	1 अविरति सम्यग्दृष्टि 2 देश विरति 3 सराग संयम 4 बाल तपस्वी 5 अकाम निर्जरा 6 भले के साथ प्रीति 7 धर्म श्रवण शीलता 8 पात्र में दान 9 अज्ञात रूप से (अनजान में) सामायिक करे ।
शुभ नाम	1 माया रहित 2 तीन गारव से रहित 3 संसार भीरु 4 क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि गुणों से युक्त ।
अशुभ नाम कर्म	1 मायावी 2 गौरवान् 3 उत्कट क्रोध आदि परिणाम 4 दूसरों को ठगने वाला 5 मिथ्यात्व 6 वैशुन्य □ चलचित्र 8 सुवर्ण आदि में नकली मिश्रण करने वाला 9 झूठी साक्षी 10 वर्ण, गंध, रस, स्पर्श अन्यथा करना 11 अंगोपांग का छेदन करना 12 यंत्र-पिंजरे बनाना 13 झूठे तोल-माप रखना 14 आत्मप्रशंसा 15 पांच आश्रव का सेवन करना 16 महारंभ परिग्रह 17 कठोर भाषी 18 झूठ बोले 19 वाचाल 20 आक्रोश को 21 सामने वाले के सौभाग्य का नाश करना 22 कामण करना 23 कुतूहली, 24 चैत्याश्रय बिंब का नाश करना 25 चैत्य में अंग राग 23 दूसरी की मजाक करना 24 दूसरों की विडंबना करना 25 वेश्या आदि को अलंकार देना 26 वन में आग लगाना 27 देवता के बहाने गंध आदि की चोरी करना 28 तीव्र कषाय ।
शुभ नाम	संसार भीरु 1 अप्रमादी 2, सरल स्वभाव 3, क्षमावान् 4, सहधर्मी का सम्मानक 5, परोपकारी 6, सार को ग्रहण करने वाला ।
उच्चगोत्र	1 यथावत गुण बोले 2 दूषण में उदासीन 3 अष्ट मंद रहित 4 स्वयं ज्ञान पठन करे 5 दूसरों को पढ़ाए 6 अल्प बुद्धि हो तो पढ़ाने वाले का बहुमान से अनुमोदन करे 7 जिन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, चैत्य, साधु, गुणगरिष्ठ के विषय में भक्ति, बहुमान करना ।
नीच गोत्र	1 परनिंदा 2 उपहास 3 सत् गुण लोपन 4 असत् दोष कथन 5 अपनी कीर्ति की इच्छा करे 6 अपना दोष छिपाए 7 आठ मद करने वाला ।
अंतराय कर्म	1 तीर्थंकर की पूजा में विघ्न करे 2 हिंसा आदि पांच आश्रव का सेवन करे 3 रात्रि भोजन आदि करे 4 ज्ञान, दर्शन, चारित्र में विघ्न करे 5 साधु को दे रहे भोजन, पान, उपाश्रय, उपकरण, औषध आदि में विघ्न करे, 6 अन्य प्राणी के दान, लाभ, भोग, परिभोग में विघ्न करे 7 मंत्र आदि द्वारा दूसरे के वीर्य का हरण करे 8 वध-बंधन करे 9 जीवों का छेदन-भेदन करे 10 इन्द्रियों का नाश करे ।

अष्ट कर्म बंधकारण सम्पूर्ण ।

युगपत् बंध हेतु (पंचसंग्रह से)

पृथक्-पृथक् गुणस्थानों में पांच प्रकार का मिथ्यात्व, एक-एक मिथ्यात्व में छह-छह काया, इस प्रकार 30 भंग होते हैं। एक-एक इन्द्रिय (पांच) से गुणने पर $30 \times 5 = 150$ होते हैं। ऐसे ही 1-1 युग्म के साथ $150 \times 2 = 300$ होते हैं। तीन वेद से गुणने पर $30 \times 3 = 900$ होते हैं और चार कषायों से गुणने पर $900 \times 4 = 360$ तथा दस योग से गुणने पर $3600 \times 10 = 36000$ भंग होते हैं।

1 मिथ्यात्व, 1 काय, 1 इन्द्रिय, 1 युगल (दो में से), 3 क्रोधादि त्रिक (अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान संज्वलन) दस योग में से एक योग-इस प्रकार बंध के 10 हेतु से 36000 भंग होते हैं।

पूर्वोक्त 10 में भय जोड़ने पर 11 होते हैं। उसके विकल्प पूर्ववत् 36000 होते हैं। जुगुप्सा के भी 36000 होते हैं अथवा अनंतानुबंधी डालने पर 11 होते हैं और 13 योग समझने चाहिये—वहां 46800 भंग होते हैं अथवा काय द्वय वध संयोग डालने पर ग्यारह संयोग वियोग में पूर्ववत् 90000 भंग होते हैं - इस प्रकार ग्यारह संयोग के कुल 208800 भंग होते हैं।

पूर्वोक्त 10 में भय व जुगुप्सा डालने पर 12 होते हैं। उसके भंग 36000 अथवा अनंतानुबंधी युक्त भय करें वहां 13 योग में 46800 भंग होते हैं। अनंतानुबंधी में जुगुप्सा डालने पर भी 46800 भंग होते हैं, अथवा त्रिकायवध डालने पर पूर्ववत् 90000 भंग होते हैं तब पूर्ववत् 120000 भंग होते हैं। अनंतानुबंधी द्विकायवध में भय डालने पर पूर्ववत् 90000 भंग होते हैं। द्विकायवध के साथ जुगुप्सा डालने पर 90000 भंग होते हैं। द्विकायवध डालने पर पूर्ववत् 117000 भंग होते हैं, इस प्रकार बारह के संयोग से कुल 546600 भंग होते हैं।

पूर्वोक्त दस तथा भय, जुगुप्सा और अनंतानुबंधी युक्त 13 होते हैं। यहां 13 के संयोग में 46800 भंग होते हैं। चार काय का वध प्रक्षेप करने पर 13 होते हैं। वहां 15 संयोग के कुल 90000 भंग होते हैं। त्रिकाय वध तथा भय के प्रक्षेप करने पर 1,20,000 भंग होते हैं। तीन काय व जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 1,20,000 भंग होते हैं।

तीन काय वध व अनंतानुबंधी प्रक्षेप करने पर 156000 भंग होते हैं।

दो काय वध तथा भय-जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 90000 भंग होते हैं।

दो काय वध व अनंतानुबंधी प्रक्षेप करने पर 117000 भंग होते हैं।

दो काय वध व अनंतानुबंधी-जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 1,17,000 भंग होते हैं। इस प्रकार 13 संयोग के कुल 856800 भंग होते हैं।

चौदह संयोग – पूर्वोक्त दस के साथ पांच काय वध (एक काय वध तो पूर्वोक्त 10 में ही है) जोड़ने पर 14 होते हैं। वहां षट्-पांच के संयोग के पूर्ववत् 36000 भंग होते हैं। चार काय वध व भय का प्रक्षेप करने पर 90000 भंग होते हैं।

चार काय वध व जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 90000 भंग होते हैं।

चार काय वध व अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 117000 भंग होते हैं।

तीन काय वध व भय-जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 120000 भंग होते हैं।

तीन काय वध व भय-अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 156000 भंग होते हैं।

तीन काय वध व तथा जुगुप्सा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 156000 भंग होते हैं ।
दो काय वध तथा भय-जुगुप्सा-अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 156000 भंग होते हैं ।
इस प्रकार 14 संयोग के कुल 882000 भंग होते हैं ।

पंद्रह संयोग – पूर्वोक्त 10 में छह काय वध जोड़ने पर 15 होते हैं । वहां षट्काय योग के पूर्ववत् 6000 भंग होते हैं ।

पांच काय वध तथा भय का प्रक्षेप करने पर 36000 भंग होते हैं ।

पांच काय वध तथा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 36000 भंग होते हैं ।

पांच काय वध तथा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 46800 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा भय-जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 90000 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा भय-अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 117000 भंग होते हैं ।

तीन काय वध तथा भय जुगुप्सा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 156000 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 15 के कुल 604800 भंग होते हैं ।

16 – पूर्वोक्त 10 में छह काय वध भय मुक्त 16 होते हैं—वहां 6000 भंग होते हैं ।

छह काय वध जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 6000 भंग होते हैं ।

छह काय वध अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 7800 भंग होते हैं ।

पांच काय वध भय अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 46800 भंग होते हैं ।

पांच काय वध भय जुगुप्सा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 46800 भंग होते हैं ।

चार काय वध भय जुगुप्सा व अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 117000 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 16 समुदाय के कुल 266400 भंग होते हैं ।

17— पूर्वोक्त 10 में छह काय वध , भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 17 होते हैं । वहां 6000 भंग होते हैं ।

छह काय वध भय तथा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 7800 भंग होते हैं ।

छह काय वध जुगुप्सा तथा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 7800 भंग होते हैं ।

पांच काय वध भय—जुगुप्सा तथा अनंतानुबंधी का प्रक्षेप करने पर 46800 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 17 संयोग के कुल 68400 भंग होते हैं ।

18 – पूर्वोक्त 10 , छह काय वध , भय , जुगुप्सा व अनंतानुबंधी युक्त 18 होते हैं और उसके 7800 भंग होते हैं ।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के कुल भंग 3477600 होते हैं ।

अनंतानुबंधी रहित योग के कारण – अनंतानुबंधी के उदय में 13 योग होते हैं किंतु 10 नहीं । इसका कारण कहते हैं— उद्वेलन करते हुए अनंतानुबंधी की सम्यग्दृष्टि प्राप्त मिथ्यात्व उदय नहीं होता तब तक संक्राम आवलिका अनंतानुबंधी उदय उस उदय के अभाव में उसके नाश का भी अभाव है । भवतंत्र के अभाव से वैक्रियमिश्र 1 , औदारिक मिश्र 1 , कार्मण 1 इन तीनों का अभाव है । इसलिए अनंतानुबंधी भय जुगुप्सा के विकल्प के उदय में तथा उत्तर पद में हेतु का अभाव सूचित है ।

अब सास्वादन के विषय में कहते हैं—सास्वादन में मिथ्यात्व के अभाव से प्रथम पद के लुप्त होने पर शेष पूर्वोक्त नौ अनंतानुबंधी के विकल्प में दस का उदय होता है । 6,5,2,3,4,13 इस चक्र के विषय में प्रथम वेदन के 3 के योग को गुणा करके एक कम किया जाता है , जैसे प्रत्येक वेद में तेरह योग हैं और वे 39 हुए । नपुंसक वेद में वैक्रियमिश्र नहीं है । एक निकालने पर 38 रह जाते हैं । इन 38 करके प्रत्येक काय के 228 गुणने पर होते हैं । इन 228 को प्रत्येक इन्द्रिय व्यापार से गुणने पर 1140 हुए । इन 1140 को प्रत्येक जोड़ को गुणने से 2280 हुए । 2280 को प्रत्येक कषाय को चार से गुणने पर 9120 हुए । इतने हेतु समुदाय होते हैं ।

पूर्वोक्त 10 और द्विकाय वध युक्त 11 होते हैं , वहां पूर्ववत् 22800 भंग होते हैं । भय डालने पर 11 होते हैं , 9120 भंग होते हैं जुगुप्सा डालने पर 1920 भंग होते हैं । इस प्रकार 11 समुदाय के कुल 41040 भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त 10 में तीन काय वध का प्रक्षेप करने पर 12 होते हैं । वहां भी पूर्वोक्त 30400 भंग होते हैं अथवा द्विकाय वध युक्त भय प्रक्षेप करने पर 12 होते हैं , वहां भी 22800 भंग होते हैं । दो कायवध तथा जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 22800 भंग होते हैं अथवा भय जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 9120 भंग होते हैं । इस प्रकार 12 समुदाय के कुल 85120 भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त 10 में चार काय वध जोड़ने पर 13 होते हैं और उसके 22800 भंग होते हैं ।

भय तथा तीन काय वध का प्रक्षेप करने पर 30400 भंग होते हैं ।

तीन काय वध व जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 30400 भंग होते हैं ।

दो काय वध व भय जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 22800 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 13 संयोग के कुल 106400 भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त 10 में 5 काय वध जोड़ने पर 14 होते हैं । वहां 9120 भंग होते हैं ।

चार काय वध का प्रक्षेप करने पर 22800 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 22800 भंग होते हैं ।

तीन काय वध भय तथा जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 30400 भंग होते हैं ।

सब मिलकर 85120 भंग होते हैं ।

15 का समुदाय — पूर्वोक्त 10 में छह काय वध जोड़ने पर 15 होते हैं ।

पांच काय वध का प्रक्षेप करने पर 9120 भंग होते हैं ।

पांच काय वध में जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 9120 भंग होते हैं ।

चार काय वध में भय—जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 22800 भंग होते हैं ।

ये सब मिलकर 42560 भंग होते हैं ।

16 का समुदाय — पूर्वोक्त 10 तथा षट्काय वध-भय युक्त 16 होते हैं । उसके 1520 भंग होते हैं । षट्काय वध के साथ जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 1520 भंग होते हैं ।

पांच काय वध भय व जुगुप्सा प्रक्षेप करने पर 9120 भंग होते हैं ।

कुल मिलाकर 12160 भंग होते हैं ।

17 का समुदाय— पूर्वोक्त 10, षट्काय वध भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 17 होते हैं, उसके कुल 1520 भंग होते हैं।

इस प्रकार पूर्वोक्त सास्वादन के बंध हेतु इकट्ठा करने पर 383040 भंग होते हैं।

मिश्रदृष्टि के बंध हेतु — मिश्रदृष्टि में पूर्वोक्त 10 में से अनंतानुबंधी छोड़कर शेष 9 होते हैं। छह काय वध व पांच इन्द्रिय के $6 \times 5 = 30$ भंग होते हैं। एक-एक युगल से गुणने पर $30 \times 2 = 60$ होते हैं। तीन वेद से गुणने पर $60 \times 3 = 180$ होते हैं और चार कषाय से गुणने पर $180 \times 4 = 720$ होते हैं। उन्हें दस योग से गुणने पर $720 \times 10 = 7200$ होते हैं।

10 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 में द्विकाय वध जोड़ने पर 10 होते हैं, उसके पहले की तरह 18000 भंग होते हैं।

भय का प्रक्षेप करने पर 7200 भंग होते हैं।

इस प्रकार 10 के समुदाय में कुल 32400 भंग होते हैं।

11 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 व त्रिकाय वध 11 होते हैं। उसके 24000 भंग होते हैं। द्विकाय वध के साथ भय जोड़ने पर 18000 भंग होते हैं। द्विकाय वध के साथ जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 18000 भंग होते हैं।

भय व जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 7200 भंग होते हैं।

इस प्रकार कुल 67200 भंग होते हैं।

12 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 में चार काय वध जोड़ने पर 12 होते हैं और उसके 18000 भंग होते हैं।

तीन काय वध में भय का प्रक्षेप करने पर 24000 भंग होते हैं।

दो काय वध में जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 18000 भंग होते हैं।

13 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 में पांच काय वध जोड़ने पर 13 होते हैं उसके 7200 भंग होते हैं।

चार काय वध में भय का प्रक्षेप करने पर 18000 भंग होते हैं।

चार काय वध में जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 18000 भंग होते हैं।

त्रिकाय वध में भय—जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 24000 भंग होते हैं।

इस प्रकार 13 के समुदाय के कुल 67200 भंग होते हैं।

14 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 के साथ छह काय वध जोड़ने पर 14 होते हैं।

इसके 1200 भंग होते हैं।

पांच काय वध में भय जोड़ने पर 7200 भंग होते हैं।

पांच काय वध में जुगुप्सा जोड़ने पर 7200 भंग होते हैं।

चार काय वध में भय—जुगुप्सा जोड़ने पर 18000 भंग होते हैं।

इन सब को जोड़ने पर 33600 भंग होते हैं।

15 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 में छह काय वध व भय जोड़ने पर 15 होते हैं, उसके 1200 भंग होते हैं।

छह काय वध में जुगुप्सा जोड़ने पर 1200 भंग होते हैं ।

पांच काय वध, भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 7200 भंग होते हैं ।

इस प्रकार कुल 9600 भंग होते हैं ।

16 का समुदाय – पूर्वोक्त 9 में छह काय वध व भय, जुगुप्सा जोड़ने पर 16 होते हैं, उसके 1200 भंग होते हैं ।

समस्त मिश्रदृष्टि के कुल भंग 3024000 होते हैं ।

अविरति बंध के हेतु

1 काया, 1 इन्द्रिय, 1 युग्म, 1 वेद, तीन कषाय, 1 योग, ये 9 हेतु जघन्य से होते हैं ।
6-5-2-3-4-3 ।

यहां प्रथम योग को वेद से गुणने के बाद पूर्वोक्त भंग में से चार निकालने पर 35 शेष रहते हैं । शेष अंक से गुणने पर 8400 भंग होते हैं । इन 9 के समुदाय की भावना पहले कह दी गई है ।

पूर्वोक्त 9 में दो काय वध जोड़ने पर 10 होते हैं । उसके कुल 21000 भंग होते हैं ।
भय डालने पर 8400 भंग होते हैं । जुगुप्सा डालने पर 8400 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 10 समुदाय के कुल 37800 भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त 9 में तीन काय वध जोड़ने पर 11 होते हैं, उसके 28000 होते हैं ।

दो काय वध में भय जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

दो काय वध में जुगुप्सा जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

जुगुप्सा व भय जोड़ने पर 8400 भंग होते हैं ।

इस प्रकार सब मिलाकर 78400 भंग होते हैं ।

12 का समुदाय – पूर्वोक्त 9 में चार काय वध जोड़ने पर 12 होते हैं । वहां पूर्ववत् 21000 भंग होते हैं ।

तीन काय वध व भय जोड़ने पर 28000 भंग होते हैं ।

तीन काय वध व जुगुप्सा जोड़ने पर 28000 भंग होते हैं ।

दो काय वध व भय-जुगुप्सा जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

इन सबको जोड़ने पर 12 के समुदाय के कुल 98000 भंग होते हैं ।

13 का समुदाय – पूर्वोक्त 9 में पांच काय वध जोड़ने पर 13 होते हैं । उसके 8400 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा भय जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा जुगुप्सा जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

तीन काय वध, भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 28000 भंग होते हैं ।

इस प्रकार कुल 78400 भंग होते हैं ।

14 का समुदाय – पूर्वोक्त 9 में छह काय वध जोड़ने पर 14 होते हैं । उसके 1400 भंग होते हैं ।

पांच काय वध व भय जोड़ने पर 8400 भंग होते हैं ।

पांच काय वध तथा जुगुप्सा जोड़ने पर 8400 भंग होते हैं ।

चार काय वध तथा भय—जुगुप्सा जोड़ने पर 21000 भंग होते हैं ।

ये सब मिलकर 39200 भंग होते हैं ।

15 का समुदाय — पूर्वोक्त 9 में छह काय वध तथा भय जोड़ने पर 15 होते हैं । उसके 1400 भंग होते हैं ।

छह काय वध व जुगुप्सा जोड़ने पर 1400 भंग होते हैं ।

पांच काय वध, भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 8400 भंग होते हैं ।

ये सब मिलकर 11200 भंग होते हैं ।

16 का समुदाय — पूर्वोक्त 9, छह काय वध, भय व जुगुप्सा जोड़ने पर 16 होते हैं, उसके 1400 भंग होते हैं ।

ये सब मिलकर अविरति बंध के कुल 352800 भंग होते हैं ।

देश विरति के बंध स्थान — देश विरति में त्रस काय के पच्चक्खाण होते हैं । इस कारण उसके दो, तीन, चार व पांच के संयोग होते हैं, उसके आठ हेतु हैं — 1 काय, 1 इन्द्रिय, 1 युग्म, 1 वेद, दो कषाय, 1 योग । चक्र रचना $5 \times 5 \times 2 \times 3 \times 4 \times 11$

एक—एक काय में पांच इन्द्रिय के 25 भंग होते हैं, उसे युग्म से गुणने पर 50, वेद से गुणने पर 150, उसे चार कषाय से गुणने पर 600 तथा उसे 11 योग से गुणने पर 6600 भंग होते हैं ।

पूर्वोक्त आठ में दो काय वध जोड़ने पर 9 होते हैं उसके 13200 भंग होते हैं ।

भय का प्रक्षेप करने पर 6600 भंग होते हैं ।

जुगुप्सा का प्रक्षेप करने पर 26400 भंग होते हैं ।

इन सबको जोड़ने पर 26400 भंग होते हैं ।

10 का समुदाय — पूर्वोक्त आठ में तीन काय वध जोड़ने पर 10 होते हैं । तीन संयोग यहां 10 होते हैं, उसके 13200 भंग होते हैं । दो काय वध में भय जोड़ने पर 10 होते हैं, यहां 10 द्विक संयोग है, उनके 13200 भंग होते हैं ।

तीन काय वध में जुगुप्सा डालने पर 13200 भंग होते हैं ।

दो काय वध के साथ भय, जुगुप्सा जोड़ने पर 13200 भंग होते हैं ।

द्विकाय वध जुगुप्सा जोड़ने पर 23200 भंग होते हैं । भय अथवा जुगुप्सा जोड़ने पर 20 हुए । इस प्रकार 6600 भंग हुए । कुल 46200 भंग होते हैं ।

13 का समुदाय — पूर्वोक्त 8 में 5 काय वध जोड़ने पर 13 होते हैं । उसके 1320 भंग होते हैं ।

चार काय वध में भय—जुगुप्सा के कुल 6600 भंग होते हैं ।

इस प्रकार 13 संयोग के कुल 9240 भंग होते हैं ।

14 का समुदाय — पूर्वोक्त 8 तथा पांच काय वध, भय, जुगुप्सा जोड़ने पर 14 होते हैं, उसके 1320 भंग होते हैं ।

इन सबको जोड़ने पर देश विरति के कुल 163680 भंग होते हैं ।

प्रमत्त गुणस्थान के बंध हेतु – प्रमत्त गुणस्थान में स्त्री वेद में आहारक व आहारक मिश्र नहीं होता है ।

अप्रमत्त में आहारक द्विक नहीं है ।

प्रमत्त यंत्र 2, 1, 1, 1, 2, 3, 4, 13

प्रमत्त आदि के 5 हेतु हैं - 2 युग्म, 3 वेद, 4 कषाय व योग ।

13 योग को तीन वेद से गुणने पर 39 होते हैं । दो निकालने पर 37 रहते हैं । युग्म से गुणने पर 74 होते हैं । कषाय से गुणने पर 216 होते हैं ।

पूर्वोक्त 5 में भय प्रक्षेप करने पर 296 भंग होते हैं ।

जुगुप्सा डालने पर 296 भंग होते हैं ।

भय डालने पर 7 हेतु होते हैं, उसके 296 भंग होते हैं ।

ये सब मिलाकर प्रमत्त गुणस्थान के कुल 1184 भंग होते हैं ।

अप्रमत्त गुणस्थान के बंध हेतु– 2, 1, 1, 1, 2, 3, 4, 11

वेद से योग गुणने पर 33 होते हैं । एक रूप निकालने पर 32 रहते हैं, उसे युग्म से गुणने पर 64 होते हैं, कषाय से गुणने पर 256 होते हैं ।

भय के साथ कुल 256 भंग होते हैं ।

जुगुप्सा के साथ 256 भंग होते हैं ।

कुल मिलाकर 1024 भंग होते हैं ।

अपूर्वकरण – कोष्ठक 2, 1, 1, 1, 2, 3, 4, 9 युग्म से वेद गुणने पर 6 होते हैं, उन्हें कषाय से गुणने पर 24 होते हैं । उन्हें 9 योग से गुणने पर 216 होते हैं ।

भय डालने पर 216 भंग होते हैं ।

जुगुप्सा डालने पर 216 भंग होते हैं ।

उभय जोड़ने पर 7 होते हैं, उसके 216 भंग होते हैं ।

इन सबको जोड़ने पर 864 भंग होते हैं ।

बादर संपराय के बंध हेतु – 1, 1, 4, 9 चार कषाय व 9 योग । द्विक संयोग में 36 होते हैं ।

बादर पांच बंधक के वेद का भी उदय होता है, इस कारण वेद का प्रेक्षप करने पर तीन हेतु से 108 भंग होते हैं । इन सबके कुल 144 भंग होते हैं ।

सूक्ष्म संपराय के बंध हेतु – एक कषाय एक योग से 9 योग के साथ 9 द्विक योग होते हैं । उपशांत के 9 हेतु हैं । इसी प्रकार क्षीणमोही के 9 व सयोगी के 7 हेतु हैं ।

सर्व गुणस्थान के विशेष बंध हेतु 4682770 हैं ।

बंध हेतु समाप्त

इतिश्री आत्माराम संकलनायां बंधतत्त्वमष्टमम् संपूर्णम् ।

मोक्ष-तत्त्व-9

अब नौवां मोक्ष तत्त्व लिखते हैं ।

(172) गुण श्रेणिरचना कोष्ठक शतक से

	सम्यक्त्व प्राप्ति आदि	निर्जरा	काल अल्प बहुत्व
1	सम्यक्त्व प्राप्ति	स्तोक	असंख्य 11
2	देश विरति	असंख्य गुण	10
3	सर्व विरति		9
4	अनंतानुबंधी विसंयोजन		8
5	दर्शन मोहनीय क्षय		7
6	उपशम श्रेणी चढ़ता हुआ		6
7	उपशांत मोह ग्यारहवें		5
8	क्षपक श्रेणी चढ़ता हुआ		4
9	क्षीण मोह		3
10	सयोगी केवली		2
11	अयोगी केवली		स्तोक 1

(173) उपशम श्रेणी कोष्ठक (आवश्यक निर्युक्ति से)

				संज्वलन लोभ			
अप्रत्याख्यान लोभ				प्रत्याख्यान लोभ			
				संज्वलन माया			
अप्रत्याख्यान माया				प्रत्याख्यान लोभ			
				संज्वलन मान			
अप्रत्याख्यान मान				प्रत्याख्यान मान			
				संज्वलन क्रोध			
अप्रत्याख्यान क्रोध				प्रत्याख्यान क्रोध			
				पुरुष वेद			
हास्य		रति		शोक		अरति	
						भय	
						जुगुप्सा	
				स्त्री			
				नपुंसक			
मिथ्यात्व मोह				मिश्र मोहनीय		सम्यक्त्व मोनीय	
तानुबंधी क्रोध				अनंतानुबंधी मान		अनंतानुबंधी माया	
						अनंतानुबंधी लोभ	

क्षपक श्रेणि का स्वरूप (आवश्यक निर्युक्ति से)

चरम समय में पांच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पांच अंतराय इन 14 का क्षय होता है।

बारहवें गुणस्थान में जब दो समय बाकी रहते हैं तब पहले समय में निद्रा, प्रचला, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, प्रथम संघयण छोड़ कर शेष पांच संघयण, प्रथम संस्थान छोड़ कर पांच संस्थान, तीर्थकर नाम कर्म व आहारक द्विक इन 11 प्रकृति का जीव क्षय करता है। यदि तीर्थकर हो तो 11 प्रकृति का तथा न हो तो तीर्थकर छोड़कर 18 प्रकृति का क्षय करता है।

(174)

		संज्वलन लोभ संज्वलन माया संज्वलन मान संज्वलन क्रोध पुरुष वेद			
हास्य	रति	शोक	अरति	भय	जुगुप्सा
		स्त्री वेद खपाना			
		नपुंसक वेद			
अप्र. क्रोध	अप्र. मान	अप्र. माया	अप्र. लोभ	प्र.मान	प्र.माया
			प्र. लोभ		प्र.लोभ
		सम्यक्त्व मोहनीय			
		मिश्र मोहनीय			
		मिथ्यात्व मोहनीय			
अनंता. क्रोध	अनंता. मान	अनंता. माया	अनंता. लोभ		

आठ कषाय खपाने के बाद पीछे रहे कुछ कषाय खपाते समय बीच में 17 प्रकृति नाश होती हैं, उनके नाम यह हैं- नरक गति, नरकानुपूर्वी, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि 4 जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, निद्रानिद्रा, प्रचला, थीणद्धि, अन्त में नपुंसकवेद और स्त्रीवेद खपाता है।

(175) अब सीझण द्वार लिखते हैं। (मलगिरि कृत नंदी टीका से)

	बोल संख्या नाम	द्रव्य परिमाण	निरंतर सीक्ष
1	ऊर्ध्व लोक में उत्कृष्ट	4	2
2	समुद्र में उत्कृष्ट सर्वत्र	2	2
3	सामान्य जल में	4	2
4	तिर्यग् लोक में	108	8
5	अधो लोक में	20 पृथक्	4
6	नंदन वन में	4	2

7	पांडुक वन में	4	2
8	एक-एक विजय में	20,20	2
9	30 सर्व अकर्ण भूमि में	10,10	4
10	15 कर्म भूमि में	108	8
11	काल द्वारे सुषम सुषम	10	4
12	" सुषभ	10	4
13	" सुषम दुषम	108	8
14	" दुषम सुषम	108	8
15	काल द्वारे दुषम	20	4
16	" दुषम दुषम	10	4
17	गति द्वारे देव गति	108	8
18	शेष तीन गति	10,10	4
19	रत्न प्रभा	10	4
20	शर्करा प्रभा	10	4
21	वालुका प्रभा	10	4
22	पंकप्रभा	4	2
23	पृथ्वी अप्काय	4,4	2,2
24	वनस्पतिकाय	6	2
25	तीर्थच पंचेन्द्रिय पुरुष	10	4
26	" " स्त्री	10	4
27	सामान्य मनुष्य गति	20	4
28	मनुष्य पुरुष	10	4
29	मनुष्य स्त्री	20	4
30	भवनपति देव	10	4
31	भवनपति देवी	5	2
32	व्यंतर	10	4
33	व्यंतर देवी	5	2
34	ज्योतिषी देव	10	4
35	ज्योतिषी देवी	20	4
36	वैमानिक देव	108	8
37	वैमानिक देव	20	4
38	पुरुष मरकर पुरुष	108	8
39	शेष भंग में 8	10,10	4

40	तीर्थ द्वारे तीर्थकर	4	2
41	स्वयंबुद्ध	4	2
42	बुद्धबोधित	108	8
43	स्त्री	20	4
44	तीर्थकरी	2	2
45	लिंगे द्वारे गृहस्थ लिंगे	4	2
46	अन्य लिंगी	10	4
47	स्व लिंगी	108	8
48	चारित्र द्वारे-सामा. सूक्ष्म यथा.	108	8
49	" सा. छेदो. सूक्ष्म यथा.	108	4
50	सा.प.सूक्ष्म यथा.	10	4
51	सा. छे. परिहार, सूक्ष्म, यथा.	10	4
52	बुद्ध द्वारे प्रत्येक बुद्ध	10	4
53	बुद्ध बोधितं पुरुष	108	8
54	" स्त्री	20	4
55	" नपुंसक	10	4
56	बुद्धि बोधित स्त्री	20	4
57	" पुरुष सामान्य	20 पृथग्	4
58	ज्ञान द्वारे-मति, श्रुत	4	2
59	मति, श्रुत मनः पर्याय	10	4
60	मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय	108	8
61	मति, श्रुत अवधि	108	8
62	अवगाहना द्वार-जघन्य	4	2
63	मध्य	108	8
64	उत्कृष्ट	2	2
65	उत्कृष्ट द्वारे सम्यक्त्व से अच्युत	4	2
66	संख्या-असंख्यकाल च्युत	10,10	4,4
67	अनंतकाल का पतित	108	8

सांतर द्वार – में 103 से लेकर 108 तक सिद्ध हो तो एक समय बाद अवश्य अंतर पड़ता है । 97 से लेकर 102 तक दो समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।

85 से लेकर 96 तक तीन समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।

73 से लेकर 84 तक चार समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।

61 से लेकर 72 तक पांच समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।
 49 से लेकर 60 तक पांच समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।
 33 से लेकर 48 तक सात समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।
 33 से लेकर 48 तक सात समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।
 1 से लेकर 32 तक आठ समय तक निरंतर सिद्ध होते हैं ।

गणन द्वार, पूर्ववत्, जघन्य 1, 2 यावत् 32, इस प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये ।

(176) क्षेत्र द्वार, अंतरद्वार लिखते हैं। सांतर

1.	जंबूद्वीप धातकी खंड में	पृथक् वर्ष
2.	जंबूद्वीप तथा धातकी खंड विदेह में	" "
3.	पुष्कर द्वीप तथा उसके विदेह में	साधिक एक वर्ष
4.	काल द्वार में भरत, ऐरावत में जन्म आश्रित	युगल काल न्यून 18 कोटा कोटि साग०
5.	साधारण आश्रित-भरत ऐरावत में	संख्य हजार वर्ष
6.	नरक गति से आया हो और उपदेश से सीझने पर	1000 वर्ष
7.	नरक गति से आया हो और उपदेश से सीझने पर	संख्येय सहस्र वर्ष
8.	तिर्यचगति से आया हो और उपदेश से सीझने पर	पृथक् 100 वर्ष
9.	अनंतरोक्त तिर्यच के हेतु से सीझने पर	संख्येय सहस्र वर्ष
10.	तिर्यच स्त्री के, मनुष्य के, मनुष्य स्त्री के, सौधर्म, ईशान को छोड़कर सभी देव-देवी से आया हो ।	साधिक एक वर्ष
11.	अनंतरोक्त बोल हेतु से	संख्येय सहस्र वर्ष
12.	पृथ्वी, अप्, वनस्पति, गर्भज, प्रथम, द्वितीय-नरक, सौधर्म, ईशान देव का	"
13.	वेद द्वारा में – पुरुष वेद	साधिक एक वर्ष
14.	स्त्री-नपुंसक वेद	संख्येय सहस्र वर्ष
15.	पुरुष मरकर पुरुष हो	साधिक एक वर्ष
16.	शेठ आठ भंग में	संख्येय सहस्र वर्ष
17.	तीर्थ द्वार-तीर्थकर	पृथक् सहस्र वर्ष
18.	तीर्थकरी	अनंत काल
19.	अतीर्थकर	साधिक एक वर्ष
20.	नो तीर्थ सिद्ध-प्रत्येक बुद्ध	संख्येय सहस्र वर्ष
21.	लिंग द्वार – अन्य लिंग – गृह लिंग	संख्येय सहस्र वर्ष
22.	स्वलिंग	साधिक एक वर्ष
23.	चारित्र द्वार – सामायिक, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात	साधिक एक वर्ष

24.	सामायिक, छेदोपस्था, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात	कुछ न्यून 18 कोटा कोटि सागरोपम
25.	सामा. परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसंप, यथा.	"
26.	सामा. छेदो. परिहार, सूक्ष्म यथा.	"
27.	बुद्ध द्वार – बुद्ध बोधित	साधिक एक वर्ष
28.	बुद्धि बोधित स्त्री, प्रत्येक बुद्ध	संख्येय सहस्र वर्ष
29.	स्वयं बुद्ध	पृथक् " "
30.	ज्ञान द्वार – मति, श्रुत	पल्य का असंख्य भाग
31.	मति, श्रुत अवधि	साधिक एक वर्ष
32.	मति, श्रुत, मनः पर्याय	संख्येय सहस्र वर्ष
33.	मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्याय	"
34.	अवगाहना द्वार – जघन्य, उत्कृष्ट, यव मध्यम	श्रेणी का असंख्य भाग
35.	अजघन्य – उत्कृष्ट अवगाहना	साधिक एक वर्ष
36.	उत्कृष्ट द्वार - अप्रतिपतित सम्यक्त्व	सागरोपम का असंख्य भाग
37.	संख्य, असंख्य काल का पतित	संख्येय सहस्र वर्ष
38.	अनंत काल का पतित	साधिक एक वर्ष
39.	निरंतर द्वार	
40.	सांतर द्वार	संख्येय सहस्र वर्ष

अल्पबहुत्व द्वार में – चार-चार सिद्ध और दस-दस सिद्ध परस्पर तुल्य हैं। उसकी अपेक्षा बीस सिद्ध और पृथक् बीस सिद्ध थोड़े हैं। उसकी अपेक्षा 108 सिद्ध संख्येय गुण हैं।

परंपरा सिद्ध स्वरूप – द्रव्य परिमाण में सर्व जगत् के ढाईद्वीप में अनंत – अनंत हैं। अंतर का असंभव होने से।

(177)

	नाम	अल्प बहुत्व
1.	समुद्र सिद्ध	1 स्तोक
2.	द्वीप सिद्ध	2 संख्येय गुणा
3.	जल सिद्ध	1 स्तोक
4.	स्थल सिद्ध	2 संख्येय गुणा
1.	ऊर्ध्व लोक सिद्ध	1 स्तोक
2.	अधो लोक सिद्ध	2 संख्येय गुणा
3.	तिर्यग् लोक सिद्ध	3 संख्येय गुणा

(178)

नाम	अल्प बहुत्व
लवण समुद्र में सिद्ध	1 स्तोक
कालोदधि में सिद्ध	2 संख्येय गुणा
जंबू द्वीप में सिद्ध	3 " "
धातकी खंड में सिद्ध	4 " "
पुष्करार्द्ध द्वीप में सिद्ध	4 " "

(179) तीनों द्वीप का मिलाकर अल्प बहुत्व

द्वीप नाम	भरत ऐरावत	हिमवंत शिखरी	हैमवंत हिरण्यवंत	महा हिमवंत रूक्मी	हरिवास रम्यक्	निषध नीलवंत	देवकुरु उत्तर कुरु	महाविदेह
जंबू द्वीप	7 सं.	1 स्तोक	2 सं.	3 सं.	5 सं.	6 सं.	4 सं.	8 सं.
धातकी खंड	"	"	4 सं.	2 सं.	6 सं.	3 सं.	5 सं.	8 सं.
पुष्करार्द्ध	"	"	4 सं.	2 सं.	6 सं.	3 सं.	5 सं.	8 सं.

(180)

द्वीप नाम	भरत ऐरावत	हिमवंत शिखरी	हैमवंत हिरण्यवंत	महा हिमवंत रूक्मी	हरिवास रम्यक्	निषध नीलवंत	देवकुरु उत्तर कुरु	महाविदेह
जंबू द्वीप	11 सं.	1 स्तोक	2 सं.	3 सं.	5 सं.	6 सं.	4 सं.	22 सं.
धातकी खंड	20 "	7 वि.	12 सं.	8 सं.	15 सं.	10 सं.	14 सं.	23 "
पुष्करार्द्ध	21 "	9 सं.	16 सं.	11 सं.	18 सं.	13 सं.	17 सं.	24 "

(181) काल द्वार में परंपरा सिद्ध का अल्प बहुत्व

छ आरे	सुषम सुषमा	सुषम	सुषम दुःषम	दुषम सुषम	दुषम	दुःषम दुषम
अवसर्पिणी	5 वि.	4 वि.	3 असंख्येय	6 संख्येय	2 संख्येय	1 स्तोक
उत्सर्पिणी	"	"	"	"	"	"

(182) अवसर्पिणी – उत्सर्पिणी दोनों का संयुक्त अल्प बहुत्व

छ आरे	सुषम सुषमा	सुषम	सुषम दुःषम	दुषम सुषम	दुषम	दुःषम दुषम	
अवसर्पिणी	5 वि.	4 वि.	4 असंख्येय	6 संख्येय	3 संख्येय	1 स्तोक	अवसर्पिणी 7 संख्येय
उत्सर्पिणी	"	"	"	"	"	"	उत्सर्पिणी 8 वि.

(183) गति द्वार

गति से आया अनंतर	नरक	तिर्यच	तिर्यचिणी	मनुष्य	मानुषी	देव	देवी
अल्प बहुत्व	3 वि.	5 वि.	4 वि.	2 सं.	1 स्तोक	7 सं.	8 सं.

(184)

एकेन्द्रिय के बाद	1 स्तो.	वेद द्वार	अल्प बहुत्व
पंचेन्द्रिय के सभी स्थान	2 सं.	नपुंसक सिद्ध	1 स्तो.
वनस्पति के बाद	3 "	स्त्री सिद्ध	2 सं.
पृथ्वी के बाद	4 "	पुरुष सिद्ध	3 "
त्रसकाय के बाद	5 "	तीर्थ द्वार	अल्प बहुत्व
चौथी नरक के बाद	1 स्तो.	तीर्थकरी	1 स्तो.
तीसरी नरक के बाद	2 सं.	तीर्थकरी तीर्थ में प्रत्येक बुद्ध	2 सं.
द्वितीय नरक के बाद	3 "	" अतीर्थकरी	3 "
बादर वनस्पति पर्याप्ता	4 "	" अतीर्थकर	4 "
" पृथ्वी "	5 "	तीर्थकर सिद्ध	5 "
" अप्यकाय "	6 "	तीर्थकर तीर्थ में प्रत्येक बुद्ध	6 "
भवनपति देवी के बाद	7 "	" साध्वी	7 "
" देवों के बाद	8 "	" अतीर्थकर	8 "
व्यंतर के " "	9 "	लिंग द्वार	अल्प बहुत्व
व्यंतर देवों के बाद	10 "	गृहलिंगी	1 स्तोक
ज्योतिषी की देवी के बाद	11 "	अन्यलिंगी	2 असं.
ज्योतिषी देवों के बाद	12 "	" स्वलिंगी	3 "
स्त्री के बाद	13 "	" चारित्र द्वार में	अल्प बहुत्व
मनुष्य के बाद	14 सं.	छेद. परि. सू. यथा.	1 स्तो.
प्रथम नरक के बाद	15 "	सामा. छेद. परि. सब. यथा.	2 असं.
तिर्यच स्त्री के बाद	16 "	छेद. सूक्ष्म. यथा.	3 "
तिर्यच के बाद	17 "	सामा. छेद. सूय यथा.	4 सं.
अनुत्तर विमान के बाद	18 "	सामा. सूक्ष्म. यथा.	5 "
ग्रैवेयक के बाद	19 "	बुद्ध द्वारे	अल्प बहुत्व
अच्युत के बाद	20 "	स्वयं बुद्ध	1 स्तो.
आरण के बाद	21 "	प्रत्येक बुद्ध	2 सं.
अधोमुख सनत्कुमान के बाद	28 "	बुद्धि बोधित सिद्ध	3 "

ईशान देवी के बाद	29 "
सौधर्म के बाद	30 "
ईशान देवों के बाद	31 "
सौधर्म देवों के बाद	32 "
मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय	3 सं.
मति, श्रुत, अवधि	4 "
अवगाहना द्वार	अल्प बहुत्व
द्वि हस्त अवगाहना	1 स्तो.
पृथक् धनुष अधिक 500 धनुष वाला	2 असं.
मध्यम अवगाहना	3 "
अवगाहना विशेष	अल्प बहुत्व
7 हस्त अवगाहना	1 स्तो.
500 धनुष वाला	2 सं.
500 से कम	3 "

बुद्धि बोधित सिद्ध	4 "
ज्ञान द्वार	अल्प बहुत्व
मति, श्रुत, मनःपर्याय	1 स्तो.
मति, श्रुत	21 सं.
7 हस्त अधिक	4 वि.
उत्कृष्ट द्वार	अल्प बहुत्व
अप्रतिपतित सिद्ध	1 स्तोक
संख्येय कालपतित	2 असं.
असंख्येय काल पतित	3 सं.
अनंत काल पतित	4 असं.
अंतर द्वार	अल्प बहुत्व
6 मास अंतर पर सिद्ध	1 स्तो.
द्वि समय " "	2 सं.
त्रि " " "	3 "

(185)

अनुसमय द्वार	अल्प बहुत्व
108 सिद्ध	1 स्तोक
107	2 सं.
106	3 सं.

गणन द्वार	अल्प बहुत्व
108 सिद्ध	1 स्तोक
107	2 अनंत
106	3 "
105	4 "

इस प्रकार एक – एक की हानि से तब तक, जब तक 50 सिद्ध अनंत गुणे

49 सिद्ध	6 असं.
48 "	7 असं.
इस प्रकार 25 तक कहें ।	

24 सिद्ध	8 सं.
23 "	9 सं.

इस प्रकार 1-1 की हानि से तब तक कहे जब दो समय आए, विशेष सिद्धप्राभृत टीका से लिखा जाता है ।

अधोमुख सिद्ध	1
ऊर्ध्व मुख सिद्ध – कायोत्सर्ग में	2
ऊकडू आसन सिद्ध	3
वीरासन	4
न्यूब्जासन	5
पासेस्थित	6
उत्तानस्थित	7

संनिकर्ष द्वार	अल्प बहुत्व
सबसे अधिक 1- 1 सिद्ध	1
2- 2 सिद्ध - संख्येय गुण हीन	2

इस प्रकार तब तक कहना जब 25 सिद्ध संख्येय गुण हीन हों । 25-25 की अपेक्षा 26-26 सिद्ध असंख्येय गुणहीन ।

इस प्रकार एक-एक वृद्धि असंख्येय गुणहीन तब तक कहे जब तक 50 सिद्ध आते हैं ।

50 - 50 सिद्ध से 51 सिद्ध अनंत गुण हीन हैं ।

52 - 52 सिद्ध अनंतगुण हीन । इस प्रकार 1-1 की हानि तब तक कहे जब तक 108 आते हैं । ये अनंतगुण हीन हैं ।

जहां – जहां 20-20 सिद्ध है, वहां 1-1 सिद्ध सबसे अधिक हैं, दो - दो सिद्ध संख्येय गुण हीन हैं, ये तब तक कहे जब तक 5-5 सिद्ध आते हैं ।

6-6 सिद्ध असंख्येय गुण हीन हैं – ये 10 तक कहे । 11 से लेकर आगे अनंतगुण हीन हैं ।

अधोलोक आदि में पृथक्त्व बीस सिद्ध हैं । वहां पहले, चौथे, भाग में संख्येय गुणहीन, दुसरे चौथे भाग में असंख्येय गुणहीन, तीसरे – चौथे भाग से लेकर आगे सर्वत्र अनंत गुणहीन हैं ।

हरिवर्ष आदि में 10-10 सिद्ध, वहां तीन तक तो संख्येय गुण हीन, चौथे-पाचवें में असंख्येय गुणहीन तथा छह से लेकर सर्वत्र अनंतगुणहीन हैं ।

जहां पुनः अवगाहना यवमध्य से अनुत्कृष्ट आठ चार तक संख्येय गुण हानि उससे परे अनंत गुण का नाश होता है ।

ऊर्ध्वलोक आदि में चार तरह से सिद्ध होते हैं 1-1 सिद्ध सबसे अधिक, दो-दो सिद्ध असंख्येय गुणहीन, तीन - तीन सिद्ध अनंतगुणहीन तथा चार - चार सिद्ध अनंतगुण हीन हैं ।

लवण समुद्र आदि में 2-2 सिद्ध होते हैं वहां 1-1 सिद्ध बहुत होते हैं । 2-2 सिद्ध अनंतगुण हीन हैं ।

संनिकर्ष द्वार संपूर्णम्

शेष द्वार सिद्ध प्राभृत टीका से जान लें ।

परम पूज्य आचार्य श्री मलय गिरिकृत श्री नंदी की टीका से यह स्वरूप लिखा है ।

इतिश्री नवतत्त्वसंकलनायां मोक्षतत्त्वं सम्पूर्णम् ।

ग्रंथ समाप्ति (सवय्या इकतीसा)

आदि अरिहंत वीर, पंचम गणेश धीर, भद्रबाहु गुरु श्री, सुद्ध ज्ञान दाय के ।

जिनभद्र हरिभद्र, हेमचन्द्र देव इन्द्र, अभय आनंद चंद्र, चंदरिसी गाय के ॥

मलयगिरि श्री, साम विमल विज्ञान, धाम ओर ही अनेक साम, रिदे बीच धाय के ।

जीवन आनंद करो, सुख के भंडार भरो, आतम, आनंद लिखी, चित हुलसाय के ॥1॥

वीर विभु वैन ऐन, सत परगास दैन, पठत दिवस रैन, सम रस पीजीयो ।

मैं तो मूढ रिदे, गूढ ज्ञान विन, महाफूढ कथन करत, रूढ मोपे मत खीजीयो ॥

जैसे जिन राज गुरु, कथन करत धुरु, तैसे ग्रंथ सुद्ध कुरु, मोपे मत धीजीयो,

मैं तो बालख्यालवत्, चित की उमंग करी, हंस के सुभाव ज्ञाता, गुण ग्रह लीजीयो ॥2॥

ग्राम तो बिनोली नाम, ``लाला चिरंजीव स्याम`` भगत सुभाव, चित धर्म सुहायो है ।

सुख से चोमास करी, ज्ञान की लगन खरी, तिनकी कहन करी, ज्ञान रूप ठायो है ॥

भव्य जन पठन करत, मन हरखत ज्ञान, की तरंग देत चित में सुहायो है।

संवत तो मुनि7 कर2 अंक9 इंदु1 संख धर, कातिक सुमास वर तीज बुध आयो है ॥3॥

दोहा - ज्ञान कला घट में वसि, रसेसु निज गुण माहि ।

परचे **आतमराम** से, अचल अमरपुरि जाहि ॥1॥

संघ चतुर्विध वांचिउ, ज्ञानकला घट चंग ।

गुरुजन केरे मुख थकी, लहिसो तत्त्वतरंग ॥2॥

इतिश्री आत्माराम कृत नवतत्त्वसंग्रह संपूर्णम् ।

लिपी चक्रे बिनोली मध्ये

शुभं भवतु, वाच्यमानं चिरं नन्दात् । श्रीरस्तु ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न,
पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.
द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 279 पुस्तकों
में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	Pearls of Preaching	60/-	41.	समाधि की साधना	300/-
2.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	42.	New Message for a New Day	600/-
3.	अमृत रस का प्याला	300/-	43.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
4.	ध्यान साधना	40/-	44.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
5.	शंका समाधान (भाग-5)	160/-	45.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-
6.	शत्रुंजय यात्रा	40/-	46.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
7.	शत्रुंजय की भाव यात्रा	230/-	47.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
8.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	48.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
9.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	49.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-
10.	प्रवचन का अमृत	200/-	50.	नित्य देववन्दन	निशुल्क
11.	पर्युषण अष्टानिका प्रवचन	120/-	51.	संबोध-सित्तिरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
12.	गणधर-संवाद	80/-	52.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-1)	1170/-
13.	आओ ! उपधान पौषध करें !	130/-	53.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-2)	1040/-
14.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-	54.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-3)	900/-
15.	संस्मरण	50/-	55.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-4)	1270/-
16.	आध्यात्मिक पत्र	60/-	56.	श्री भद्रकर प्रश्नोत्तरी	170/-
17.	चिंतन का अमृत कुंभ	80/-	57.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
18.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-1)	210/-	58.	योग की आठ दृष्टियाँ	430/-
19.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-2)	220/-	59.	10 श्रमण-धर्म	250/-
20.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-3)	125/-	60.	साचा माणस बनीए ! (गुजराती)	300/-
21.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-4)	135/-	61.	शुभ-संदेश	250/-
22.	विवेकी बनें	90/-	62.	भक्ति से मुक्ति	200/-
23.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	63.	सहनशील बनों (22 परीषह)	180/-
24.	प्रवचन-वर्षा	60/-	64.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	350/-
25.	आओ श्रावक बनें !	25/-	65.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	300/-
26.	व्यसन-मुक्ति	100/-	66.	नवकार-प्रवचन	180/-
27.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	67.	जीवन-प्रसंग	360/-
28.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा 58-80	280/-	68.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
29.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	69.	समाधि मृत्यु	80/-
30.	समाधि मृत्यु	80/-	70.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
31.	तीन भाष्य	150/-	71.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
32.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-	72.	श्रमण-हितशिक्षा	250/-
33.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-	73.	हृदय प्रदीप (भाग-1)	260/-
34.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-	74.	हृदय प्रदीप (भाग-2)	260/-
35.	सज्जायों का स्वाध्याय	100/-	75.	हार्दिक-भावांजलि	210/-
36.	कोयंबतुर-प्रवचन	150/-	76.	हालार-गौरव वज्रसेन-सौरभ	200/-
37.	दक्षिण भारत प्रवचन	160/-	77.	आओ ! भाव सामायिक करें !	200/-
38.	विविध देववन्दन	100/-	78.	चिंतन की चांदनी	200/-
39.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	79.	आओ ! संस्कृत सीखें ! भाग-3	360/-
40.	लघु संग्रहणी	140/-	80.	आओ ! संस्कृत सीखें ! Guide Book	270/-
			81.	नवतत्त्व संग्रह	1100/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 84 84 84 84 51 (only whatsapp)